पानी के प्राचीर
रामदरश मिश्र

पानी के प्राचीर
रामदरश मिश्र
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

पूर्वाभास

गोरखपुर ज़िले में 'राप्ती' और 'गोर्रा' नदियों की धाराओं से घिरा हुआ एक विशाल भू-भाग है जो युगों से अपनी सारी हरियाली इन नदियों की भूखी धाराओं को लुटा कर केवल विवशता, अभाव और संघर्ष के रूप में शेष रह गया है। संसार के सारे सूत्रों से कटा हुआ यह प्रदेश अपने आप में एक संसार है। यहाँ न सड़कें हैं, न शिक्षा-संस्थाएँ हैं, न सुविधा-पूर्ण डाकखाने हैं, न सुरक्षा के लिए पुलिस चौकियाँ हैं, न चिकित्सालय हैं, न खेतों के सुधार और विकास के लिए कोई सरकारी या गैर सरकारी व्यवस्था है। यहाँ हैं—असूझ ग़रीबी, व्यापक अशिक्षा, अजगरों की तरह बल खाते दौड़ते ऊँचे नीचे नाले, बीमारी, बेकारी, आपसी फूट और सदियों पुरानी जर्जर नैतिक मान्यताएँ। इस वीरान प्रदेश में नेता आते हैं केवल वोट लेने, सरकारी कर्मचारी आते हैं लोगों को लड़ाकर अपना उल्लू सीधा करने।

प्राचीरों के समान नदियों की धाराओं ने इसे बन्दी बना रखा है। इस कारागार में अभावों और अंधकार से घायल लोग आपस में छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए कटते मरते रहते हैं। उनके हृदयों में मानवीय संवेदना का अभाव है, ऐसी बात नहीं, संवेदनाएँ तो उनके दिलों में अपार मात्रा में हैं किन्तु उन्हें जगाकर उन्हें ठीक रास्ता सुझाने वाले तत्वों का सर्वथा अभाव है। सबसे बड़ी विडंबना तो यह है कि यह तड़पता हुआ प्रदेश अपनी तड़प को व्यक्त कर पाने की असमर्थता से उसे भीतर ही भीतर पी लेता है। मैंने इस उपन्यास के माध्यम से इस तड़प को वाणी देने का प्रयास किया है। यों तो सारे बाढ़-ग्रस्त क्षेत्रों की समस्याएँ बहुत कुछ समान हैं, किन्तु यह प्रदेश प्राकृतिक प्रकोप और सरकारी उपेक्षा की की जो पीड़ा झेलता आ रहा है वह उसकी अपनी चीज़ है। इसके अतिरिक्त इसका अपना प्राकृतिक और समाजिक परिवेश है, इसकी अपनी सांस्कृतिक परम्पराएँ हैं।

'पांडेपुरवा' नामक कल्पित गाँव की कहानी इस पूरे भूभाग की कहानी है। सारे पात्र काल्पनिक हैं किन्तु उनके दर्द इसे पूरे प्रदेश के यथार्थ दर्द हैं। इन पात्रों में जो शक्तियाँ हैं वे भविष्य की उज्वल संभावनाएँ हैं, इनमें जो अशक्तियाँ और कुरूपताएँ हैं वे विषम परिस्थितियों के परिणाम हैं। हमें इनके प्रति कठोर नहीं, सहृदय होना चाहिए। इस प्रदेश की व्यापक पृष्ठभूमि पर जो मानव-मूल्यों और उच्चतर जीवन-सत्यों के रूप उभरे हैं वे एक देशीय न होकर पूरे समाज के हैं।

यह कहानी स्वाधीनता प्राप्ति के पहले की है। स्वाधीनता प्राप्ति के अवसर पर हमने पूरे उल्लास के साथ अनुभव किया था कि पानी के ये प्राचीर

अब टूटेंगे ही । ये प्राचीर टूटे कि हमारी सारी उम्मीदें टूटीं इसका परिचय इस उपन्यास के दूसरे भाग में (जो अलिखित भाव से अनुभूतियों में पड़ा है) देने का प्रयास किया जायगा । यों यह एक भाग भी अपने आप में स्वतंत्र और संपूर्ण है । अतः इसे हम पहला भाग न कहकर सम्पूर्ण उपन्यास ही कहेंगे ।

मुख-आवरण-शिल्प की रूपरेखा प्रस्तुत की है मेरे शिष्य-मित्र श्री गुलाम मुहम्मद शेख ने जो गुजराती के नये समर्थ कवि और आधुनिक शैली के चित्रकार हैं । इन्हें धन्यवाद क्या दूं, स्वीकारेंगे नहीं ।

रामदरश मिश्र

युगों से

'राप्ती' नदी के प्रकोप और अपने अभावों के
असूझ अंधकार से जीवट के साथ जूझती
हुई जनता को

समर्पित ।

१

चांदनी डहडहा कर खिल गयी है। फागुनी पूनों की रात है। गुलाबी ऊष्मा से सारा वातावरण मस्त हो उठा है। चाँदनी खेतों-खलिहानों, बाग-बगीचों, टीलों-सिवानों को पार करती हुई पता नहीं कहाँ तक चली-गयी है। दूर-दूर के गाँव इस चाँदनी में उड़ते नजर आ रहे हैं।

डिडी डिम्मक डिडी डिम्मक
जल भरि जमुना जी के तीर निहारति बाला
डिडी डिम्मक डिडी डिम्मक

नगाड़े पर चौताल की कड़ियाँ उड़ रही हैं।

क्या बात है? वे दो लम्बू हाथ में करताल लेकर भोंड़ेपन से नाचते हुए मुखिया के ओसारे में से कूद पड़े हैं और नाचते हुए कुएँ तक आकर फिर तेजी से आपस में सिर मटकाते हुए गाने वालों से जा मिले हैं।

डिडी डिम्मक, डिडी डिम्मक
झिझी झम्मक, झिझी झम्मक
जल भरि जमुना जी के तीर निहारति बाला

वह देखो, दोनों लम्बू करताली दोनों ओर से उस काने ढोलकहे के मुँह पर करताल फेर-फेर कर नाच रहे हैं। चौताल की कड़ी जोर पर है—

छोटे-छोटे छोकरे खूब हँस रहे हैं और कितने ओसारे के नीचे कूद कर अनाड़ीपन से कमर हिला-हिलाकर, आँखें मटका-मटकाकर नाच रहे हैं। करताली लम्बू दोनों ओर से काने ढोलकहे के मुँह पर करताल चमका-चमका कर नाच रहे हैं। उफ रंग में भंग। कानें ढोलकहे को गुस्सा आ गया। वह ढोलक से दोनों को मारने लगा। कहकहा मच जाता है। ढोलकहा किचकिचा कर गालियाँ उगल रहा है। दोनों करताली उसकी गालियों के वार की परवाह न कर हँस-हँस कर उसके मुँह पर करताल बजाते जा रहे हैं। ढोलकहा गुस्से के साथ मुँह से थूक का गाज फेंक रहा है। सारी देह थरथर काँप रही है। ढोलकहा अब नहीं बजायेगा। रंग में भंग। उधर नगाड़ची नगाड़े पर ताल देकर ललकारता है, हाँ बबुआ चौताल की कड़ी न टूटने पाये—

डिडी डिम्मक डिडी डिम्मक
झम्मक झम्मक झम्मक झम्मक

खुशी का प्रवाह फिर अबाध गति से आगे बढ़ता है। छोटी-छोटी कंकड़ियाँ इस प्लावन का क्या कर सकती हैं?

गीतों की धाराएँ उमड़ती हुई गाँव के बाहर दौड़ रही हैं और दूसरे गाँवों की धाराएँ इस गाँव की ओर बढ़ी आ रही हैं। कितनी समानान्तर धाराओं का संगम इस महाशून्य के वक्षस्थल पर आज लोट रहा है।

लड़के गाँव के बाहर झुंड के झुंड रास्तों पर बिखर गये हैं। खेत कटकर साफ हो गये हैं। उनकी छोटी खूँटियाँ चाँदनी रात में नहा रही हैं। खलिहानों से अनाज की पकी गंध फैल रही है। दूसरी ओर अमराई से बौरों की मतवाली पुकार बुला रही है। कोयल की कूक सघन अमराई से फूट-फूटकर खेतों में उड़ रही है। दूर-दूर की वे घाटियाँ इसके स्वरों में डूब रही हैं। किन्तु गँवई लड़कों को इन सबसे कुछ मतलब नहीं। आज तो उनकी सम्मति मइया जलेंगी। उनके श्रृंगार के लिए सामान चाहिए न!

हाँ, भाइयो, निरबल तेली का गोहरा साफ-साफ उड़ा लो। सिर पर काले-काले गोहरे लादे हुए लड़के भाग रहे हैं। खबरदार कोई देखने न पाये।

"कौन है?"

अरे भागो रे, यह तो निरबल तेली की आवाज है। भगदड़ मच जाती है। चाँदनी से सफेद रास्तों पर लड़के भागे जा रहे हैं।

अरे उल्लुओ, भागते क्यों हो? तेली-तमोली गाँव में इसीलिए होते हैं। हम लोगों का यह हक होता है कि उनकी चीजें होली में डाल दें। कहता हुआ आज की बाल-मंडली का अगुवा महेश निरबल तेली पर पिल पड़ता है। कहा-सुनी हो जाती है। मुखिया का बेटा महेश निरबल तेली पर दो-तीन लाठी जमा भी देता है। निरबल का जी मसोस कर रह जाता है। मुखिया का बेटा न होता तो उसे यहाँ दबा कर चूरमूर कर देता, किन्तु क्या करे वह?

सारे लड़के निरबल तेली के गोहरे की ओर झुकते हैं। परन्तु एक स्वस्थ हँसमुख गोरा लड़का सबके सामने खड़ा हो जाता है। उसकी बड़ी-बड़ी पलकों में एक तरलता है। सारे लड़कों को डाँटता है—यह हमारा अन्याय है कि हम निरबल तेली का गोहरा भी उजाड़ें और उसे मारें भी।'

महेश चिढ़ जाता है—अरे ओ निरंजन! तू चुप रह, बड़ा आया है न्याय-अन्याय देखने। आज होली के अवसर पर यह सब कुछ माफ है।

किन्तु निरंजन (जिसे गाँव के लोग नीरू के नाम से पुकारते हैं) का उत्साह कम नहीं होता है, वह सबको रोकता है—भाइयो, होली में

हमें पुरानी और सड़ी गली चीजों को डालना चाहिए। होली में हम लोग अपने पुराने ग़म को, बैर-भाव को जलाते हैं और नया जीवन शुरू करते हैं। यह उपला लोगों का जीवन है, इसे होली में डालना गुनाह है।

शोर मचता है—चुप रह, चुप रह, अपना गियान कल बघारना। 'हुर्र हुर्र हुर्र' चलो भाइयो चलो आज होली है—

हम सब हैं बिलकुल आजाद
निरबल तेली मुर्दाबाद !

सब भाग जाते हैं। निरबल तेली आहत होकर घर में सरक जाता है। किन्तु निरंजन मर्माहत होकर धीरे-धीरे दूसरे रास्ते से चला जाता है। मानो निरबल तेली का सारा अनकहा दर्द उसके वक्षस्थल में कस उठा हो। वह खलिहान में जाकर डाँठ पर बैठ जाता है। पाकड़ की ठूँठ डालें बर्फ की पतली-पतली शिलाओं के समान सफेद रात में हो रही हैं। खलिहान की गन्ध उसके अनमन मन को छू रही है। सामने वाले बाग से होकर छोकरों के दल अरहर की भीर सिर पर उठाये हुए तमचरों की तरह होली की ओर भाग रहे हैं। उफ ! ये क्या परम्परायें हैं। लोग त्योहारों की असली खुशियों को भूलकर ऊपरी धिंगाधिंगी में फँस गये हैं, जिनसे औरों की रोटी छिनती है, उन्हें दर्द होता है।

वह सोच रहा है। मगर उसके सोचने से क्या होता है ? प्रवाह तो अपने रास्ते चला जा रहा है। वह सोचता है—इसे रोकना है, यह प्रवाह नहीं, प्रवाह के ऊपर का फेन है जो नदी के ऊपर फैल कर नदी की असली ताकत का भ्रम पैदा करता है। 'मगर वह १६-१७ साल का लड़का क्या कर सकता है ?' 'हुहँ, छोटा हुआ तो क्या हुआ, वह इसे रोकेगा, आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों। अभी तो वह फेन उतराया हुआ है।'

चौताल की धमाचौकड़ी जोर पर है। नगाड़े की आवाज पर रात थरथरा रही है। ढोलक और झाल से होड़ लेता हुआ चौताल गाँव की गलियों में उफन रहा है यहाँ से वहाँ, वहाँ से वहाँ....। लगता है गानेवाले गाँव घूम रहे हैं। हाँ अब होली जलने वाली है। पहपट शुरू होता है। कितने फूहड़ गाने गा रहे हैं लोग। आज सब छूट है क्यों ? आज बुरा मानने की क्या बात ?

नीरू तीसी की मुठ भर लेता है होली की आग में सेंकने के लिए। होली के पास कैसा कहकहा मचा हुआ है। चलो देखो तो सही।

नीरू के पहुँचते ही कहकहा और जोर पकड़ उठा। यह क्या? सत्तर साल का यह बूढ़ा कहार रामदीन होली के बीच चारपाई पर बैठा हुआ था। उसकी उभरी हुई हड्डियाँ और नसें उसे एक कंकाल का रूप दे रही थीं। आँख से कीचड़ बह रहा था। वह शान्त भाव से उसी होली के बीच बैठा मानो जुगाली कर रहा था। लड़के हो-हो करके तालियाँ पीट रहे थे—

धिना धिन्ना धिनाक
धिना धिन्ना धिनाक

लोग पहपट गाते हुए होली के पास पहुँच रहे थे। नीरू को हँसी आ रही थी। किन्तु लड़कों की शरारत की कुरूपता उसे भीतर ही भीतर साल रही थी।

धिना धिन्ना धिनाक

बाजा गाजा बन्द। बच्चे, बूढ़े, जवान सब लोग एक बार जोर का कहकहा लगा उठे। किन्तु रामदीन ज्यों का त्यों वहीं बैठा हुआ था। गाँव के मुखिया कुबेर पांड़े ने सुपारी चबाते हुए मुसकरा कर पूछा—'क्यों रामदीन, आज अच्छी साइत बनी है क्या? अरे अब तो निकल आओ।'

रामदीन ने अपनी आँख से कींचर पोंछते हुए काँपती आवाज में जवाब दिया—'मुखिया बाबू, किस लिए निकलूँ? बाल-बच्चों को भगवान ने छीन लिया। जो रही सही झोपड़ी थी उसे आपके इन राजकुमारों ने उजाड़ कर होली मइया में डाल दिया। उससे भी पेट नहीं भरा तो चारपाई सहित मुझे भी डाल दिया। अब इससे बढ़िया चिता कहाँ मिलेगी? आज आप लोगों को असीस देती हुई मेरी साँस-साँस उड़ जायेगी।

लोगों के कहकहे धीरे-धीरे पथरा रहे थे। एक अज्ञात आशंका जैसे लोगों की आँखों पर धीरे-धीरे सुलग रही थी। होली जलाने का समय हो गया था। मुखिया ने जोर देकर रामदीन को होली में से निकल जाने को कहा। किन्तु रामदीन अपनी थरथराती आवाज में 'नहीं' को पकड़े हुए था। उसका तर्क तो सुनिए—'होली में जो चीज पड़ जाती है उसे

वापस नहीं लिया जाता। इससे गाँव का भला नहीं होता। मेरे बाहर निकल आने से न मेरा भला होगा न गाँव का।' मुखिया और अन्य जवानों को क्रोध आया। चटक कर पूछा—किन लड़कों ने इस जपाट को होली में फेंका है रे! यह एक नयी मुसीबत खड़ी हो गयी।

लड़के चिल्ला उठे—'नीरू ने नीरू-ने।'

'ऐं मैंने।' नीरू चौंक उठा।

'हाँ—हाँ तुमने, तुमने' महेश ने तेज जवाब दिया।

'शरम नहीं आती तुम्हें झूठ बोलते हुए।' नीरू तेज हो उठा।

महेश ने लड़कों को सम्बोधित करके कहा—'बोलो लड़को! नीरू ने नहीं कहा है कि होली में पुरानी और व्यर्थ की चीजों को डालते हैं, डालो।' सब लड़के एक साथ चिल्ला उठे—'हाँ, हाँ कहा है, कहा है।'

—'बड़े समझदार हो तुम लोग' नीरू बौखला उठा। 'मैंने यह तो नहीं कहा कि किसी बूढ़े आदमी की जान ले लो। अपने गुण्डई करते हो तुम लोग और थोप देते हो मेरे सिर।'

'तुम गुण्डे-तुम गुण्डे, खबरदार जो हम लोगों को गुण्डा कहा।' लड़कों का समवेत स्वर कौंध उठा। किन्तु दोष जिस किसी का हो अब तो इस बूढ़े को होली में से निकालना है।

नीरू के मन पर चोट लगी। ये छोकरे इस गरीब को आग में फेंक कर कैसी बेहयाई से निकले जा रहे हैं। आखिर यह महेश अपने को समझता क्या है? मुखिया का बेटा हुआ तो क्या हुआ? लफंगा नम्बर वन है। बच्चू आज क्लास में खूब पीटे जो गये हैं। मुझसे कहते हैं नकल कराने के लिए, मैं क्यों कराऊँ? उसी से खार खाये हैं मुझसे। अच्छा देखूँगा।

मुखिया कुबेर गरज उठे—'क्यों बे रामदीन निकलता है कि नहीं? क्यों त्योहार के दिन परेशान करता है?'

'नहीं मैं नहीं निकलूँगा जो चाहो सो करो।' रामदीन जिद पकड़े हुए था। 'क्यों रे नीरू की दुम अब निकालता क्यों नहीं है—इसे। डलवाने के लिए तो बड़ा वीर था।' मुखिया क्रोध से गरज उठे।

'क्यों मुखिया काका, मैंने क्या किया है? अपने लाड़ले महेश से क्यों नहीं पूछते हैं जिसने निरबल तेली का गोहरा उजाड़ कर उसे दो लाठी जमाया भी है और जिसने इस बुढ्ढे रामदीन को अपने कन्धे पर ढोकर इसकी काम-क्रिया करने को सोची है।' 'चुप रहो शरम नहीं आती कैंची की तरह जबान चलाते हुए।' मुखिया तैश में आ गये।

'मैं क्यों चुप रहूँ? शरम तो आप लोगों को आनी चाहिए कि एक बेगुनाह लड़के पर इस तरह अपने बेटे का गुनाह लाद रहे हैं। मैं तो

दो घंटे से खलिहान में बैठा हुआ था।' नीरू काँप रहा था। 'अच्छा रे छोकरे तेरी यह हिमाकत ? कहिया पूत जनमलें कहिया झांकरि भइल। चला है मुझी से पद और गुनाह की बात करने।'

मुखिया और नीरू में कहासुनी हो रही थी कि सुमेश पांड़े ने आकर अपने बेटे नीरू को जोर-जोर के तीन-चार थप्पड़ जड़ दिये—शैतान, हर जगह रार बेसहता चलता है। बड़ा बुद्धिमान की दुम बना फिरता है। तब तक रमेश ने आकर सुमेश का हाथ थाम लिया। 'काका क्या करते हो ? नीरू भइया ने तो सचमुच कुछ नहीं किया है। यह सब तो मनगढ़न्त बातें हैं।'

तो अब तक क्यों चुप थे ?' सुमेश ने आग्नेय नेत्रों से रमेश की ओर देख कर पूछा। 'क्या करूँ काका ? मेरी तो क्या, किसी की भी हिम्मत इस महेश के खिलाफ बोलने की नहीं होती है। यह कुछ छोकरों का दल बनाकर सबको परेशान किया करता है।'

महेश ने रमेश को घूर कर देखा—जैसे कह रहा हो—समझ लूँगा बच्चू ! मुखिया अपने लड़के की शिकायत सुनने के कायल नहीं थे। लापरवाही से रमेश को देखकर वे डपटे। 'अब भाइयो, देर हो रही है। इस जपाट को होली में से बाहर खींचो।' लड़के हो-हो करते हुए आगे बढ़े और रामदीन को बाहों पर टाँग लिया। रामदीन चमगादड़ की तरह उनसे चिपट गया, किन्तु लड़कों ने उसे घसीट कर बाहर करके छोड़ा।

पहपट शुरू हुआ।

धिना धिन्ना धिनाक
झम झम झम झम
फागुन भरि बाबा देवर लागी
फागुन भरि बाबा देवर लागी

रागरंग शुरू हुआ। होली में आग लग गयी। लपटें चिटख-चिटख कर आसमान छूने लगीं। लपटों की लम्बी-लम्बी छायाएँ पोखरी को पार करती हुई बरगद और बाँसों की शिखाओं पर लोटने लगीं। लोग लपट में तीसी भूज रहे हैं। शुभ है यह। गाने-बजाने के प्रवाह में यह भूल ही गया कि अभी कुछ हुआ था। और सचमुच हुआ भी क्या ? लड़कों की कहा-सुनी। वह तो कोई गम्भीर अर्थ नहीं रखती। बच्चे हैं—झगड़ते हैं, हिल मिल जाते हैं, उन्हें चार बात कह भी दो तो उसका उनके दिल पर कोई असर नहीं पड़ता। किन्तु नीरू का कोमल हृदय इस घटना से आहत हो उठा था। उसका स्वाभिमान रह रह भीतर ही भीतर फूत्कार कर रहा था। उसकी आँखों में न जाने कितनी भावी परछाइयाँ काँप रही थीं। किन्तु उसकी परवाह किसे ?

लपटें तेज होती जा रही थीं, पहपट और तेजी से उठ रहा था। सब एक-दूसरे को प्रणाम कर रहे थे, नया साल जो शुरू हो रहा था। किन्तु आह! उस बूढ़े रामदीन की खोह-सी आँखों में उसकी जलती हुई झोंपड़ी की लपट लोट रही थी।

गिरती हुई लपटों को छोड़ कर समूह फिर आगे बढ़ा। नीरू धीरे-धीरे अपने खलिहान में सरक गया और मुखिया का दरवाजा फिर चौताल, नगाड़ों और करताल झाल के सम्मिलित नाद से मुखर हो उठा। सबसे अलग एक बूढ़ी जर्जर परछाईं उस पेड़ की छाँह में जाकर समा गयी।

नीरू खलिहान में लेटा-लेटा आज की घटनाओं के सूत्रों को सुलझा रहा था। आज का त्यौहार मस्ती का है, रागरंग का है, समानता का है। पुस्तकों में उसने यही तो पढ़ा है और अपनी तीव्र संवेदनाओं से उसने अनुभव भी यही किया है। किन्तु ये छोकरे अपनी मस्ती में दूसरों की मस्ती को भूल जाते हैं। बेकार की खुराफात करते हैं। वह यह अनुभव करता है कि इन लड़कों के घर वाले उन्हें ऐसा बनने देने के लिए सुविधाएँ जुटाते हैं।

उसका मन खिन्न तो हो उठा था, किन्तु होली राष्ट्रीय पर्व है, इसमें हमारी सामूहिक खुशियों की लहरें गले मिलती हैं। उदास बैठना ठीक नहीं। तो क्या करें? कल सुबह होने वाली घटनाओं की तस्वीरें उसके मन में उतरा गयीं। वह उठा। घर से कागज-कलम लेकर कुछ लिखा और चल पड़ा गाँव के उत्तर उस टीले की ओर। सुनसान एक दम सुनसान। कहते हैं कि उस टीले के आसपास भूतों का डेरा है। किन्तु नीरू चला जा रहा था। सुनसान कैसा? आज तो दूर-दूर तक फैले हुए नीरव सिवानों और खामोश पगडंडियों की शिराओं में रागों का रक्त बह रहा था। चौताल साफ-साफ सुनाई पड़ रहा था। इस टीले के पास तो जैसे चारों ओर के गाँवों के संगीत की आत्माएँ आ-आकर मिल रही थीं। डर कैसा? फिर भी सुनते हैं, इस टीले पर भूत नहीं आ सकते। यहाँ तो ब्रह्म बाबा का निवास है। टीले तक जाकर नीरू ने पीपल के पेड़ पर कागज चिपका दिया और धीरे-धीरे सफेद रास्ते पर बहता हुआ लौट आया।

सुबह-सुबह गाँव के बाहर दग्ध होली के पास लड़कों का शोर उमड़ उठा। उसी के समानान्तर उस पास वाले गाँव से कोलाहल की एक धारा बहने लगी। लड़के होली की गरम-गरम राख को बुझा-बुझा कर झोले में भरने लगे। और फिर एक सम्मिलित हाहाकार उस टीले की ओर बढ़ने लगा। नायक था महेश। उस गाँव से भी हाहाकार उस टीले की ओर दौड़ने लगा। गालियों का विनिमय दोनों हाहाकारों को

एक में गूँथने लगा। महेश दौड़कर टीले पर सबसे आगे पहुँचा और झट से गरम-गरम राख की एक मूठ बरम बाबा के पिण्ड पर फेंक दी। उसकी निगाह पड़ी, कागज पर। लिखा था—

भाइयो !

आज का त्यौहार प्रेम और एकता का है। आज के दिन हमें अपने सब भाइयों के गले मिलना चाहिए। आज के दिन गाली-गलौज करना और सिर फोड़ौवल करना कहाँ तक जायज है? आप सोचें। आप अपने एक भाई की प्रार्थना पर ध्यान देंगे, यह मुझे उम्मीद है।'

उसके नीचे किसी का नाम नहीं था। महेश ने कागज को फाड़ते हुए कहा—

साला बड़ा गियानी बन गया है। अपने तो डरपोक है दूसरों को भी बनाता है। और लड़के भी आ गये। क्या है, क्या है? सब पूछ उठे। 'कुछ नहीं जी यह निरुआ जो है न, इस कागज पर गियान लिखकर टाँगे हुए है। कहता है कि पकड़िहा वालों से लड़ाई मत करो। भला बताओ तुम लोग जो पुरखे पुरनियाँ करते आ रहे हैं उसे कैसे छोड़ें।' यह कहकर उसके कागज के टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

कबीर सररररर...पाँड़ेपुरवा...पर गिरे...। महेश चौंक पड़ा। सावधान भाइयो, वे देखो आ गये पकड़िहा के अहीर सब। दूर हट जाओ और ढेलों से मारो। कबीर सररर...पकड़िहा....पर गिरे।

ढेलों की सनसनाहट शुरू हो गयी। वह देखो भागा। उसकी पीठ पर लगा गद्द से। इस छोकरे की बगल से ढेला सनसनाता हुआ निकल गया। पक्की ईंट का टुकड़ा था, लगता तो चेता देता। दोनों टुकड़ियाँ लड़ते-लड़ते बागीचे में आ गयी हैं। हाँ, यहाँ तो ताल के चिकने-चिकने ढेले बिखरे पड़े हैं। वह पेड़ की आड़ में छिप गया। ढेला पेड़ से लगकर चूर-चूर हो गया। वह जवान खंदक में छिप कर टीप-टीप कर मार रहा है। उसका सिर फूट गया, चीखता हुआ वह घर भागा। उसकी नाक को छीलता हुआ खिपल्ला छलक गया। पाँड़े छोकरे जोर पर हैं। खदेड़ रहे हैं। पकड़िहा के अहीर भाग रहे हैं दुम दबाकर। किन्तु एक साहसी अहीर तो पेड़ की डाल पर चढ़ गया है उसने एक बड़ा-सा ईंट लेकर एक लड़के के ऊपर पटक दिया। वह चित्त हो गया, खून का फौव्वारा फूट निकला। लड़के घबरा कर भागे। अहीरों की बाजी पलट गयी। उन्होंने पाँडे छोकरों को खदेड़ा। पाँड़े छोकरे भाग कर खलिहान में आ गये। घायल लड़का चीखता-चिल्लाता घर की ओर भागा। नीरू बरम बाबा से धूल चढ़ाकर लौट रहा था। उसने दोनों दलों की

गुत्थम-गुत्थी को देखा तो उसका माथा ठनक गया। 'क्या करे वह! क्या न करे ?' उधर अहीर बढ़े आ रहे हैं। महेश ने एक अहीर को डाँठ के पीछे छिपकर पकड़ लिया और उसकी नाक पर ऐसा घूँसा मारा कि वेहोश हो गया। फिर पाँड़े छोकरे आगे बढ़े। नीरू लपक कर बीच में आ गया और दोनों ओर चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगा, भाइयो! यह क्या करते हो.? रोको-रोको यह बेकार की लड़ाई। इस तरह तो कोई मर जायगा।' लेकिन उस नक्कारखाने में तूती की आवाज की क्या गणना ? नीरू यहाँ से वहाँ, वहाँ से यहाँ व्यर्थ हाथ उठा कर दौड़ता रहा। इधर संघर्ष चलता रहा जैसे नीरू नाम का कोई क्षुद्र व्यक्ति वहाँ हो ही नहीं। उस जल-चक्र में वह एक तुच्छ तिनके की तरह चक्कर काट रहा था। उसने देखा बाल-सेना के पीछे जवानों का रिजर्व फोर्स खड़ा है। पता नहीं शान्ति के लिए या हमला करने के लिए। एक गोल ईंट का टुकड़ा उसके ललाट के रोओं को छूता हुआ सन्न से निकल गया। देखा वह ईंट महेश की ओर से आया था। उसका जी हुआ इस महेश नाम के जन्तु को पकड़ कर चूर-चूर कर दे और फिर उस पर घृणा से थूक दे। मगर अभी समय नहीं है फिर देखा जायगा। वह वहाँ से थोड़ा दूर हट आया। सोचने लगा—उसका कहा कोई सुनता ही नहीं है। वह चाहता है लोग उसे सुनें, उसे महत्त्व दें, किन्तु यहाँ तो बात-बात पर लोग उसे झिड़क देते हैं और नादान छोकरा समझ कर उस पर ध्यान ही नहीं देते। वह गरीब बाप का बेटा है शायद इसलिए भी। नीरू के मन में ऐसी एक गांठ है, जो खुलना चाहती है, किन्तु खुलने के स्थान पर और गुत्थियाँ पड़ती जाती हैं।

परन्तु झगड़ा बच गया। पांड़ेपुरवा का एक अधेड़ पांड़े लाठी लेकर उधर से निकल आया। उसकी देखा-देखी पकड़िहा का एक अहीर भी आ गया और दोनों ने अपने-अपने गाँव के छोकरों को पैंतरा बदल-बदल कर गालियाँ दे-देकर रोकना शुरू किया। आखिर लड़के धीरे-धीरे पीछे हटने लगे। अब हटते नहीं तो करते भी क्या ? दो घंटा दिन चढ़ आया था। वे दौड़ते-दौड़ते हाँफ गये थे और अभी धूल चढ़ाने का काम तो बाकी ही था। लड़कों का झुंड पीछे हटता सहसा गाँव की ओर भागने लगा। नीरू अपने मन की कसक पीकर इस प्रवाह में जा मिला। लड़कों का झुंड गलियों से दौड़ता शोर करता गाँव भर के जवानों-बूढ़ों का धूल से सत्कार करने लगा। 'बुरा न मानो होली है' अरे वह छोकरा तो भी साफ-साफ बचा है पकड़ो उसे। हाँ ऐसे। और मलो और मलो उसके मुँह पर धूल। अरे वह देखो झींगुर चाचा दातून कर रहे हैं एक साथ टूट पड़ो। हा-हा...हा...हा कैसा सफेद पाउडर पर्त का पर्त मुँह

पर जम गया है। नीरू सबसे आगे है। बड़े उत्साह से वह रह-रहकर अपने हमजोलियों के चेहरों पर धूल रगड़ देता है। जवानों और बूढ़ों को भी खदेड़-खदेड़ कर पकड़ता है। हैं-हैं आज भागने की क्या बात? बरस दिन पर तो होली आयी है, इसे यों ही क्यों जाने दिया जाय? इन लोगों की और सम्पत्ति ही क्या है? देह पर कहने-सुनने को फटे-फटे गन्दे-गन्दे अँगोछे लिपटे हुए हैं जिन्हें शायद फटी धोतियों से फाड़ फाड़ कर बनाया गया है। किसी की कमर में भगई लिपटी है जिसका पछोटा बाहर निकल कर लुटुर-लुटुर हिल-डुल रहा है। किसी की कमर लिंगोटी से कसी है। जो कुछ छोटे हैं वे तो यों ही मस्त बिचर रहे हैं। जो कुछ बड़े हैं वे अलबत्ता अपनी लाज की गरदन छोटी-छोटी धोतियों या फटे पुराने नेकरों में फाँसे हुए हैं। लेकिन इनका हृदय तो देखिए कितनी मस्ती और उल्लास से भरा है? लगता है आज ये अपने भीतर कुछ नहीं रखेंगे, सारा का सारा उड़ेल देंगे बाहर गलियों मे, पग-डंडियों पर, द्वार द्वार पर, एक-दूसरे के चेहरों पर।

'बुरा न मानो होली है' लड़कों का झुण्ड आगे बढ़ रहा है। अहा शिकार तो मिल गया। देखो भागने न पाये। कई ओर से आकर उन्हें घेरो। ये हैं—बेनी काका। रास्ते चलते हैं तो इनकी अँगुलियाँ चिट्टिर-पिट्टिर बजती हैं इसलिए ये लड़कों के चिट्टर-पिट्टर काका हैं। लड़कों से ये जितना ही भागते हैं उतना ही लड़के उनसे लिपटते हैं।

एक मूठ, दो मूठ, तीन मूठ। बेनी काका घबड़ा गये। अरे-अरे पाजियो, क्या कर रहे हो? चार मूठ-पाँच मूठ और मूठ ही मूठ। बेनी काका घबड़ा गये उनकी आँखें मुँद गयीं, लड़कों के हँसने का शोर उनके कान के परदे फाड़ रहा था। बेनी काका गालियों के साथ मुँह से थूक उगल रहे थे, भागना चाहते थे, पर बुरी तरह घिर गये थे। अरे साले पाजियो! भागो नहीं तो एक का खून पी जाऊँगा। 'ये लो ये लो' धूल फर्र फर्र...। बेनी काका के हाथ में डंडा आ गया। लड़के भाग चले। चिट्टर-पिट्टिर चिट्टिर-पिट्टिर करते बेनी काका लड़कों के पीछे दौड़ पड़े और डंडा चलाने लगे।.......

कुएँ पर रग्घू बाबा कुल्ला कर रहे थे। रास्ते में चलते हैं तो 'चित्त थू चित्त थू' के मधुर स्वर में थूक की पिचकारी छोड़ते चलते हैं। इसलिए ये लड़कों के चित्थू बाबा हैं। लड़कों की भीड़ आते देख इनके प्राण सूख गये। दूर से ही गाली बकने लगे। 'अतऽ देख सरऊ लोग हमरे ऊपर धूल छोड़ब तऽ ठीक नाहीं खाई। जे बासे हम कहि देत हई।'

'हो..हो..हो..हो, बुरा न मानो होली है। बाबा थोड़ा-सा हाथ में दे देंगे।'

'नाहीं, नाहीं कुछ नाहीं तू सब लामे खड़ा रह नाहीं त जे बासे हम सबक टाँगि तूरि देब।' 'चित्त थू चित्त थू।

'हरे चित्थू बाबा थोड़े सा'

'का कहले हवे चित्थू, मारब सरऊ तुहार जे बासे खपड़ोई उधिया जाई। चित्थू तोर बाप होई।'

'हो-हो-हो-हो...बुरा न मानो....

'अतऽ हम कहि देत हुईं।'

'हैं-हैं यह क्या कर रहे हो तुम सब लोग चित्थू बाबा के साथ। हाथ में थोड़ा-थोड़ा दे दो बुजुर्ग हैं कुछ ख्याल करो।' कहते हुए नीरू आगे निकल आया। रघू बाबा ने हाथ बढ़ा दिया कि नीरू ने एक मूठ धूल लेकर उनके मुँह पर मल दिया। होय..होय..होय..होय अब तो एक दो तीन.....

चित्थू बाबा कुएँ पर गगरा छोड़कर भागे। लड़कों ने उनका पीछा किया। कुत्ते भी भूँकते हुए उनके पीछे दौड़ने लगे। एक लड़के ने उनका गगरा कुएँ में डाल दिया। रग्घू बाबा चित्त थू चित्त थू करते हुए गली-गली भागे जा रहे थे। उधर से महेश अपने दल के साथ आ पहुँचा। बड़ी मुसीबत है। रग्घू बाबा पास की ही फूस की छत पर चढ़ने के लिए एक नाद पर चढ़ गये और लपक कर छत पर चढ़ गये। पुराना फूस चरमरा कर नीचे बैठ गया और रग्घू बाबा बड़े से छेद में से नीचे घर में जा गिरे। लड़के घबरा कर वहाँ से भागे।

'बुरा न मानो होली है' और यह गोबर और कीचड़ की बौछार कहाँ से आ रही है? अच्छा तो सयाने लोग भी निकल पड़े। भागा भागा, मगर भाग कर जाओगे कहाँ? कीचड़ का झोंका लगा छप्प से। मगर उसके भी तो हाथ हैं उसने गोबर उठाकर मारा और इसके मुँह पर गीला गोबर फैल गया। हो..हो..हो..हो पकड़ो-पकड़ो, वह तो एक दम कोरा है। वह घँड़रोज की तरह भागा, भागा और वह भागा। मगर उधर भी तो आदमी हैं। वह उठा कर पटका और धूल और कीचड़ से मरम्मत कर दी। अब तो वह भी उसी में शरीक हो गया। इस तरह दुर्दशा-ग्रस्तों का सम्प्रदाय बढ़ता जा रहा था—

डम्मर मटाक धिना
डम्मर मटाक धिना
सदा अनन्द रहे एहि द्वारे
जीये से खेले फाग रे

कबीर शुरू हो गया। कबीर गाते-गाते लोग घरों में घुस रहे थे मन के भीतर संचित जनम-जनम के गन्दे उद्‌गारों को औरतों पर फेंक रहे थे, जैसे घूरे पर कूड़ा फेंकते हैं। और यही तो सार्थकता है नारी जीवन की। घरों में वे बन्द हैं—जी में आया तो पति किवाड़ खोलकर उस पर कूड़े बरसा आया और फिर बन्द कर दिया। इससे अधिक सुरक्षा और धन्यता नारी जीवन को क्या मिल सकती है? परन्तु आज नारियों को थोड़ी-सी छूट है और वे किवाड़ के पल्ले की आड़ से पुरुषों की कबीर गर्जना ओड़ती पानी पर पानी फेंक रही हैं। आँगन में कचबच मच गयी। दीवारों पर नीली, पीली, लाल लकीरें उभर-उभर कर बुझ रही थीं।

कबीर की चोट नीरू के मुलायम हृदय पर सीधे गिर रही थी। वह देख रहा था छोटे-छोटे छोकरे तक बड़ों की पैरोडी की तरह कच्ची जबान से गालियाँ उगल-उगल कर आँगन में नाच रहे थे और जिस लड़के के घर में कबीर उमड़ रहा था वह लड़का अपनी माँ या भावज के प्रति बहती हुई गालियों से छटपटा कर कबीर गाने वालों को ही कबीर सुना रहा था। अपने घर में कैसा बुरा लग रहा है बच्चू को, परन्तु अभी दूसरे के आँगन में दूल्हन के घूँघट के पास तक चले जायेंगे।

नीरू अन्यमनस्क था। वह उस भीड़ में खोकर भी उससे अलग था। उसका जी चाहता था कि उसके घर कबीर न हो, वहीं उसकी माँ होगी, बहन होगी। भाभी होती तो कोई बात न होती। मगर उसके आँगन में कबीर तो होना ही था। ये पहुँचे लोग। लोग घर में घुसने लगे। महेश बड़े उत्साह से छलक रहा था। नीरू की हिम्मत घर में जाने की न हुई। वह सोचता रहा कि यह प्रथा बन्द होनी चाहिए। मगर अभी तो उसकी आवाज दूध-सी कच्ची है मासूम है, कौन सुनेगा उसे?

'सदा अनन्द रहे एहि द्वारे
जियें से खेले फाग रे।'

'डम्मर मटाक धिना डम्मर मटाक धिना'

लोग निकल आये। लोगों के बन्दरों से काले-काले चेहरे पर लाल-लाल अबीर कैसी फब रही थी। सबसे आगे-आगे साठ साल के छैल छबीले भवानी पाँड़े। वे आज के समारोह के नायक थे। कबीर की बोहनी उन्हीं के साथ होती है। दुनियाँ में ३६४ दिन वे जहाँ कहीं रहें—तराई में करताल लेकर या चेलों के यहाँ ज्योतिषी बनकर, किन्तु ३६५ वें दिन वे औरतों को अखण्ड और व्यापक सुहाग का आशीर्वाद देने अपने गाँव जरूर पधारते हैं।

उधर देखिये अन्धे कन्नू पांड़े को गदहे पर बैठा कर लड़के पीछे-पीछे हो-हो कर रहे हैं। घबड़ाइए नहीं, जलूस इधर को ही आ रहा है। एक ने नाद में से सड़ी सानी निकाल कर छप्प से उसके मुँह पर मारा। अन्धे महाराज के कान पर मुँह ले जाकर शागिर्द ने कहा—'महाराज यह गनेसवा है।' महाराज के मुँह से आशीर्वाद के फूल झड़ने लगे—गनेसवा के माई के डोम ले जा,...'बाह ओस्ताद क्या बात है? फिर छप्प से। महाराज यह टिसुनवा है। टिसुनवा के घरे आज गदहा लोटे, टिसुनवा क माई घोड़ा संघ जा। वाह...वाह...वाह...वाह ओ मारा, भागा। अरे भागा, अरे भागा। फिर गीत बन गया—

ओ देखो भागा, वहाँ देखो भागा।
कन्नू के मुँहे छपाक देला लागा।

वाह उस्ताद! और गाओ

'गाओ-गाओ-गाओ बजाओ खूब बाजा
कानी गदहिया पर अन्हरा राजा।

'साले शैतान छोकरो, तुम सबों ने क्या कहा?' 'कुछ नहीं, उस्ताद कुछ नहीं, आज तो होली है।' कहते हुए उस छोकरे ने गदहे पर एक कुकरोंछी छोड़ दी। गदहा दुलत्तियाँ झाड़ता हुआ भागा। कन्नू बड़ी-सी तोंद लेकर थुल, थुल करता चिल्लाने लगा, अरे क्या हो गया रे?

'कुछ नहीं उस्ताद जरा भूडोल आ गया है।' गदहा भागा जा रहा था। कन्नू जोर से उसकी गरदन से चिपटा हुआ था। लड़के और जवान सब होहकरा मचाये थे। वह देखो कन्नू महाराज नाबदान में गिरे छपाक से।......

दोपहर ढल रही थी। लोग खा-पीकर आराम कर चुके। कुंकुम और रंग खेलने का समय आ गया। द्वार-द्वार पर घूम-घूम कर लोग फाग गा रहे थे और कुंकुम तथा रंग से सबके चेहरों को रंजित कर रहे थे। आज तो वर्ष का प्रारंभ है। लोग नया खाते हैं, नया पहनते हैं। शर्बती कुर्ते पर रंग खूब खिलता है। मगर नीरू क्या नया पहने? उसके पास तो एक आधी बाँह की कमीज है जिसकी पीठ जगह-जगह मुँह बाये हुए है। ऐसा नहीं है कि गाँव में वही ऐसा है मगर उसको शरम जो बहुत आती है। पता नहीं ब्रह्मा ने किस कोमल धातु से उसका हृदय बना दिया है। अवधूत के समान सभी छोकरे फटा-पुराना पहन कर नाच-गा रहे थे मगर नीरू को क्या हो गया? वह झुण्ड में शरीक नहीं हो रहा था? वह उदास बरामदे में बैठा था और उसका दस वर्षीय छोटा भाई नये कपड़े के लिए मचल रहा था। तेरह वर्ष की बहन लीला भी तो है। उसके लिए एक पुरानी धुली हुई साड़ी को रँग देने से ही काम

चल गया। वह अपनी सहेलियों के साथ लोटे में रंग घोल कर निकल गयी है गाँव में।

छोटा भाई केशव अहक रहा था, माँ परेशान, बाप परेशान, फिर चट्ट—चट्ट—चट्ट। केशव तिलमिला कर गिर पड़ा। फेंकरने लगा। नीरू ने एक बार घूम कर उसकी ओर देखा। उसकी घायल आँखों में एक उपालंभ, एक बेवसी, एक मायूसी और न जाने क्या-क्या उतरा गयी थी। मानो वह कह रहा हो कि मैंने कौन-सा गुनाह किया कि इस तरह मुझे वरस-वरस के दिन यह निर्मम सजा मिली। आज साल के पहले दिन मैंने एक सही सलामत कुर्त्ता ही तो चाहा, क्या यह भी कोई गुनाह है? नीरू भाई के उफनते हुए आँसुओं में तड़पती हुई व्यथा को बर्दाश्त न कर सका। और धीरे-धीरे उठकर अज्ञात दिशा को चलने लगा। अनजाने ही वह फाग की तरंगों से खिंच गया। धीरे से जाकर मुखिया के द्वार पर बैठ गया। फाग चल रहा था। मुखिया धुला हुआ शर्बती का कुर्त्ता और दुपलिया टोपी लगाये रंग छिड़क रहे थे।। महेश का ठाट एक दम नया था। मलमल का नया कुर्त्ता, नयी धोती, मुँह में पान का वीड़ा, आँखों पर आठ आने वाला हरा चश्मा। छोटे-छोटे छोकरे बड़ों के साथ उछल-उछल कर गा रहे थे। उन्हें अपने नंग-धड़ंगपन की कोई सुधि न थी। और रही भी हो तो कैसे जाना जा सकता है। नीरू चुपचाप खमिया से उठंग कर बैठा था। महेश उसके पास आ कर बैठ गया। नीरू को उसका अपने पास आ बैठना अच्छा न लगा, परन्तु करता भी तो क्या?

महेश ने नीरू से पूछा—'यार आज तुम कुछ उदास से लगते हो, क्या बात है?'

'नहीं तो', नीरू ने हँसने का प्रयत्न करते हुए उत्तर दिया।

लड़कों ने भी हाँ में हाँ मिलाई। 'हाँ, हां नीरू भइया, तुम आज कुछ खोये-खोये से दीखते हो।'

'नहीं-नहीं कुछ नहीं' नीरू का स्वर था।

महेश की आँखें काफी देर से कुछ देख रही थीं और वह सोच रहा था कुछ। उसने सहसा नीरू की पीठ पर हाथ ले जाकर उसकी कमीज के फैले हुए मुँहों को चीरता हुआ बोला—'अरे यार नीरू, तुम तो बचपन में ही संन्यासी हो गये। आज होली है, आज तो जरा आदमी की तरह पहनते ओढ़ते।' और उसकी अँगुलियाँ कमीज के एक छोर से दूसरे छोर तक करकराती हुई दौड़ गयीं। नीरू आहत हो उठा। उसने घूरकर किन्तु बेवसी भरी आँखों से महेश को देखा, मानो कह रहा हो इस

तरह तुम्हें, दूसरों की गरीबी का मजाक नहीं उड़ाना चाहिए । और नीरू वहाँ से उठकर चला गया ।

और लड़कों ने भी इस दृश्य को देखा । महेश का यह मजाक बहुतों को बुरा लगा । कुछ तो अपनी कमीज के फटे अंशों को इधर-उधर छिपाने लगे कि महेश उन्हें भी न फाड़ दे ।

महेश मुसकराता हुआ घर में चला गया और सब लड़के फाग के हुल्लड़ मे खो गये ।

मगर नीरू ? उसका हृदय अपमान से खौल रहा था और गरीबी उस के दिल में आज काँटे की तरह चुभ रही थी । ऐसा नहीं है कि गरीबी के दुख का अनुभव उसने आज पहली बार किया हो मगर आज के अनुभव की तिक्तता कुछ और ही थी । वह चला जा रहा था, चला जा रहा था, मगर कहां जाये ? वह धीरे-धीरे गाँव के बाहर हो रहा । उसे लग रहा था जैसे महेश की अँगुलियाँ अब भी उसकी कमीज में उलझी हुई हैं । वह शिथिल पैरों से बढ़ता-बढ़ता गाँव के पश्चिम वाले बाग की ओर निकल गया । आम की मंजरियों की गन्ध चारों ओर फैली हुई थी । कुछ दूर पर एक खलिहान था जहाँ दक्खिन टोला का डाँठ जमा होता था । खलिहान के पास यहाँ-वहाँ अरहर की भीरें खड़ी थीं । कुछ गेहूँ-जौ के सुनहले खेत अब भी दूर-दूर तक फैले हुए थे मानो वे भी धूप का रंग खेल रहे थे । चने के खेत कभी-कभी हवा के झोंकों में बज उठते थे । नीरू बरगद की छाँह में बैठने के लिए उसी ओर बढ़ गया । मगर यह क्या ? यह कौन अस्थि—कंकाल यहाँ उतर आया है ? यह तो रामदीन है । हरे चने का एक मूठ लेकर दानों को निखोर कर खा रहा है । दूसरा लड़का होता तो रामदीन की इस दुर्गति पर अट्टहास करता, थू-थू करके चिढ़ाता, मगर नीरू को क्या हो गया ? वह एक दम उदास हो गया । कुछ देर हक्का-सा इस कुरूप दृश्य को देखता रहा । फिर भर्रायी हुई आवाज में पूछा—'बाबा, रामदीन !'

काँपते हुए रामदीन ने झुर्रियों भरा चेहरा फेरा—कौन ? कौन हो बाबू ?

'यह तो मैं हूँ बाबा, नीरू ।'

'अच्छा नीरू बाबू ? अब आँख नहीं रही बाबू, पहचान नहीं पाता ।' कहकर वह आँख से कींचर पोंछने लगा ।

'लेकिन बाबा' यह क्या कर रहे हो आज बरस-बरस के दिन ? नीरू की वाणी दया से काँप रही थी ।

'जाने दो बाबू' अभी तुम बच्चे हो क्यों इस फेर में पड़ते हो ? सभी को अपना-अपना भोगना पड़ता है ।' रामदीन की आवाज टूट-टूट कर काँप रही थी ।

'लेकिन बाबा, लेकिन बाबा'—नीरू कुछ आगे नहीं कह पा रहा था।

'क्यों मेरे लिए इतना परेशान होते हो नीरू बाबू। अब मेरे पास रहा क्या जिसके लिए परेशान हुआ जाय? एक रही सही झोपड़ी थी, उसकी भी सम्मति मइया के साथ गति बन गयी। मैं तो अब दो दिन का मेहमान हूँ, कहीं किसी पेड़ की छाँह में दो दिन काट लूँगा, किसी खेत से कुछ माँग लूँगा, खेत बड़े दानी होते हैं कुछ दे ही देंगे और कहीं किसी रास्ते पर लेटकर दम तोड़ दूँगा। हवा धूल से ढक देगी या सियार, कुत्ते घसीट कर अपने बाल-बच्चों का एक दिन पेट भर लेंगे।'

नीरू को रामदीन की बातें बड़ी डरावनी मालूम पड़ रही थीं। उसे लग रहा था जैसे इस बूढ़े बरगद के पत्तों से कोई काँपती हुई आवाज फूट-फूट कर उसकी नस-नस में सिहर रही है। नीरू का जी कचोट रहा था। बोला—बाबा, आज सारा गाँव राग रंग में डूबा है। सब लोग पूड़ी-सोहारी खा-पी रहे हैं और तुम इस बरगद के नीचे बैठे चने के दाने निखोर-निखोर कर खा रहे हो।

रामदीन के मुँह से पूड़ी के नाम से पानी भर आया। उसे ऐसा लगा कि गरम-गरम पूड़ियाँ उसके भूखे मुँह में पड़ने ही वाली हों। मगर उसने असलियत को ७० वर्ष तक देखा था। अपने को सँभालते हुए बोला—'भगवान् तुम्हें जुग-जुग जियावे और भागमान बनो भइया। मैंने घर-घर को देखा है, उसके सुख और दु:ख की हर एक आवाज का गवाह हूँ। मगर तुम्हारी आवाज सबसे अलग है भइया। तुम मेरी बात मानों बाबू, मुझ बूढ़े को अपने करम पर झंखने दो, तुम जाओ राग रंग में शामिल हो जाओ। बड़े मुश्किल से यह दिन आता है, इसके बाद तो फिर वही सन्नाटा, फिर वही उदासी गाँव पर छा जाती है नीरू बाबू!'

नीरू का किशोर हृदय एक अज्ञात आशंका से हिलने लगा। उसे लगा कि सारे गांव से बहिष्कृत यह वृद्ध आत्मा सारे गाँव पर शाप बनकर छा जायेगी। नीरू वहाँ ठहर न सका। धीरे-धीरे घर की ओर लौटने लगा। उसकी इच्छा हुई कि वह घर से कुछ लपसी-सोहारी ले कर इस बूढ़े के आगे परस दे और बूढ़े की आत्मा आशीर्वाद की तरह चारों ओर बिछ जाय। गाँव में फाग का कोलाहल मचा हुआ था। सामने से गाँव की लड़कियों का एक झुण्ड फाग गाता निकल गया। नीरू को कुछ भी दिखाई न पड़ा। उसे यह भी ज्ञात न हुआ कि लड़कियों की टोली में दो हमजोली आँखें उससे कुछ शिकवा कर रही थीं। वह उस अँधेरी गली में घुसने लगा कि सुन पड़ा, नीरू!

'कौन है ?'––नीरू ने पीछे मुड़कर देखा। मगर उसके देखने के पहले अबीर से भरे दो हाथ उसके गालों पर चिपक चुके थे। नीरू ने देखा गेंदा थी। वह नीरू के गालों को हथेलियों से कस कर इस कदर अपनी ओर खींचना चाहती थी जैसे वह उसके भीतर की समस्त शक्ति निचोड़ कर अपने उन्माद में डुबा देगी। नीरू इस दबाव के लिए तैयार नहीं था। आजिजी से उसे फटकार कर कहा, 'क्या करती हो गेंदा तुम्हें शरम नहीं आती ?' मगर गेंदा हाँफ रही थी। वह बिना कुछ कहे उसके गाल को मलती रही और मुसकरा दिया। नीरू अभी यौवन की भाषा से परिचित नहीं था किन्तु कैशोर की एक रंगीनी धीरे-धीरे उसके मन में उषा की लालिमा की तरह फूट तो अवश्य रही थी। मगर वह गेंदा को जानता था, उसे भीतर ही भीतर इस लड़की से नफरत थी। गाँव की छोकरी बहन ही तो है। बहन इस तरह भाई पर नागफाँस डाले यह उसके सरल गँवई संस्कारों भरे मन को असह्य था। यह सोचते-सोचते नीरू को गुस्सा आ गया। जोर से फटकार कर बोला––'जाओ हटो बदतमीज। कोई देखेगा तो क्या कहेगा ?'

गेंदा थोड़ी सहम कर दूर खड़ी हो गयी। सम्भाल कर बोली––'अच्छा तो यहाँ तक सोचने लगे हो ? आज तो रंग खेलने का त्यौहार है; क्या भाई-बहन रंग नहीं खेल सकते हैं ? हूँ बड़ा घमंडी हो गया है।'

'हाँ हाँ घमंडी हो गया हूँ––जाओ अपना रास्ता देखो', कहता हुआ नीरू जल्दी-जल्दी चला गया। घर जाकर पता लगाया तो मालूम पड़ा खाना खतम हो गया है। वह जानता था अपने घर की हालत। उसके पिताजी कल खलिहान से थोड़ा सा गेहूँ पीटकर लाये थे, माँ ने उन्हें पीसकर त्यौहार की सोहारी का इन्तजाम कर लिया था। गेहूँ था ही कितना ? उसमें भी पवनी प्रजा। लपसी तो सुबह ही कम पड़ गयी थी। इतना पैसा कहाँ जो अधिक गुड़ खरीदा जा सके ? मगर रामदीन का चित्र उसकी आँखों में तैर रहा था––वह क्या करे ?

शाम हो रही थी ? उसका छोटा भाई रो-धोकर लड़कों में शामिल हो चुका था। बहन भी अपनी सखियों के साथ थी, पिता जी भी बाहर गांव में घूम रहे थे। माँ किसी प्रबन्ध में व्यस्त थीं शायद शाम के लिए खाना का प्रबन्ध करने के सोच-विचार में थी। नीरू घर से निकल पड़ा। धीरे-धीरे गाँव के उत्तर वाले टीले पर निकल गया। वहीं पीपल के पेड़ की निष्पत्र डालियों की छाँह में पत्थर के चबूतरे पर बैठ गया। उसके आसपास कुछ जंगली झाड़ियाँ थीं। पीपल के नीचे वही ब्रह्म बाबा का पिण्ड अभय वरदान के रूप में स्थित था।

नीरू का माथा घूम रहा था । अपमान की तिक्तता, रामदीन का चित्र––माथा क्यों न घूमे ? तेल की सोहारी क्या कम माथा घुमाती है ? मगर गरीबों की तकदीर में घी कहाँ लिखा है ? तेल की सोहारी, यह धूप, अबीर की गरमी, सभी तो माथा घुमाने के लिए एक साथ गाँठ जोड़ लेते हैं । शाम ढल गयी । ठंढी हवा का झोंका तैरने लगा । धीरे-धीरे चाँदनी निकल आयी । गेहूँ-जौ के खेतों पर चाँदनी बिछ गयी । नीरू को यह बड़ा मनोहर लगा । उसका सिर हलका होने लगा । अब भी झालों की झमझमाहट, ढोलों की ढमढमाहट दूरियों को तैर रही थी ।

नीरू चौंक पड़ा । 'हैं यह क्या ठंडा-ठंडा ?' एक मधुर खिलखिलाहट से टीला बज उठा । नीरू ने देखा––'संध्या तुम !'

'हाँ जी मैं'––संध्या फिर खिलखिला पड़ी । और अबीर से भरी हुई हथेली को उसके गालों पर लपेट दिया । नीरू चुपचाप चबूतरे पर बैठा रहा । संध्या को यह चुप्पी अखर रही थी । उसने उसके गालों पर अंगुली से ठुनकी देकर कहा––'क्यों जी साधु बाबा, आज इतने भारी कैसे हो गये हो ? मैं तो तुम्हें कब से खोज रही हूँ । गाँव में तुम्हें पश्चिम की ओर से आते देखा भी तो तुम जैसे न देखने की कसम खाये हुए थे । आखिर तुम्हें रह-रह कर हो क्या जाता है ?'

नीरू बोला––'संध्या तुम्हें यहाँ डर नहीं लगा । लोग कहते हैं कि यह बड़ा भयानक स्थान है । भूत रहते हैं यहाँ !'

'डर काहे का जी, मैं जानती थी कि तुम जब गाँव में नहीं हो तो उसी अपने प्यारे टीले पर गये होगे । तुम्हारे साथ मुझे कौन-सा डर है जी ?'

नीरू की आंखें गीली हो उठीं । उसने गीली आंखों को संध्या के ऊपर बिछा दिया । स्निग्ध, चमकीला मुँह जिस पर चांदनी बिछल रही थी । बड़ी-बड़ी मासूम आंखें, जिनमें कुंकुम का रंग घुल गया था, अबीर की हलकी-हलकी आभा से रंजित बड़े-बड़े काले-काले केश जो उसकी पीठ के साथ अगल-बगल लहरा कर फैल रहे थे । स्वस्थ गोरी-गोरी देह जिस पर एक महीन बासन्ती साड़ी खिल रही थी, जिसपर रंगों के गुलाब उभर आये थे । वह मुसकरा रही थी मानो ज्योत्स्ना में नहाती हुई स्वयं संध्या ही उत्तर आयी हो ।

'क्यों संध्या, आज तुमने रंग नहीं खेला क्या ?' नीरू ने उसके मुख की स्वच्छता को लक्ष्य करके कहा ?

'क्यों नहीं खेला, मगर यहाँ तो नहा-धोकर आयी हूँ ।' वह मुसकरा रही थी ।

'क्यों संध्या ?

इसलिए कि मैं दूसरों से रंगा हुआ मुख तुम्हारे हाथों को नहीं सौंपना चाहती ।'

'तो क्या औरों ने रंग दिया है तुम्हें ? और ऐसा रंग दिया है कि उसे धोने की जरूरत पड़ रही है?' नीरू थोड़ा सा शोख हो गया ।

'हिश तुम तो क्या से क्या सोच लेते हो । किसकी मजाल कि मेरी निगाह को भी छू दे । मैं तो अपनी सखियों की बात कर रही थी।' संध्या का मुख अरुणिम हो उठा ।

थोड़ी देर तक कोई नहीं बोला । फिर नीरू उठा । संध्या से अबीर लेकर उसके चेहरे पर कोमलता से रगड़ दिया । दो—मासूम आत्माएँ जैसे इस चाँदनी की स्वच्छता के नीचे कुंकुम की लाली में भींग रही थीं ।

नीरू ने कहा—'चलो अब घर चलें देर हो रही है । वह आगे-आगे चल पड़ा । संध्या उसके पीछे हो ली । फिर एक मौन रहा । फिर संध्या ही बोली—'नीरू, आज तुम इतने उदास क्यों दीख पड़े रहे हो ?'

नीरू कुछ नहीं बोला, चलता रहा ।

'क्यों जी बोलते क्यों नहीं, नाराज हो क्या मुझसे ?'

नीरू को मालूम हुआ कि संध्या का गला भारी हो गया है । उसने मुड़कर कहा—'नहीं संध्या, मैं नाराज किसी से नहीं हूँ, मुझे इस तरह गला भारी करके सताओ मत।'

फिर खामोशी रही ।

'संध्या' नीरू का सहमा हुआ स्वर था ।

'कहो ।'

'जानती हो मैं कितना गरीब हूँ।'

संध्या कुछ न बोली। जैसे कह रही हो, क्या व्यर्थ की बातें कर रहे हो ?

'मगर जाने दो ये सब व्यर्थ की बातें हैं ?'

'कहो न ।' संध्या ने भारी स्वर से कहा ।

'तो तुम सुनोगी।'

'हूँ ।'

'मेरी पीठ देख रही हो।'

'हूँ ।'

'देखो महेश की अँगुलियाँ इसमें उलझी हैं कि नहीं ? उसने मेरी गरीबी का मजाक उड़ाया है।'

'जाने दो नीरू, वह तो जंगली है । उसकी बात का नहीं लेते, उसने तो..... ।'

'क्या उसने तो ।'

'उसने तो मुझे आज एक गली में अकेला पा लिया और रंग छोड़ने को झपटा । मैंने एक ईंट उठाकर उसकी ओर मारा । बच्चू भागते नहीं तो खून की होली खेल लेते । तो भी पीठ पर भरपूर ईंट पड़ी है, समझते होंगे बच्चू ।'

'तुमने.... खैर अच्छा किया । मगर सुनो वह रामदीन कहार है न, आज वह उस बरगद की छाया में बैठकर चने निखोर-निखोर कर खा रहा था । मुझे ऐसा लगता है संध्या, जैसे गाँव के इस राग-रंग पर एक काली छाया तैर रही है ।'

'तुम कविता लिखते खराब होते जा रहे हो नीरू ।' संध्या मन ही मन इस कवि नीरू की इस कोमलता पर रीझ आयी । उसे एक गर्व हुआ ।

'संध्या !'

'हूँ ।'

'मैं अभी इस रामदीन के पास जाऊँगा ।'

संध्या समझ गयी नीरू की वेदना को । 'अच्छा नीरू, तुम अपने घर के पिछवाड़े रहना मैं आऊँगी ।'

'संध्या, अब गाँव नजदीक आ रहा है तुम आगे चलो । कोई साथ देखेगा तो भला नहीं समझेगा ।'

'संध्या मुस्करा दी और चल पड़ी ।'

नीरू घर के पिछवाड़े खड़ा था कि संध्या आयी और उसे एक पोटली पकड़ाती हुई बिना रुके निकल गयी ।

नीरू उस पोटली को लेकर पश्चिम वाले बाग की ओर बढ़ा । बाग में आ गया । देखा, दो छायाएँ बरगद की ओर बढ़ रही थीं । नीरू पहले तो कुछ सहमा—आखिर ये छायाएँ कौन हो सकती हैं ? भूत ? नहीं-नहीं अभी तो शाम हुई है भूत कहाँ से आयेगा । उसे पुस्तकों के उपदेशों से बल मिला 'नहीं नहीं भूत नहीं होते हैं । वह तो मन का भ्रम होता है ।' मगर उसके भूतों के भय से बने गँवई संस्कार कभी-कभी जुगनू की तरह मन में कौंध उठते थे । नहीं अभी कोई डर नहीं है । अभी गाँव में फाग उमड़ रहा है । वह पेड़ों की आड़ में छिपता-छिपता छाया के पीछे हो लिया । छायाएँ बरगद की सघन छाँह की ओर बढ़ी जा रही थीं । और कुछ स्पष्ट आवाजें भी आ रही थीं । और सहसा दोनों छायाएँ रुक गयीं । और स्पष्ट चीख सुनाई पड़ी ।

'गे...गे...गेंदा ।

'भु भु भु भु भूत'

'क...क...कहाँ ।'

ब...बु...बु...बु देखो ब ब बरगद के के नी इ इचे ।

'भु...भु...भूत !'

'भु...भु भु भूत !'

धि ...धि...धीरे बोलो...गे...गे...गेंदा ।

को...कोई सु...सुन लेगा ।

बुहूत

दोनों छायाएँ पीछे हटने लगीं, कुछ दूर आकर गिरती-पड़ती सरपट भागने लगीं । एक छाया ने दूसरी की कमर हाथ से पकड़ ली । 'दे... दे...देखो अकेले क...कहाँ भागते हो ?'

भा...भा...गो न...न...हीं तो ज...ज...जान गयी ।

'नीरू को हँसी आ रही थी, उसे मजाक सूझा । पेड़ की छाँह में खड़ा होकर नक्की सुर में ललकारा—'धरों धरों' आँज अब तुमकों नहीं छोड़ूँगा ।' और उसने एक ढेला फेंका दिया जो पेड़ों के पत्रों से खड़-खड़ करता हुआ महेश के पास गिरा । महेश भड़-भड़ भागा जा रहा था गेंदा कमर से लिपटी घिसटती भाग रही थी । 'छो...छोड़ पाजी तु... तू हमको भी ले बी...बीतेगी—भु...भूत तो मारेगा ही को कोई दे...दे...देख ले...लेगा तो...दो...दो...दोहरी मौत मिलेगी । बुबुहुहूत ढेले मार रहा है ।'

सड़क की ठंडी धूल में एक कुत्ता लेटा हुआ था । महेश बदहवासी में उसी के ऊपर गिर पड़ा । कुत्ता चों-चों करके उठ खड़ा हुआ और इन भागते हुए दोनों प्राणियों के पीछे भूँकता दौड़ने लगा । महेश परेशान हो गया । सा...सा...साला यह भी ए...एक...मु मुसीबत खड़ा हो गया । तू—तू हमें छोड़ न...नहीं तो यह भू...भूत और कु...कुत्ता हमें जि...जिन्दा न छोड़ेंगे ।

नीरू हँस रहा था । सूअर बहादुर बनता है । वह रामदीन के पास बढ़ गया । रामदीन आहट पाकर चौंक उठा—'कौन ?'

'मैं हूँ नीरू ।' कहकर उसने रामदीन के आगे वह पोटली खोल कर बढ़ा दी और रामदीन के भूखे हाथ उस पर एक साथ टूट पड़े । उसकी आत्मा ज्यों-ज्यों तृप्त हो रही थी, त्यों-त्यों उसकी खोह-सी आँखों से आशीर्वाद की करुणा बरस रही थी । नीरू को ऐसा ज्ञात हो रहा था जैसे काले-काले बादल छँट रहे हों और उसमें से दूध की तरह सफेद चाँदनी फूट-फूट कर उतरा रही है । न जाने किस पेड़ से कोयल कूक उठी-कुऊ—कुऊ ।

२

फागुन की मस्ती उतरी नहीं कि चैता की मादक गन्ध प्राणों से फूट पड़ी। प्रकृति नवता के उन्माद में डूबी है। रात को पिछला पहर काँपती हुई चाँदनी में सराबोर है। पाकड़ में टूँसे आ गये हैं जो कहीं-कहीं लाल-लाल कोमल हथेलियों की तरह पसर गये हैं। आम्र-मंजरियों की गन्ध झकाझक उड़ रही है। वासन्ती हवा की झरझराहट के साथ। 'पी कहाँ' पी कहाँ' पपीहा रट रहा है। इस चाँदनी में दूर-दूर के गाँव और खलिहान उड़ते मालूम पड़ रहे हैं। तो फागुन बीत गया। फागुन भर विरहिनियों ने प्रियतम का रास्ता देखा, पर प्रियतम को नहीं आना था नहीं आये। फागन मस्त महीना है। मस्ती अपना हमजोली खोजती है। पर चैत भी तो कम मस्त महीना नहीं है। अब भी वे आ जायें तो कुछ बिगड़ा नहीं है। पर नहीं आये। कोई गा रहा है—

'आ॰ गइलें चैत महीनवा हो रामा !
कि सइयां नाहीं अइलें'

चैता है। कैसा दर्द है इस छन्द में ! और गाने वाले के गले में कितना दर्द है। मगर जो दर्द इस गीत के भाव में है उसका क्या कहना ? लगता है कि इस दर्दीले स्वर पर रात का पिछला पहर ऊपर नीचे हो-होकर काँप रहा है। दर्द की धारा धीरे-धीरे चाँदनी की फेनिल घाटियों में फैल रही है। सपनों के बच्चे जैसे इस लोरी की थपकी पर झूम रहे हैं।

गीत बह रहा है। मगर संजोगिनी स्त्रियाँ ही कहाँ चैन से हैं ? देखो वह कोयल कूक रही है उस निष्पत्र नीम की डाल पर वैठी हुई। साफ तो दीख रही है। संयोगिनी उससे शिकायत कर रही है—

सेजिया से सैंया रुसि गइलें हो कोइलरि,
तोरी मीठी बोलियाँ

कोयल की अब खैयर नहीं है, वह ऐसे मौके-बेमौके क्यों बोलती है ? कि सइयाँ सेज से ही रूस कर चले जाँय।

'होत भिनसरवाँ मैं अगिया लगइबों
अवर कटइबों धन निबिया हो रामा
तोरी मीठी बोलियाँ !'

धीरे-धीरे रात चुक रही है । उजास फूट रहा है । सेमल के लाल लाल फूलों के अँगार सूनेपन को वेधते हुए दहल रहे हैं । 'नीरू सोते रहोगे ? सबके बैल खलिहान में आ गये और तेरी नींद ही नहीं टूटती है । काहे को टूटे ? दलिद्दर माथे पर जो सवार है ।' नीरू आँख मलते हुए उठा । देखा—उसके पूज्य पिता जी सुबह-सुबह यह मंगल ध्वनि करते हुए खड़े हैं । नीरू आहत हो उठा, मगर यह कोई नयी बात तो नहीं है । नीरू आँख मलता बोलने लगा—मैं क्या-क्या करूँ ? इम्तहान सिर पर सवार है उधर देर तक पढ़ता हूँ इधर आप सुबह-सुबह बैलों के साथ नाथ देते हैं, कैसे क्या होगा ? कहने को तो कह गया मगर वह जानता है कि इसमें बाप का भी क्या कसूर ? बाप की अवस्था इस समय पचपन के पास है । नीरू घर में सबसे बड़ा लड़का है । बाप खुद कर नहीं पाते और अवकात इतनी छोटी है कि मजदूरे लगा नहीं पाते । कुल ले देकर चार ही बीघे तो खेत हैं । दो बीघे खेत तो मुखिया के यहां रेहन रखे हुए हैं । फिर काम तो होना ही चाहिए । वह न करेगा तो कौन करेगा ? मगर यह परिस्थिति-बोध हमेशा सत्रह वर्षीय बालक के मन को सन्तुलित रख पाने में समर्थ नहीं हो पाता । कभी-कभी नीरू खीझ उठता है इस आजिजी के साथ कि काम हो या न हो मेरी बला से । मैं क्या-क्या करूँ ? तो नीरू की नींद में सुबह-सुबह खलल पड़ी यह उसे अच्छा न लगा । वह भुनभुनाया—मैं बैल देखूँ कि इम्तहान । हमी को चारों ओर से पेरा जाता है । वह उठा —घर की ओर चला । नींद की खुमारी जब हलकी हुई तो उसे चेत हुआ कि 'और किसे पेरा जाय ?' और वह अपना तथा भांजे के बैल लेकर खलिहान में पहुँच गया । दँवरी नध गयी । डाठों के 'पड़-पड़-पुर पुर' फटने और 'हट्ट हुट्ट' की आवाज से खलिहान गूँजा हुआ था । इस धारा में नीरू के खलिहान का स्वर मिल गया ।

दो घड़ी दिन चढ़ गया । लड़के स्कूल जाने लगे । उन्हें देख देख कर नीरू का धैर्य छूट रहा था ।

'बाबू अब मैं जा रहा हूँ स्कूल ।'

नीरू ने रुकते हुए कहा ।

'क्या जल्दी मचाये रहता है रे, इसकूल कोई खाने को देगा ?'

'जल्दी कहाँ है सभी लड़के तो जा रहे हैं ।'

'सभी लड़के अधिका हैं उन्हें घर कोई काम नहीं रहता—सबेरे से ही इसकूल जाकर मस्ती करते हैं ।'

नीरू का चेहरा रुआँसा हो गया । सुमेश पाँड़े बेटे की इस हठवादिता पर चिढ़ गया—कैसा नालायक लड़का है, खलिहान में आई हुई लच्छिमी

को छोड़ कर इसकूल-इसकूल मचाये हुए है। इसकूल कोई खाने को देगा ? और नहीं तो फीस-फास, चन्दा, सीधा के मारे नाक में दम हुआ रहता है। बूढ़ा सुमेश बेटे की ओर बढ़ा और उसके हाथ से हाँकने का डंडा छीन कर ढकेलते हुए कहा 'जा-जा अपने बाप के यहाँ' और फिर वह हट्ट-हट्ट करके बैलों को हाँकने लगा।

नीरू आँखें भरे हुए धीरे-धीरे घर आया। माँ ने पूछा—क्या है बेटा ? आँखें क्यों भरी हुई हैं ? 'कुछ नहीं माँ ? बाबू को मेरी पढ़ाई पसन्द नहीं है। स्कूल जाने को देर हो रही थी। कहा तो उन्होंने मुझे ढकेल दिया।' फिर वह धीरे-धीरे हबसने लगा।

माँ की आँखें गीली हो आईं। उसने बेटे को छाती में जोर से जकड़ लिया। 'बेटा तू जा स्कूल। तेरे पिता जी ऐसे ही लायक होते तो ये दिन काहे को देखने पड़ते। मैं अगर लड़ झगड़ कर इतना न करती तो तुझे तो ककहरा भी नहीं आया होता।' माँ ने बेटे के सामने जौ की तीन-चार बासी रोटियाँ और मटर की दाल रख दी। बेटे ने बड़े गंभीर मन से उसे समेट कर स्कूल की राह ली।

सुमेश पांड़े ने बेटे को ढकेल दिया मगर उसका धक्का उसके दिल को भी लगा। उसकी गरीबी ने उसके स्वभाव को रूखा कर दिया था। किन्तु उसके भीतर मोह का सोता था। यह मजबूरियों से घिरा होने के नाते वर्तमान को ही देख पाता था। भविष्य के प्रति उसकी दृष्टि हमेशा सजग नहीं रह पाती थी। हर बार वर्तमान की छोटी उपलब्धियाँ भविष्य की बड़ी संभावनाओं का तिरस्कार कर देतीं। नीरू उसका बेटा था। बेटे को कौन नहीं चाहता ? मगर नीरू की पढ़ाई लिखाई और भावी समृद्धियों से बढ़कर सत्य था खेतों में काम करना, घर का काम करना जिससे इस गरीब परिवार का पोषण हो सके। मगर जब गाँव वाले नीरू की तारीफ करते—और मास्टर लोग उसकी तेजाई की प्रशंसा करते नहीं थकते तो सुमेश पाँड़े का कलेजा गर्व से दूना हो उठता। और उस क्षण वे सोचते कि जैसे हो यह पढ़े तो अच्छा हो। बातचीत चलने पर वह यह घोषणा भी करता कि भाई, जैसे भी हो बच्चों को पढ़ा देना ठीक है। गाँव घर के पास-पड़ोस के लोग कभी-कभी कहते भी कि लाख गरीबी भोग रहे हैं किन्तु सुमेश पाँड़े अपने लड़कों को पढ़ा रहे हैं और लड़के भी क्या हैं बिजली की तरह तेज। सुमेश घर आकर अपनी पत्नी और बच्चों के बीच इन स्तुति-वाक्यों को दुहराते नहीं थकते। और कभी-कभी तो पत्नी से इस बात पर कहा-सुनी हो जाती, जब पत्नी कहती कि यह तो तुम्हारा जी ही जानता होगा कि

किस तरह तुम लड़कों को पढ़ा रहे हो। मगर काम के अवसरों पर यह सारी गर्व-भावना विस्मृत हो जाती और बार-बार बड़े बेटे नीरू को झिड़क देते। मगर कांड खतम हो चुकने पर धीरे से रो पड़ते—क्यों मैंने अपने बेटे को इस तरह कह दिया ? आखिर उसने क्या कसूर किया था ? नीरू की मां ने इसीलिए इन्हें झूठा मोही नाम दे रखा था यानी कि ये मोह केवल निष्क्रिय आँसुओं से ही व्यक्त करते हैं प्रयत्नों से नहीं। सो सुमेश पांड़े दँवरी हांकते-हांकते धीरे-धीरे रो रहे थे।

एक थी नीरू की मां। वह वर्तमान से लड़कर भी भविष्य के प्रति सचेत थी। वर्तमान की काली गुफाओं में वह अन्धकार से लड़ रही थी, भविष्य की एक ज्योति लेकर। वह ज्योति था नीरू। वह किसी भी मूल्य पर इस ज्योति को बुझने नहीं देगी, इसका उसके मन में निश्चय था। बेटे के प्रति बाप के इस व्यवहार को देखकर उसका दिल आहत हो उठा और एक बार उसके अपने सारे पिछले प्रयत्न मन में कौंध गये।

नीरू रास्ते में अपनी छोटी-सी जिन्दगी के अनुभवों को दुहराता जा रहा था। आज तो इतनी देर हो गयी है मास्टर जी क्या कहेंगे ? मगर उसकी स्मृति की आँखों के आगे पुस्तकों की कितनी ही पंक्तियाँ उतरा आयीं कि 'माता पिता की आज्ञा मानो, अपना काम अपने हाथों करो, पढ़ाई के साथ-साथ अपने और समाज के कामों में हाथ बटाओ।' उसका जी हलका हो गया। उसे लगा कि देर हो गयी तो क्या वह एक सपूत की तरह घर का भी काम करता है और स्कूल का भी। वह किसी से घटकर नहीं है। उसे एक गर्व का अनुभव हुआ। और गाँव के सभी मास्टर तो यही करते हैं। उठकर वे घर का सारा काम-काज करके दोपहर को स्कूल के लिए घर से निकलते हैं। नीरू स्कूल पहुँचा तो देखा छोटे क्लास के मास्टर लड़कों को अपनी पतली छड़ी से यों ही सप्प-सप्प पीटते हुए एक सिरे से दूसरे सिरे तक घूम रहे हैं और लड़के अपनी-अपनी बारी पीठ टेढ़ीकर कर के जोर-जोर से घोप रहे हैं—दूका दू ई दू दूना चार—छ छाके छत्तिस—छक्के नब्बे, सते पिचो-तर...।

नीरू क्लास में पहुँचा तो लड़कों की निगाहें मुसकरा उठीं। नीरू का दिल किसी अज्ञात आशंका से धक्क से रह गया। मास्टर साहब जो कुर्सी पर बैठ कर मेज पर टांग फैलाये हुए थे स्वागत करते हुए बोले—आइए आइए मानीटर साहब, कहाँ रहे अब तक ? लड़के हँस पड़े। नीरू ने एक बार लड़कों की ओर देखकर—उन लड़कों की ओर जिन्हें मुक्का मारे से ढेकार नहीं आता है, किन्तु बेहयाई से हँस रहे हैं—

गर्व से कहा—'मास्टर साहब, जरा दँवरी हाँक रहा था, देर हो गयी।'
मास्टर साहब ने अपनी टाँगे समेट कर कुर्सी पर कर लीं और हकारत उगलते हुए बोले, 'तो जाओ दँवरी ही हांको पढ़ने क्या आये हो? पढ़ने के लिए बड़ी तपस्या करनी पड़ती है। मस्ती से पढ़ाई नहीं होती।'
लड़कों में फिर एक कहकहा उठा। महेश अपने अगल-बगल के साथियों को खोद-खोद कर मुँह बना-बना कर हँस रहा था। मास्टर ने नीरू के हाथ पर एक-दो-तीन-चार बेंत गिन दिये। लड़के हँस रहे थे। मास्टर गुस्सा उठा। उसने सबको कतार से खड़ा कर दिया और सबकी हथेलियों पर हँसने का दण्ड गिनने लगा। महेश को डंडा लगाते समय मास्टर साहब ने मुँह बनाकर कहा—'आने-जाने को एक अक्षर नहीं और शोहदा बने घूमते हैं।' नीरू अब अपनी हँसी न रोक सका। मुँह पर हाथ दबाकर डंडों के साथ महेश का इस बगल उस बगल उछलना देख रहा था।

सब शान्त हो जाने पर मास्टर ने नीरू को बुलाया। 'लो हिसाब बोलो।' नीरू प्रतिशोध की आग में जल रहा था। खूब कठिन हिसाब चुन कर बोला। वह घूम-घूम कर सबको देखता रहा। लड़के बगलें झांक रहे थे। महेश पाकिट से गरी का टुकड़ा निकाल कर चापुर-चापुर खा रहा था। और मुँह को कभी तिकोना, कभी गोलाकार, कभी थुथ्थुनाकार बना-बना कर स्लेट पर पेनसिल से किर्र-किर्र व्यर्थ की लकीरें खींच रहा था। नीरू के मन में संचित आग आज धधक उठना चाहती थी। वह मास्टर साहब के पास आया। बोला—'मास्टर साहब महेश हिसाब न लगा कर स्लेट पर पिनसिल से किर्र-किर्र कर रहा है।' मास्टर साहब बौखला उठे। आव देखा न ताव, जाकर महेश को धुनना शुरू कर दिया और उसकी लपेट में जिसको पाया धोता गया। सबको धो लेने के बाद बौखलाये हुए मास्टर साहब ने ब्लैक-बोर्ड के पास खड़े होते हुए कहा—बोलो हिसाब क्या है? मास्टर साहब हिसाब लगाने लगे। मगर वह मनहूस हिसाब इस ओर से सुलझे तो उस ओर उलझ जाय, उस ओर सुलझे तो इस ओर उलझ जाय। मास्टर पसीना-पसीना हो गये मगर हिसाब को नहीं सुलझना था नहीं सुलझा। अब उन्हें नीरू पर कड़ी खीझ आयी कि इस शैतान छोकरे ने इतना कड़ा हिसाब दिया ही क्यों कि खुद मास्टर भी इसे न हल कर सका। उसका मन हुआ कि नीरू को बुलाकर पचीस बेंत लगाये। मगर इस समय तो उसे कोई उपाय सोचना था। उसे एक सूझ मिल गयी। नीरू की ओर घूमकर पूछा—'क्यों नीरू तूने हिसाब नहीं लगाया?'

'जी नहीं मास्टर साहब अभी तो सबकी निगरानी करता रहा।'

मास्टर साहब ने डाँट कर कहा—'बड़ा उस्ताद बनता है सबको मार खिलाकर अपने सुर्खरू बन गया है। चल पहले तू लगा तब मैं लगाऊँगा। हुँ तू तो कोरा कोरा बचा जा रहा था।' नीरू लपक कर ब्लैक-बोर्ड पर गया और बात की बात में हिसाब हल कर दिया। मास्टर झेंप गया, परन्तु वह तो मास्टर था कैसे अपनी हार स्वीकार करता। बेहयाई से नीरू की पीठ ठोंक कर बोला—'शावाश बेटा, मेरे बताये हुए रास्ते को तू ही तो पकड़ पाया है।' फिर अपने सब विद्यार्थियों को ललकार कर कहा—'गदहो, देखो यह घर का भी काम करता है और तुम सबको चराता भी है (लड़कों में से किसी ने भुन्न से कहा कि तुमको भी, मगर मास्टर ने सुना नहीं) इसे लायक लड़का कहते हैं।'

छुट्टी हुई। चैत की अंधड़ भरी दोपहरी। गन्दी-गन्दी देह के गन्दे पसीने में गन्दे फटे कुर्ते कमीज चिपकाये हुए लड़के नंगे पाँव धूल से बलबलाती हुई राह से भागते हुए घर आने लगे। उनके पाँव जब धूल में छौछिया जाते तो लपक कर किसी गुम के पौधे पर खड़े हो जाते और दम लेकर फिर सरपट भागते। लड़के भाग कर गाँव के पास के बागीचे में आ गये। यहाँ आकर चिक्का खेलना उनका नित्य का कार्यक्रम था। जब लड़के तिलमिला कर भागते तब नीरू उन्हें प्रेम से, शपथ से, जबरदस्ती रोकता और बिना चिक्का खेले उन्हें जाने न देता। चिक्का जम गया। गाली दौदी के कोलाहल के साथ चिक्का गरमाता गया। एकाएक बाग के ईशान कोण पर कुछ शोर सुनाई पड़ा। सभी लड़के अपने-अपने फटे कपड़े उठा-उठा कर हो-हो करके उसी ओर को भागने लगे। नीरू भी कैसे न जाता? बेचारे रमेश का बस्ता पकड़ कर महेश खीच रहा था। रमेश दुबली-पतली काया का एक मरियल विद्यार्थी था जो नीरू से एक साल पीछे यानी आठवीं कक्षा में पढ़ता था। वह निरीह बालक हर मदमस्त के नशे का प्रयोगशाला था। नीरू उसे बहुत प्यार करता था, क्योंकि वह उसी के समान पढ़ने में तेज था और गरीब था। वह पट्टीदारी का भाई भी लगता था। वहाँ पहुँच कर देखा कि रमेश बस्ता पकड़ कर बैठ गया था और महेश उसकी बाँह पकड़ कर घसीट रहा था। वह धूलधूसरित हो सबकी ओर रक्षा के भाव से मायूस होकर देख रहा था। परन्तु किसी की भी हिम्मत महेश के पास जाने की नहीं हो रही थी। कौन दूसरे के लिए अपनी जान सासत में डाले? मगर वजह पूछने में क्या हर्ज है? वजह पूछने में एक मजा जो आयगा। 'क्या है महेसू क्या है?' एक साथ कई स्वर फूट पड़े।

'कुछ नहीं है, है क्या? आज इस बदमाश को मजा चखाऊँगा।' और वह गुस्से से हाँफता हुआ रमेश को खींचता रहा जो कि जमीन से चिपटता हुआ सबकी ओर सहायता के लिए देख रहा था।

'अरे भाई ऐसी जबरदस्ती क्या ? कुछ तो बताओ कि बात क्या हुई ?' छोकरे सब बड़बड़ाने लगे।

'महेश अपने बल और धन के घमण्ड में किसी की सुनना नहीं चाहता था। वह मुँह से बुज्जा फेंकता हुआ सबको सावधान कर रहा था कि खबरदार यदि कोई मेरे पास छुड़ाने के लिए आया।' और वह रमेश का गला दबा-दबा कर मारने लगा। 'साला चलता है कि नहीं। साला चोरी भी करता है और नखड़े भी।'

'क्या चुराया है क्या चुराया है, इसने।' सभी एक साथ पूछ पड़े। परन्तु नीरू की आँखों में खून उतर रहा था। वह कारण समझ रहा था। अभी होली वाली घटना ताजी थी। रमेश ने नीरू के बाप को सच्ची बात बताई थी। रमेश नीरू की कमजोरी है, यह महेश जानता है। नीरू से वह आज बुरी तरह खार खाये था, किन्तु सीधे नीरू से टक्कर लेना आसान नहीं था इसलिए वह अपने मन की आग शान्त करने के लिए इस बदमाश रमेश की ही खबर लेने पर तुला हुआ था जो नीरू का पक्का हिमायती है। आज जब वह स्कूल से निकला तो दुर्भाग्य का मारा हुआ रमेश उसे मिल गया। रमेश को देखते ही महेश की प्रतिहिंसा की आग भभक उठी। उसने कहा—'क्यों रे रम्मुआ गरी लेगा।'

'दो न!' रमेश ने अविश्वास के भाव से हाँ कह दिया।

महेश ने गरी का एक टुकड़ा उसकी ओर बढ़ा दिया। भूखे रमेश के हाथ ज्यों ही उस ओर बढ़े कि महेश ने अपना हाथ खींच लिया और वह टुकड़ा अपने मुँह में डालकर काचुर-काचुर कूचने लगा। कूचकर उसने रमेश के मुँह पर थूक दिया—'ले दलिदरवा ले।' रमेश दुबला पतला और गरीब लड़का था, किन्तु गुस्से में मरिचाई था। उसने भी गाली देकर जलती धूल की एक मूठी महेश के मुँह पर दे मारी। महेश आग-बबूला हो गया और खींच कर दो तमाचे उसे जड़ दिये। और उसने झूठे प्रचारित कर दिया कि उसका एक चाकू बहुत दिनों से गायब था वह आज रमेश के पास मिला।

लड़कों के बहुत हल्ला करने पर उसने अपना चाकू दिखा कर कहा—'ये देखो यह मेरा चाकू कई दिनों से गायब था आज। मैंने इसे रमेश के हाथों में देखा। रास्ते में यह इसी से आम छील-छील कर खाता आ रहा था और मैं अचानक वहाँ आ गया।'

रमेश ने रोते हुए क्रुद्ध आवाज में कहा—'झूठ है, एकदम झूठ है। चोरी करने का पेशा मैं नहीं, तुम करते हो।'

महेश ने डपट कर कहा—'चुप शैतान साला, जबान खींच लूँगा।' और फिर खींचने लगा।

नीरू ने अपने को बहुत जब्त किया, जब नहीं रहा गया तो भारी आवाज़ में बोला—'छोड़ दो महेश, बेचारे को क्यों झूठे तंग करते हो?'

'मैं तुमसे नहीं बोलता तू चुप रह नीरू-फीरू'

'लेकिन अगर खैर चाहता है तो छोड़ दे रम्मू को।'

'मैं नहीं छोड़ता।' कह कर खर-खर खींचने लगा।

नीरू अब अपने में नहीं रहा। उसे मालूम नहीं हुआ कि वह क्या कर रहा है? वह एक क्षण में महेश के पास था और उसके हाथ महेश के हाथों को रम्मू की बाँह से अलग कर रहे थे। महेश जला हुआ था ही खींच कर एक जोर का थप्पड़ उसके मुँह पर दे मारा। आकस्मिक चोट से नीरू की आँखें चौंधिया गईं। महेश वाटिका का जल सिंचित खाद-पोषित स्वस्थ वृक्ष था और नीरू शीत और ताप के थपेड़े सहता एक जंगली मजबूत पेड़। महेश ने आज तक नीरू को दूर-दूर से देखा था और उसे एक बुद्धि-दम्भी गंभीर छोकरे के रूप में जाना था। आज पहली बार उसे उसके बालक सुलभ रोष, प्रतिहिंसात्मक आक्रमण और शारीरिक बल से पाला पड़ा था। चोट खाकर नीरू का गुस्सा भयानक हो गया और उसने एक सेकण्ड में धोबिया पाट लगाकर महेश को चित्त कर दिया। महेश नीरू की पीठ पर से उछल कर ऊपर नाचता हुआ जमीन पर पक्के से बेल की तरह छितरा गया। लड़के सब 'हो हा हो हा' करने लगे। कुछ को नीरू के साथ कुछ को महेश के साथ सहानुभूति हो गयी और वे सब आपस में कहा-सुनी करने लगे। रमेश छूट कर बस्ता लेकर घर की ओर भागा। महेश और नीरू अब भी गुँथे हुए थे। मगर जब महेश की नाक में से खून निकलने लगा तो लड़के गाँव की ओर भागे और 'नीरू ने महेश को ऐसा मारा कि उसकी नाक से खून निकल रहा है' का शोर मचाने लगे। बात की बात में लड़कों ने महेश के घर यह खैरख्वाही जता दी। महेश और नीरू बागीचे की धूल में सन गये थे। दोनों हाँफ रहे थे और धीरे-धीरे एक-दूसरे को गालियाँ देते भविष्य में खबर लेने की धमकी देते वे दोनों अशक्त होकर अलग होने लगे।

नीरू लपक कर घर पहुँच गया। महेश नाक से खून चुवाता और हबसता घर की ओर जा ही रहा था कि रास्ते में उसके बाप मुखिया मिल गये। पीछे-पीछे लड़कों की एक जमात हमदर्दी जताती हुई चली आ रही थी। मुखिया कुबेर पाँड़े ने बेटे का रूप देखा। उनके सीने में आग लग गयी। बेटे को कष्ट हो रहा है इस बात की उन्हें फिक्र नहीं थी, उन्हें मलाल तो इस बात का हुआ कि उनका बेटा मार खा गया।

मगर सबसे अधिक मलाल उन्हें इस बात का हुआ कि उस दरिद्र सुमेश के लड़के ने मारा है। नीरू की तेजाई और अपने बेटे की खामी उनके दिल को काँटे की तरह सालती थी। भीतर ही भीतर उनके मन को एक ईर्ष्या की आग जलाती रहती थी। परन्तु इसके लिए वे करते ही क्या? आग को भीतर ही भीतर पीकर जलते रहते। परन्तु आज आग को निकालने का अच्छा मौका आ गया। तड़प कर दाँत पीस कर बोले—'कहाँ है सुमेश का बेटा साला निरुआ? आज उसकी हड्डी-हड्डी चबा डालूँगा।'

नीरू घर आया तो मां ने पूछा—'बेटा, आज तूने यह क्या सूरत बना रखी है? किसी से लड़ाई हो गयी क्या? अरे बोलता क्यों नहीं है? तेरे मुँह पर तो ये तमाम नहछोर लगे हुए हैं। क्या सबसे लड़ाई-झगड़ा ठानता रहता है?' नीरू एक चुप, हजार चुप। माँ कैसे चुप रहती? 'बेटा हम गरीब हैं। हमें अपने हाँथ-पाँव समेट कर चलना चाहिए। बोलो-बोलो क्या हुआ?' तब तक दरवाजे पर गरजने की आवाज सुनाई दी। कहाँ हैं सुमेश देखें अपने लाड़ले की करतूत। माँ ने मुखिया का स्वर पहचान कर नीरू से कहा—'जान पड़ता है महेसू से झगड़ा-तकरार करके आया है। क्यों रे नीरू तू बड़ा सांड़ हो गया है? तू उस शैतान छोकरे से क्यों लगता है? जानता तो है कि हमारे घर पर उनका कर्ज लदा हुआ है। बात-बात में हम दबे हुए हैं, फिर क्यों तू उत्पात करता रहता है।'

उधर मुखिया गर्जन-तर्जन के साथ गालियाँ बक रहे थे—'कहाँ है, सुमेश? निकलता क्यों नहीं है? कहाँ है नीरू साला आज हम उसकी हड्डी-पसली चूर कर देंगे। क्या समझा है हमारे लड़के को? क्या कोई तेली, तमोली, कुरमी, कोहार समझ लिया है हमारे बेटे को कि उस पर हाथ छोड़ता है? आज उस छोकरे को सबक नहीं सिखाया तो मेरा नाम कुबेर नहीं। बड़े-बड़े बहल जां गदहा कहे कतेक पानी।'

सुमेश पाँड़े खलिहान से जले-भुने हुए आये तो यह काण्ड देखा। मुखिया ने सुमेश को देखते ही गरज कर कहा—'कहो सुमेश, तुम्हारे लड़के के मारे इस गाँव में कोई रहने न पाये।' 'आखिर बात क्या है कुबेर भाई?' सुमेश ने पूछा। सुमेश कुबेर से पद में बड़ा था किन्तु कुबेर अपने गुस्से और घमण्ड के मारे सभी बड़े-बूढ़ों का नाम लेकर ही पुकारता था।

'बात क्या है, तुम्हारा नीरू बल से इतना मात गया है कि गाँव के छोकरों का झगड़ा छीन-छीन कर दूसरों से लड़ाई करना रहता है।

रमेश ने महेश का चाकू चुराया। महेश उससे पूछताछ कर रहा था। इतने ही पर तुम्हारे शाहजादे मेरे बेटे पर टूट पड़े। और मार-मार कर उसकी नाक से खून निकाल दिया।'

सुमेश पाँड़े इस घटना की असलियत न जानते रहे हों, परन्तु इतना अवश्य समझ रहे थे कि कुबेर पाँड़े इस समय जो कुछ कह रहे हैं उसमें नियमानुसार आधा तो झूठ है ही। मगर कोई घटना तो जरूर घटी है तभी तो यह मामला इतना तूल-कलाम पकड़े हुए है। सुमेश अपने बेटे नीरू को जानता है। वह लड़का है परन्तु उसकी गंभीरता और बुद्धि सयानों की-सी है। वह कभी किसी लड़के पर यों ही हाथ नहीं छोड़ता। मगर हाथ तो छोड़ा ही है चाहे कारण जो भी रहा हो और वह भी मुखिया के लड़के पर, जिनके पास पैसा है, बल है और बेईमानी तथा जबरदस्ती है। जबरदस्त का ठेंगा सर पर। कर्जा क्या दिया है खरीद लिया है। मगर खरीद लेने में कसर ही क्या है ?' सुमेश ने गर्द से भरे हुए पसीने को पोंछते हुए कहा—'नीरू है कहाँ ?'

'घर में ही छिपा होगा ?' मुखिया गरजे। 'मगर वह छिपकर जाएगा कहाँ हम घर में घुस कर मारेंगे।'

सुमेश के दिल पर यह वाक्य बर्छी के समान गिरा। क्या वह धनी और बली होता तो इस प्रकार के अपमान के वाक्य सहता ? पकड़ के मूँछें उखाड़ लेता। परन्तु लाचारी से बुझ कर रह गया। फिर उसे गुस्सा आ गया नीरू पर। आखिर यह छोकरा क्यों ऐसा काम करता है कि बात-बात पर नीचा देखना पड़े। वह लपक कर गया और मां के हाँ-हाँ कहते रहने पर भी उसने नीरू को तीन-चार थप्पड़ जड़ दिये। इस बीच नीरू ने माँ से सब किस्सा सुना दिया था। माँ का दिल गुस्सा से यों ही जल रहा था तिस पर सुमेश ने थप्पड़ जड़ दिये। वह बाघिन की नाईं गरज उठी—'जवान बेटे पर हाथ छोड़ते हुए शरम नहीं आती। जिनगी भर अपने नामर्द बने रह गये। हर एक आदमी के आगे तुम दबते फिरे, जमीन जायदाद छोड़ते गये। बाल-बच्चों को नामर्दी का पाठ पढ़ाते हो। और बड़े आये हैं मुखिया। जरा घर में घुसकर मारें तो देखें। ऐसा दीदा तो हमने देखा ही नहीं। अपने बेटे को मना काहे को करेंगे, बहुत शरीफ है न वह। लुच्चा कहीं का।'

सुमेश पत्नी के इस रूप से बड़ा परेशान हो गया। दाँत पीसकर बोला—'क्या करती हो दरवाजे पर आदमी खड़े हैं—क्या कहेंगे ? ऐसे मत गाली बको नहीं तो...।' 'नहीं तो क्या ? मुखिया बड़े सरकश हैं तो उजाड़ देंगे। तुम्हें डरना हो तो डरो मैं किसी की दबैल नहीं।

मेरे जीते जी किसी की मजाल नहीं जो मेरे लड़कों को आँख दिखाये। सब पहले अपने बहेंतू और लफंगे लड़कों को सुधारें।'

नीरू की माँ की आवाज सुनकर मुखिया की गर्जना कम हो गयी। सुमेश सकुचाया-सकुचाया-सा बाहर आया। मानो उस पर घड़ों पानी पड़ गया था। इधर मुखिया का भय उसे त्रस्त किये था। मुखिया ने लाल आँखों से चारों ओर खड़े लड़कों और वयस्कों को देखते हुए कहा—'देखते हो तुम लोग ओरहन (उपालंभ) लाने का यही नतीजा होता है। राम-राम कितनी सरकश औरत है यह। हुँ अच्छा।' सब लोग मुसकरा रहे थे। कुछ ने कहा—'जमाना ही ऐसा आ गया मुखिया, कि औरतें मरदों पर राज कर रही हैं।'

सुमेश ने दीन होकर कहा—'जाने दो कुबेर भाई' औरतों के कहने का कुछ ख्याल नहीं करते, वे नासमझ होती हैं। मैंने उस पाजी लौंडे को चार झापड़ लगाये हैं याद करेंगे बच्चू। और अधिक मैं क्या कर सकता हूँ!'

नीरू की मां घर में गरज रही थी—'अच्छा-अच्छा समझदार मरद चूड़ी पहन लो और घर में घुसड़ कर बैठो और नहीं तो मुखिया महाराज के पैर को धोकर पीओ।...'

सुमेश जैसे सबके सामने धरती में गड़ा जा रहा था। औरत की इस बदतमीजी पर उसे बड़ा गुस्सा आ रहा था। द्वार पर से ही चिल्ला कर बोला 'अतऽ नहीं चुप रहोगी, अतऽ नहीं चुप रहोगी, मारते-मारते खाल उधाड़ लूँगा।...'

मुखिया करते भी क्या? उसके पास धन है और जन-बल भी है मगर सुमेश तो भींगी बिल्ली बना हुआ है। औरत की गरमी का वह कैसे जवाब दे? नीरू अपनी बाघिन-माँ की रखवाली में अन्दर बैठा है। वह करे तो क्या? उसकी लाठी का जोश अपने आप में उबल कर रह गया, वह चोट करे तो किस पर? फिर भी उसके दिल में एक भयंकर आग लपटें मारने लगी। वह इसका बदला लेगा, अभी नहीं फिर कभी। उसकी तो कई बाहें हैं, कई अस्त्र हैं। वह अपनी भौंहों के नीचे से अन्धकार उगलता हुआ घूम पड़ा। 'अच्छा देखेंगे' कहता हुआ घर की ओर चल पड़ा। भीड़ बिखरने लगी। सुमेश अन्दर घुसा और एक दोहरा कोलाहल आँगन में देर तक उमड़ता रहा।

३

चैत की नवरात्रि शुरू हो गयी। रात भर नगाड़ों की डिम-डिम-डिम-डिम। समस्त वातावरण में देवताओं की सवारी घूम रही है। हवा का हर एक झोंका किसी न किसी देवता का स्पर्श लिए झरझरा रहा है। डिम-डिम-डिम...आरे मइया कवने कसुरवां एतना देरिया लगवले उहूहू... डिम-डिम-डिम-डिम। चाँदनी रात भी भयावनी लग रही है। लगता है अभी घर से बाहर निकला नहीं कि किसी देवता की सवारी से टकरा गया। चारों ओर लाल-लाल टेसू, लाल सेमल भवानी की ध्वजा की तरह आकाश में जल रहे हैं। नीम की हरी-हरी डालियों पर देवी शीतलामती झूला झूल रही हैं। चारों ओर एक अव्यक्त थरथराहट-सी छायी हुई है। बच्चों की तो मुसीबत है, घर से बाहर निकलने में वे काँप उठते हैं।

नवरात्रि की आखिरी रात है। डिम-डिमाहट से सारी रात उनींदी हो रही है। लगता है—कि हर पेड़ पर, हर मोड़ पर, हर सुनसान पर भूतों के, देवताओं के चेहरे झाँक रहे हैं। ओझों, सोखों की बन आयी है। रात का पिछला पहर गीत से थरथरा रहा है—

> निबिया के डरिया मइया झूलेली हिंडोलवा
> कि झूलि-झूलि ना
> मइया मोरि गावेली गीतिया कि
> झूलि-झूलि ना।

लगता है, सचमुच सामने के पेड़ पर भवानी झूला झूल रही हैं। रात समाप्त होती है। लाल-लाल सूरज निकलता है। डिम-डिम-डिम-डिम...

आज पाँड़ेपुरवा का मेला है। गाँव के दक्खिन एक बड़ा-सा ताल है, वहीं काली माई का मंदिर है। आज के दिन वहीं एक विराट् मेला लगता है। पास-पड़ोस के, जर-जवार के अनेक गाँवों से लोग देवी के दर्शन के लिए तथा अपना टोना-टटका भूत-परेत उतरवाने आते हैं। मेला शुरू हो गया है। देवी के डेवढ़ी पर नगाड़ा बज रहा है। सोखा साहब (रामधन तेली) अभी आँख मूँदे हुए हाथ में लवंग लेकर ध्यानावस्थित हैं। लाल-लाल केले की साड़ियाँ पहने, लाल-लाल टोपी, जुलहटी अँगोछे, तथा लाल-लाल कुरतों से लिपटे हुए बच्चों को गोद में लिए

कजरौटा लटकाये ये ग्राम-देवियाँ झुण्ड की झुण्ड अपने पाप-ताप शमन के लिए आ रही हैं। ऊँची-जातियों के मरद सादी धोती और कमीज या कुरते में अनलंकृत भाव से जुट रहे हैं। किन्तु छोटी जाति के लोगों को तो देखिये—आज धराऊँ कुरता निकला है। मैली धोती पर यह साफ-साफ लाल-पीला कुरता कैसा फब रहा है?

जुल्फ से सरसों का तेल टपकने को हो रहा है। लाठी भी आज तेल पीकर अघा गयी है। गले में लाल-लाल दस्तियाँ बँधी हुई हैं। ये बिरहा गाते हुए झुण्ड के झुण्ड मेले में घूम रहे हैं और मौका खोज-खोज कर औरतों को अपने चक्रव्यूह में घेर ले रहे हैं और फिर संघर्ष शुरू कर देते हैं। भक्त लोग देवी को लपसी-सोहारी चढ़ाने के लिए चारों ओर कढ़ाई छनछना रहे हैं।

झम झम झम झम
डिड डिडिक डिडिक
झम झम झम झम
आ...देबी दरसनवा के जाब

अचरों पर चमारों के नृत्य हो रहे हैं। देवी की डेवढ़ी भक्तों से भर गयी है। बीस-बाईस औरतें खेल रही हैं। सिर पर का कपड़ा खिसक गया है, भूत-से बाल बिखर गये हैं। चोली के बटन खुल गये हैं। साड़ी अस्त-व्यस्त हो रही है। वहाँ एकत्र भक्त लोग प्रसाद लूट रहे हैं। वह देखो, ये औरतें जोर-जोर से छाती पीट रही हैं, बाल नोच रही हैं और जोर-जोर से हुमक रही हैं। देवी के पुजारी रामधन तेली आँख खोल कर एक बार सबकी ओर देखते हैं, फिर साँस को अन्दर की ओर खींच कर गलगलाते हुए एक बार जोर से चीखते हैं—'हत् देबी—कहाँ सोइ गइल तोहरे दरसन खातिर एतनी भीड़ लगलि बा।' और फिर वे झूमने लगते हैं। चारों ओर हाथ-पाँव मार रहे हैं, छाती पीट रहे हैं। अरे वह देखो, पुजारी जी तो पोरसों उछल कर नीचे धड़ाम गिर रहे हैं और जोर से अभुवा रहे हैं। औरतें भी अब जोर-जोर से कूदने लगीं हैं। नगाड़ा जोर-जोर से दहाड़ रहा है। रामधन तेली अभुवाते हुए हरएक औरत के सामने खड़े होते हैं—'बोल-बोल तू कौन है?' 'ओ ओ ओ उ उ उ उ अरे हम जिन्न हईं जिन्न हईं रे बरगदवा पर क जिन्न हईं....आरे आरे ....हम नाहीं छोड़ब..!' रामधन तेली कड़कते हैं, 'बोल शैतान तू छोड़ेगा कि नहीं।' 'छोड़ेगा-छोड़ेगा हमके एक सूअर चाही आ चार बोतल दारू।' दो-चार जवान (जो वहाँ पहले से ही तैनात हैं) उस औरत को पकड़ कर दूसरी ओर बैठा देते हैं।

'बोल-बोल तू कौन है?'

'आरे हम चुरइल हईं रे चुरइल, बँसवरिया में के । ओ ओ ओ ओ....!'

'आरे चमारकाटी तू का करने आयी ?' रामधन तेली कड़कते हैं ।

'उ उ उ उ उ ....राति क जाति रहे हम एके ध लिहलीं । हमके पियरी चाही रे पियरी ।'

'तू कौन है चमारकाटी ?'

'हम एकर सवति हईं रे सवति, हम आपन ५ बरिस के लइका लेके रन-वन में घुमत बाटी आ इ हमरे मरदे के साथ मउज करति बा । एकर दूध पिया के हम लइका जियावत बाटी, एके हम नाहीं छोड़ब रे नाहीं छोड़ब ।'

[मैं इसकी सौत हूँ । मैं अपना पाँच वर्ष का लड़का लेकर रन-बन में घूम रही हूँ और यह मेरे मर्द के साथ मौज कर रही है । मैं इसका दूध पिला-पिला कर अपना लड़का जिला रही हूँ, नहीं छोड़ूँगी ।]

एक-एक औरत को तैनात चार जवान बारी-बारी से उठा-उठा कर उधर रखते जा रहे हैं । पाँड़ेपुरवा के पाँड़े लोगों की विशेष भीड़ लगी हुई है । सब लोग आश्चर्य और भय से यह यह दृश्य देख रहे हैं । लेकिन यहाँ एक लड़का भी खड़ा है, जिसके मन में यह सारा दृश्य एक अविश्वास और विरक्ति का भाव पैदा कर रहा है । इसका जी हो रहा है कि चिल्ला कर कह दे कि यह सब फरेब है, धोखा है । भक्तों के जमघट में इस नादान छोकरे की बात सुनेगा ही कौन ? दूसरे, उसका मन खुद बहुत मजबूत नहीं है इन भूतों, परेतों की ओर से । कौन जाने यह सब सही हो । मगर नहीं पुस्तकों में उसने पढ़ा है कि यह सब ढोंग है, मन की कमजोरी है । इस तरह वह अपने संस्कारों और पुस्तकीय ज्ञान से लड़ता इन सारे अप्रिय प्रसंगों को पीता हुआ खड़ा है ।

कौन है यह ? यह तो गेंदा है । कैसी उछल-उछल कर हाँफ रही है । अपने बाल नोच रही है ।

'कौन है तू ?' पुजारी जी डाँटते हैं ।

'आरे हम नाहीं बताइब रे हु ऊ ऊ ऊ !'

'बता नहीं तो डंडों से पीट कर खाल खींच लूँगा ।' पुजारी जी कड़कते हैं ।

गेंदा पैंतरे बदलती है, 'आरे हम टोना हईं रें टोना ..'

'कहाँ का टोना बोल-बोल...!'

'गाँव के पुरुब, गाँव के पुरुब हु उ ऊ ऊ ऊ उ....!'

'केकरे घर के नाँव बोलु ।'

'नाहीं नाहीं नाँव नाहीं बताइब, समुझि जो गाँव के पुरुब, इनारे के दक्खिन । हम नाहीं छोड़ब ।'

नीरू को तो काटो, तो खून नहीं । यह हुलिया तो उसी के घर की है । यह जरूर गेंदा की बदमाशी है । मगर इस समय वह क्या करे ?

उसके पिता सुमेश भी वहीं खड़े-खड़े कभी से जोश में आने-आने हो रहे थे । वे भी एक सोखा हैं और कहते हैं कि अनेक ब्रह्म, डीह बाबा, आदि उनके सिर आते हैं । गेंदा की बदमाशी से उनके जोश में आहुति पड़ गयी । एक बार जोर से हुंकार कर और उछल कर बीच मैदान में धड़ाम से जा गिरे और आस-पास की वस्तुओं और अगियारी की आग को हाथों से छींटने लगे । चारों ओर एक उत्तेजना फैल गयी । लोग और सामने झुक आये ।

सुमेश ने कड़क कर गेंदा से पूछा—'बोल लौंड़िया, सही-सही बोल ! तू भरे पंच में दगा दे रही है । हमको नहीं जानती, हम टीले पर के बरम हैं ।' टीले पर के बरम से सब लोग भय से सिहर गये और श्रद्धा से झुक गये । जय हो बरम बाबा की, जय हो बरम बाबा की ! गेंदा का सारा नशा काफूर हो गया । वह उछलती-कूदती हुई भी भय से मानों काँपने लगी । सुमेश बार-बार डाँट कर पूछने लगा, 'बोल-बोल तू कौन है ?' फिर भी जब गेंदा नहीं बोली और जोर से हुमकती रही, तो सुमेश ने देवताओं की हँसी हँस कर कहा कि 'अरी लौंड़िया धोखा देने आई है ? देवताओं की सभा में भी तू दगा दे रही है ।' फिर वह गेंदा के पास बढ़ गया और झोंटा पकड़ कर हिलाते हुए कहा—'बोल तू टोना है कि गड़ंत ?' फिर जमीन पर दोनों हाथ जोर-जोर से रगड़ते हुए कहा—'गड़ंत है गड़ंत है, नाते-हीते का गड़ंत है ।' सब लोग सन्न रह गये । गेंदा का हुमकना भी बन्द हो गया और ड्यूटी पर तैनात जवानों ने उसे पकड़ कर एक ओर डाल दिया ।

गेंदा का भाई बैजनाथ इस अपमान को देख कर खून का घूँट पी कर रह गया; किन्तु उसने भृकुटियों पर बल नहीं आने दिया । वह अपनी आदत के अनुसार बड़े ही निर्लिप्त भाव से ये सारे दृश्य देख रहा था । वह सोच रहा था कि इसमें सुमेश का भी क्या कसूर ? टीले पर के बाबा ने उससे कहवाया है । और गेंदा का भी क्या दोष ? भूत उसे ले आया ? नाते-हीते का ही गड़ंत है, किस नाते का है यह ? हूँ ! बड़े जाबिर हैं बरम बाबा । यह भूत कैसा छिपा रहा था अपने को, मगर बरम बाबा से कौन छिप सकता है ?

नीरू अपमान के इस सद्यः प्रतिशोध से एक बार खिल तो गया मगर उसे पिता का इस तरह अखाड़े में खेलना अच्छा नहीं लगा । दूसरे, पिता के इस कार्य के प्रति एक अविश्वास का भाव उसके मन में बहुत पहले से था । फिर उसे कुछ देर बाद ऐसा मालूम हुआ कि इस का नतीजा अच्छा नहीं होगा । मगर यह गड़ंत है क्या ? है कोई बुरा ही रोग । किससे पूछे ? अच्छा......!

रामधन तेली और औरतों के पास जा-जा कर अभुवा रहे थे । सुमेश का भी अभुवाना अभी शान्त नहीं हुआ था । इस बीच गेंदा न मालूम कब चुपके से वहाँ से उठ कर भाग गयी ।

अच्छा यह पाँड़े की पतोहू राजमती है । अभुवा रही है ।

'उफ कैसी बेशर्म औरतें हैं ये ? और घरवाले भी कैसे नपुंसक हैं कि इन्हें अखाड़े में खेलने के लिए छोड़ दिया है ।' नीरू सोच रहा था ।

'कौन है तू ?'

'गड़ही में क चुरइल हई चुरइलि ।'

'तू कैसे आयी ?'

'सेनुरे में दिहलसि रे सेनुरे में ।'

'कौन दिहलसि ?'

'उ उ उ ऊ....ऊ!'

'ओ हो हो कैसा हल्ला शुरू हुआ ? सभी लोग उसी ओर को दौड़े जा रहे हैं ।' क्या है भाई क्या है ? आरे पकड़िहा के गुण्डे सब गुंडई कर रहे थे कि थानेदार पहुँच गये । पकड़ कर मार रहे हैं और थाने पर लिए जा रहे हैं ।

चलो.... चलो.... चलो
चलो....चलो....चलो...!

8

और मां कहे जा रही थी। नीरू उसके पास बैठा चुपचाप कहानी सुन रहा था।

बेटा, तुम्हारे बाबा बहुत बहादुर आदमी थे। वे जब रास्ते में चलते तो रास्ता मचमचा उठता था और वे अकेले थे तो क्या हुआ, किसी की मजाल नहीं कि उन पर हाथ उठा दे।

बेटा, उनके-सा पुण्यात्मा भी कोई नहीं होगा। उनकी छाया से बड़े-बड़े बदमाश काँपते थे और उनको आते देखकर कोई पेड़ पर चढ़ जाता था, कोई खंदक में छिप जाता था, कोई भाग कर बँसवारी पकड़ता था, लेकिन गरीब लोग आँखों के आँचल फैला-फैला कर उन पर दुवाएँ बरसाते थे।

वे हमेशा मजूरों को डेढ़ी-दूनी मजूरी देते थे। कोई गरीब आ कर रोया, उसे तुरत चार सेई--पाँच सेई अनाज नाप दिया। पकड़िया के चमार और चमाइनें आज भी उनका नाम ले-ले कर रो उठती हैं, उन का आँचल भींग जाता है।

नीरू दत्तचित्त होकर सजल आँखों से कहानी सुन रहा है। उसके पास ही उसका छोटा भाई और बहन बैठे हैं।

बाबा एकदम भोले-भाले, निश्छल हृदय के एक निडर आदमी थे। गजेन्दर बाबू भी उनसे डरते थे और उतना ही आदर करते थे।

'बाबा ने बाघ मारा था माँ ?' नीरू के छोटे भाई केशव ने विस्मय से पूछा।

'हाँ बेटा, मारा था, लेकिन बाघ नहीं--जंगली सूअर।'

केशव को जैसे एक झटका लगा। उसके बाबा इतने बड़े बहादुर थे तो क्या वे बाघ भी नहीं मार सकते थे। जरूर बाघ ही मारा होगा। सूअर-ऊवर में क्या रखा है।

माँ ने केशव की बात ताड़ ली। 'बेटा तुम नहीं जानते, जंगली सूअर बाघ से भी खतरनाक होता है, हाँ...।'

'अच्छा माँ ऐसा! कैसे मारा बाबा ने उसे ?'

'बेटा तूने तो दूसरी बात छेड़ दी। अगर तेरा मन है तो सुन।'

लड़के सजग होकर बैठ गये । उनकी आँखों में गर्व के भाव स्तर-स्तर उग रहे थे।

'तो भादों की अँधेरी रात थी ।' माँ कह रही थी, 'चारों ओर अंधकार झपस रहा था । कई दिनों से झपटी के साथ पानी बरस रहा था, उस रात और तेज हो गया था । गोर्रा और राप्ती का पानी अफना-अफना कर नालों के रास्तों से गाँव के पास तक पहुँच गया था । अभी बाढ़ भयंकर नहीं हो पायी थी तो भी चढ़ रही थी । तुम्हारे बाबा सिवान वाले खेत में मक्का रखाने के लिए मचान पर सोये थे ।'

'मां !' केशव ने कहा—'सिवान वाले खेत के पास जो बरगद है उस पर नट है न, सुनता हूँ बड़ा जाबिर नट है ।' और ऐसा मालूम पड़ा जैसे केशव भय से सिहर उठा हो ।

'क्या बकवास करते हो केसू'—नीरू डपटा । 'भूत-ऊत तो बेकार की शंकाएँ हैं ।' किन्तु उसे ऐसा मालूम पड़ा कि उस बरसात के घने भींगे अंधकार में से बरगद के पत्तों को फरराता हुआ एक लम्बा-चौड़ा भूत कूद पड़ा है । किन्तु उसने बलपूर्वक फिर कहा—'ये सब बेकार के डर हैं, जो मर गया सो मर गया । गाँव के बेवकूफ आदमी झूठे ही एक-एक जवाल खड़ा करते हैं ।'

'झूठ कैसे है भइया, तुम भी तो अजीब बात करते हो । जिस चीज को दुनियाँ मानती आयी है उसे तुम झूठ कहते हो । अभी उस दिन बाबू (पिता जी) कह रहे थे कि बड़े अँधेरे-अँधेरे ही वे मामा के यहाँ जा रहे थे । रात का उन्हें अन्दाज नहीं मिला । उस पेड़ के पास पहुँचे तो देखा कि नट बरगद की डाल पर बैठा है । बाप रे बाप! कितनी लम्बी-चौड़ी देह थी । २५ हाथ ऊपर वह डाल थी । नट के पैर जमीन पर पड़े हुए थे। उसके बड़े-बड़े लट चारों ओर डालियों और पत्तों में उलझे थे उसकी देह में बड़े-बड़े बाल झपसे हुए थे । उसकी आँखें गुफा की तरह गहरी-गहरी और काली थीं। मुँह में एक बड़ा-सा लुक्क दबा जला-बुझा रहा था । उसके पैरों के पंजे पीछे और एँड़ी आगे को थी । माँ, मुझे तो सुनकर डर लग रहा है ।'

'केशव अपनी बकवास बन्द करो !' नीरू चीख कर बोला—'मैं भी सुन चुका हूँ यह दास्तान । अब आगे यही न कहोगे कि बाबू पर भूत झपट पड़ा । बाबू की आवाज बन्द हो गयी किन्तु उनके मुँह से अचानक आवाज निकल आयी, जय हो बरम बाबा ! कुछ देर के बाद वे देखते क्या हैं कि बरम बाबा सोने के खड़ाऊँ पर चट-चट दौड़ते, हाथ में सोने की छड़ी भाँजते हुए आये और भूत का लट पकड़ कर छड़ियों

से मारना शुरू किया—जानते नहीं हो दुष्ट कि यह मेरा सेवक है। और वह भूत अपनी जान ले कर भागा और भागा।' इतना कह कर नीरू मुसकरा दिया।

केशव के संस्कारों पर एक चोट-सी लगी। बोला—'भइया, तुम तो बाबू के कहने पर भी विश्वास नहीं करते और देवी-देवताओं का भी मजाक उड़ाते हो। माँ, तुम्हीं बताओ क्या यह सब झूठ है? बाबू झूठ बोलते हैं? बरम बाबा उनके माथे नहीं आते हैं। बताओ माँ, बताओ।'

माँ एक अजीब पशोपेश में पड़ गयी। बाबू को झूठा कैसे कहे इस छोटे बालक के सामने। और देवी-देवताओं तथा भूतों-प्रेतों में उसका भी विश्वास था। इसलिए बाबू की तमाम बातों को झूठ मानती हुई भी कम से कम इन बातों को श्रद्धा के साथ सुनती और गुनती थी। मगर नीरू तो सयाना बेटा है, उसने जरूर कहीं पुस्तकों में पढ़ा होगा कि भूत-परेत नहीं होते हैं और पुहतक तो गियानी लोग लिखते हैं। फिर भी माँ ने देवताओं का मजाक उड़ाना अनिष्टकारी समझा। उसने धीरे से कहा—'नीरू, तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए.. देवी-देवता होते हैं।'

नीरू ने मर्माहत की तरह मा की ओर देखकर कहा—'माँ!'

केशव खुशी से उछल पड़ा—'देखो मा भी तो कहती है कि—'

'चुप रहो केशव! तुम दिन-रात भूतों की बात सुन-सुन कर डरपोक होते जा रहे हो।' नीरू डपटा।

माँ ने बीच-बिचाव किया—'अरे तुम सब तो बाबा की कहानी सुनने बैठे थे और उलझ गये भूतों में।'

'हाँ माँ, हाँ माँ! बाबा की कहानी सुनाओ।' तीनों बच्चे उछल पड़े।

'हाँ तो उस भयानी रात में पेड़ों, पत्तों और फसलों को रौंदती हुई हवा भयानक शोर कर रही थी। मालूम पड़ता था कि जगह-जगह से सैकड़ों घायल आत्माएँ एक साथ एक आवाज में रो उठती हैं। मगर तुम्हारे बाबा बड़े हिम्मती आदमी थे। मैं कह चुकी हूँ उनमें डर नाम की चीज कोई थी ही नहीं। वे बीच-बीच में 'लिहो-लिहो' की हाँक दे उठते थे जिससे कोई जानवर हो तो भाग जाय। क्योंकि उस रात में तो हर क्षण पत्तों से खड़खड़ाहट उड़ रही थी, किसी जानवर के आने की आहट कैसे मिलती?'

माँ कुछ क्षण के लिए चुप हो गयीं। केशव और बहन लीला अधीर हो कर बोल उठे, 'आगे क्या हुआ माँ?'

माँ थोड़ा-सा मुसकरा उठीं। कहने लगीं—'हाँ तो हवा की सनसनाहट

से चीखते सन्नाटे में बाबा को मचान के नीचे घुर्र-घुर्र की आवाज सुनाई दी । पहले तो उन्होंने सोचा कि हवा की ही आवाज होगी। मगर वह घुर्र-घुर्र की आवाज उग्र होती गयी । बाबा ने मचान से नीचे झुक कर देखा तो सन्न रह गये । एक काली-काली आकृति ऊपर को अपना थुथ्थुन किये हुए बार-बार घुर्र-घुर्र कर रही थी । थुथ्थुन में दो सफेद-सफेद दाँत इस अंधकार में भी चमक रहे थे ।'

'माँ वही सूअर था न ?'

'हाँ रे सूअर ही था ।'

'तब तो बाबा मचान पर सँपा गये होंगे । बाप रे बाप मैं होता तो मेरा कलेजा ठंडा हो गया होता ।' केशव सिहर रहा था ।

'मैंने कहा न कि तुम्हारे बाबा बड़े बहादुर थे । खौफ तो वे किसी से खाते ही नहीं थे । दूसरा आदमी होता तो मचान पर सँपा गया होता और डर से ही उसके प्राण सूख गये होते । मगर बाबा के खून में एक गरमी आ गयी । उन्होंने अपनी लाठी और गँड़ासा सँभाला । और मचान पर से कूद कर सूअर पर वार करने की सोचने लगे । उन्होंने अपना कम्बल लुँड़ेर कर सूअर से कई हाथ पीछे की ओर फेंका। सूअर समझा कि आदमी कूद रहा है । वह तुरत उसी कम्बल की ओर झपटा । बस बाबा मचान से दूसरी ओर कूद पड़े । सूअर कम्बल के पास जाकर फिर तेजी से बाबा की ओर झपटा । उसका मुँह खुला हुआ था । बाबा ने अपनी मोटी-सी लाठी अपने पूरे जोर के साथ सूअर के मुँह में ठूँस दी । लाठी उसके गले के भीतर तक चली गयी । सूअर इस चोट से बड़ा गुस्सा हो उठा और चिल्लाता हुआ बाबा की ओर झपटा । लाठी उसके मुँह में घुसी हुई ऐसे बाहर निकली हुई थी मानो सूअर का लम्बा-सा दाँत हो । बाबा पीछे की ओर भागे परन्तु मकई में उलझ कर गिर गये । और जब तक वे सँभल कर उठें सूअर उनके ऊपर था ।

'अरे माई री !' दोनों बच्चे काँप उठे । नीरू कुछ गंभीर था। परन्तु उसकी भी आँखें भय और आश्चर्य से विस्फारित हो रही थीं ।

'लेकिन उसमें डरने की कोई बात नहीं बच्चो ! तुम्हारे बाबा में सूअर से कम ताकत नहीं थी। सूअर झपट कर उन पर आया और वेग से अपने थुथुने को उनके मुँह पर दे मारना चाहा किन्तु उसके मुँह में धँसी हुई लाठी जमीन पर लग कर उसके मुँह में और धँस गयी और उसका मुँह नीचे पड़े बाबा तक नहीं पहुँच सका । तब उसने अपने पंजों से बाबा पर प्रहार शुरू किया । बाबा ने तेज गँड़ासे को उसके अगले पैर पर दे मारा । एक ही बार में पैर अधकटा हो गया । सूअर

भयानक पीड़ा से चिग्घाड़ उठा । बाबा ने फिर उसके दूसरे पैर पर वार किया । दूसरा पैर भी अधकटा हो गया । बाबा फिर कोशिश करके पंजे से निकल भागे । सूअर ने उनका पीछा किया । बाबा कुछ दूर जा कर रुक गये । सूअर झपट कर आया और अपनी अगली दोनों टाँगों को उठा कर बाबा की गरदन पर रख दिया । बाबा जैसे इस हमले के लिये तैयार थे । उन्होंने उसकी दोनों टाँगों को दोनों हाथों से पकड़ लिया । सूअर अपने मुँह में पड़ी लाठी के कारण अपने मुँह का वार नहीं कर पा रहा था, फिर भी वह बाबा को दबोच कर नीचे ले जाने की कोशिश कर रहा था । बाबा उसकी टाँगों को पकड़ कर बार-बार मरोड़ कर नीचे गिराने की कोशिश कर रहे थे । सूअर नाक से बार-बार फुंकार रहा था । बाबा भी हाँफ रहे थे । मगर उन्होंने उसके पैर पकड़ कर उसे मरोड़ना शुरू किया और बड़ी कोशिश से उसे पीछे ढकेल दिया ।'

माँ रुक गयी । बच्चों की ओर क्षण भर देखा । बच्चे एक अज्ञात आशंका से सिहर रहे थे । माँ ने फिर कहना शुरू किया, 'बाबा चाहते तो कहीं छिप सकते थे। लोगों को पुकार सकते थे। लेकिन नहीं, उन्हें अपनी ताकत पर विश्वास था । बाबा पेड़ की आड़ में छिप गये । सूअर पेड़ की ओर झपटा परन्तु उसके मुँह में धँसी हुई लाठी दो तनों की दरार में पड़कर फँस गयी । सूअर तड़प उठा । उसके सिर का इधर-उधर हिलना मुश्किल हो गया । बाबा ने दाँव देख कर तेज गँड़ासा उस की गरदन पर जमाना शुरू किया । सूअर चिग्घाड़ने लगा । वह क्रोध और तकलीफ से पागल हो गया परन्तु बुरे फँसा था । बाबा ने उसे तबाह कर दिया । बाबा फिर मचान पर जा कर लेट गये । सवेरे लोगों ने यह दृश्य देखा तो लोग दाँतों तले अँगुली दबा कर रह गये ।'

केशव ने आँखें फाड़ कर कहा—'बाप रे, बाबा बड़े वीर थे !' नीरू के कलेजे से जैसे एक बोझ उतर गया । उसका हृदय एक बड़प्पन के भाव से जगमगा उठा । तो वह इतने बड़े आदमी का पोता है । वह एक गौरव अनुभव करने लगा । 'मैं गरीब और कायर बाप का बेटा हूँ'—यह भावना दिन-रात उसे छोटा बनाये जा रही थी । हीनता की ग्रन्थियाँ जाने-अनजाने उसके मन को घेरती जा रही थीं । परन्तु आज उसकी आंखों के आगे एक नवीन आलोक बिछ गया । महेश उसकी बराबरी में कुछ नहीं है । वह तो एक बेईमान और धूर्त बाप का बेटा है। कुछ पैसे अधिक हैं उसके पास तो क्या हुआ ? सच्चा बड़ा तो वह है जो वीर हो, जिसका दिल दया से भरा हुआ हो । उसके बाबा

ऐसे ही महापुरुष थे । मगर पिता जी इस वीर पुरुष के बेटे हो कर भी इतने निकम्मे और डरपोक कैसे हो गये ? यही वह नहीं समझ पा रहा था ।

माँ नीरू के मन की व्यथा समझती थी और नीरू के मन की हीनता की ग्रन्थि तोड़ने के लिए ही उसने बाबा की वीरता और समृद्धि की कहानी कही थी । मगर नीरू की आँखों में एक भयंकर प्रश्न है, माता देख रही थी । माँ हमेशा इस प्रश्न के जवाब को टालती आयी थी, क्योंकि बच्चों के सामने वह उनके बाप (और अपने भारतीय स्वामी) की कमजोरियों को व्यक्त करना नहीं चाहती थी, किन्तु नीरू अब समझदार हो चला था, उसे घर की जिम्मेदारियाँ पुकार रही थीं । और सुमेश की हरकतें इस लड़के के दिल में कुण्ठा की भावनाएँ और दमित विद्रोह पैदा कर रही थीं । नीरू को इस गहन हीनता से उबारने के लिए और पारिवारिक अतीत का ज्ञान कराने के लिए सब कुछ कह देगी । वह कहेगी कि गाँव के मालदारों से तुम मालदार थे, परन्तु तुम्हारे पिता के आलस्य रूपी शत्रु ने तुम्हारा विनाश किया है । उस शत्रु से तुम सावधान रहो । माँ ने दोनों छोटे बच्चों को खेलने के बहाने से बाहर भेज दिया, तो नीरू से कहने लगी—'बेटा, मैं तुम्हारे मन के भीतर उठती हुई आँधी को पहचानती हूँ । हर एक मामले में अपनी कमजोरी और हीनता के कारण तुम्हारे पिता जी तुम्हें डाँट देते हैं। इसका तुम्हारे मुलायम दिल पर जो असर पड़ता है उसे मैं पहचानती हूँ, परन्तु तुम्हारे पिता क्षमा के योग्य हैं बेटा । वे अपने संस्कारों से लाचार हैं, भगवान् मत दे ऐसी अकारथ जिन्दगी किसी को ।'

'कहो माँ कहो आज सब सुनूँगा, सफेद-काला सब देखूँगा ।' नीरू ने कहा ।'

'तुम्हारे पिता बाप के एकलौते बेटे ठहरे । बाबा मालदार थे । ये तुम्हारे बाबू रोज बढ़िया-बढ़िया चीज़ें खाया करते थे। खानेवाले यही ठहरे । कुछ खाते थे कुछ फेंकते थे । नाना के दुलार ने इन्हें बचपन ही से मौजी तबीयत का बना दिया। कोई काम करने में इन का मन ही नहीं लगता था। बस अच्छे-अच्छे रंगीले कपड़े पहन कर मेलों-बाजारों में घूमना, बारात करना, फाग गाना ही इन की दिनचर्या थी । दो-चार दोस्तों को ले कर ये घूमते-घामते रहते थे । बाबा और दादी कभी इनके किसी काम में रुकावट नहीं डालते थे। एक बार बाबा ने इन्हें एक जिम्मेदारी की बात सुझाई, तो तीसरे दिन एक दूसरे गाँव के आदमी के साथ रंगून भाग गये। इसी मुखिया ने इन्हें यह मंत्र दिया था। मुखिया इनका साथी था। वह शुरू से ही बड़ा धूर्त और चालाक था।

उसने सुझाया कि क्या घर पड़े-पड़े डाँट सहते हो ? अरे भाग कर रंगून पकड़ो, वहाँ बड़ा मौज रहता है। खूब रुपये कमाओगे और मस्ती से फूँकोगे और जरा हम लोगों का भी ख्याल रखोगे। बस उसने साँठ-गाँठ करके इन्हें रंगून भेज दिया। वह भीतर ही भीतर बाबा से डरता था और हमारे घर की इज्जत उसकी आँखों में काँटे की तरह गड़ती थी। वह हमारा घर फूँकने में लगा हुआ था, किन्तु ये तो उसके पक्के दोस्त ठहरे, कुछ समझते तो थे नहीं।'

'वह जिम्मेदारी की बात क्या थी माँ ?' नीरू ने पूछा।

माँ थोड़ी देर रुकी, नीरू की ओर देखा और फिर कहने लगी—'तब मैं इस घर में आ चुकी थी। ये तुम्हारे बाप छैला बने घूमते थे। गाँव की एक बारात जाने को थी, बारात जाने के दस दिन पहले से ही ये प्रोग्राम बनाने लगे। पाँच जोड़ा कुरता, पाँच जोड़ी धोती, पाँच जोड़ी टोपी, दो साफा धोबी को दिया गया। छड़ी और जूते में रोज तेल पड़ने लगा। बड़े-बड़े जुल्फ तेल से तर रहने लगे (यों तो वे हमेशा रहते थे)। दिन-रात बारात की ही बातचीत करते थे। कभी इस कपड़े को साधना, कभी उस कपड़े को साधना, यही इन का दिन भर का पेशा था। घर के किसी काम-काज से इनको कोई सरोकार नहीं था। दिन भर बारात की तैयारी करते थे, फगुवा गाने के लिए नये चौताल रट रहे थे और कभी-कभी पिंजड़े का तोता ले कर गाँव की गलियों में चक्कर काट आते थे। इस पिंजड़े को लेकर ये मेलों, हटियों और रिश्तेदारों के यहाँ भी जाया करते थे। हाँ, तो उस दिन हलवाहा नहीं आया, बीमार पड़ गया था। बैल भूखे घारी में बाँय-बाँय चिल्ला रहे थे। तुम्हारी दादी जी ने कई बार कहा कि आज जरा तुम्हीं बैलों को नाद पर लगा दो, लेकिन कौन सुनता है ! मुझसे नहीं रहा गया। भीतर ही भीतर उनके इस निकम्मेपन पर मुझे गुस्सा आ रहा था। खीझ कर कहा कि आप तो बारात की तैयारी में ऐसे मशगूल हैं, मानों आप की ही बारात जा रही है। घर का कुछ कामकाज भी तो किया कीजिए, अम्मा जी कभी से भूँक रही हैं। बस इतना कहना था कि वे आगबबूला हो गये। जूता लेकर मुझे पीटना शुरू कर दिया और मेरे पिता का नाम ले-लेकर गाली बकना शुरू किया—हरामजादी, फलनवाँ की नानी मेरा बारात करना उघटती है। तेरे बाप का दिया खाते हैं। जब पचीसों जूता लगा चुके तो कहीं से अम्माँ जी दौड़ती हुई आयीं। उन्हे छुड़ाने लगीं तो उन्हें भी एक धक्का दिया।' माँ ने देखा—नीरू की आँखें क्रोध से लाल हो गयी हैं। वह कुछ उत्तेजित-सा हो गया है। 'तो ये तुम्हें पीटते भी थे माँ !' नीरू काँप रहा था।

'हाँ अक्सर पीट दिया करते थे। उस दिन जब बाबा छावनी पर से घर आये तो अम्मा जी ने यह घटना कह सुनाई। बाबा ने इन्हें कुछ भला-बुरा कहा। लाड़ले बेटे को यह बात असह्य लगी। फिर मुखिया ने इन्हें चढ़ाना शुरू किया। बारात के दिन ये कपड़ों का पूरा एक मोटरा बाँध कर तैयार हो गये और सुबह से ही गाँव भर नाचने लगे कि चलो भाई कब चलोगे, देर हो रही है कब पहुँचेंगे ? देर से किसी के यहाँ पहुँचना ठीक नहीं। और फिर खिदमतगार के सिर पर गट्ठर लाद कर चले।

'बारात में जाकर चौताल के सरबर में वहाँ के लोगों से झगड़ा कर लिया। और अपनी जीत के लिए इन्होंने ऐसी चढ़ा-ऊपरी की कि दोनों दलों में मारपीट हो गयी। बाबा ने सुना तो बहुत क्रुद्ध हो गये। घर आने पर उन्हें बहुत डाँटा फटकारा। यह कौन-सी तमीज है कि चौताल के लिए मारपीट करते चलते हो। यह तो होगा नहीं कि लाठी चलाना सीखें। बेकार की सब फालतू बातें जैसे तुम्हारे ही हिस्से में आ गयी हैं। लाड़ले साहब खूब रोये। दो दिन तक दाना-पानी छोड़ दिया और मुखिया के बहकाने पर कुछ मेरी पेटी से, कुछ अम्मा जी की पेटी से रुपये चुराकर रंगून भाग निकले। यहाँ सभी लोग बेचैन। अब आफत आयी मेरे सिर। अम्मा जी का रुख मेरी ओर टेढ़ा हो गया। जैसे मेरे ही अपराधों से उनका लड़का लापता हो गया। बात-बात में मुझे गाली मिलने लगी। आखिर एक महीने के बाद इनकी एक चिट्ठी आयी कि मैं बीमार हूँ, खाने बिना मर रहा हूँ। बाबा चिट्ठी पा कर रंगून के लिए रवाना हो गये और सैकड़ों रुपयों की बरबादी करके आखिर कमाऊ पूत घर आये।

'आखिर बाबा बूढ़े हो गये। अब जिम्मेदारी पड़ी तो ये छटपटा उठे। मगर चस्का तो इन्हें और ही लगा था। जिम्मेदारी सँभालते कैसे ? बाबा अशक्त हो कर पड़े हुए थे और ये अब भी घूमने के पीछे पागल थे। तीन-तीन मील पर फगुवा गाने चले जाते थे और रात-रात भर वहीं अपने कुछ चुने हुए दोस्तों के साथ चौताल का अखाड़ा लड़ते थे। मेला तो अब भी कोई नहीं छूटता था, बारातों के लिए अब भी वही तैयारियाँ थीं। और करने को कुछ नहीं केवल अपनी जबान से सबसे झगड़ा मोल लेते फिरते थे। सभी लोग इन्हें अनेक मौकों पर चढ़ा देते थे और ये बहबूदी में लड़ उठते थे। बाबा यह सब देख कर आँसू बहाते थे। वे अपनी करनी पर रोते थे कि क्यों इस कपूत का इतना लाड़-प्यार किया। मगर अब तो क्या कर सकते थे। अम्मा जी मर ही चुकी थीं। बाबा की ये कोई परवाह ही नहीं करते थे। बाबा के कुछ कहने पर उन्हें

भला-बुरा कहते थे। बकते-झकते थे। मेरी छाती फटती थी बाबा के आँसू तथा घर पर आनेवाली विपत्ति देख कर।

'खेत परती पड़ने लगे। बैल नाद पर भूखे खड़े-खड़े मर जाने लगे। जानते हो ये देवता बैलों के नाद में लकड़ी से सानी चलाते थे। खेत बोने के लिए हलवाहों को बीया दे देते थे। आधा बीया हलवाहे अपने घर ले जाते थे, आधा खेत में डालते थे। आधा खेत वे दूसरों से पैसा लेकर दूसरों का जोतते थे, आधा मेरा। खलिहान में अनाज छोड़ कर दिन में बीस बार बनियाँ के यहाँ सुरती खाने जाते थे। इस प्रकार के निकम्मेपन से बाबा द्वारा पैदा की हुई सारी सम्पदा ये नष्ट करने लगे। तब मेरे गहनों की बारी आयी। खर्ची के लिए मेरे सारे गहनें धीरे-धीरे कस्बे के बनिये के दाँव पर चढ़ गये। फिर घर के बरतनों का नम्बर आया। फिर उधार लेने लगे। तुम्हारी बड़ी बहन की शादी इन्होंने बड़ी धूम-धाम से की। हमने लाख मना किया कि औकात देखकर खर्च करो, मगर नहीं इनकी शान में बट्टा लगता था। इन्होंने मुखिया से दो सौ कर्जा लेकर पाँच बीघे खेत रेहन लिख दिये। खेत तो सूद पूरी करते थे और इधर कर्जा का रुपया भी न जाने कैसे-कैसे बढ़ता ही जा रहा था। आज वह धन बढ़ कर आठ सौ रुपये हो गया है।'

'माँ, तुम तो कहती थी कि मुखिया बड़े गरीब थे, फिर धन कहाँ से दिया।'

'हाँ, ठीक याद दिलाई। सचमुच मुखिया बड़ा गरीब था। ये लोग खाने बिना मरते थे। तुम्हारी दादी मुखिया को कभी-कभी अपने घर खिलाती भी थीं, क्योंकि ये तुम्हारे बाबू जी के दोस्त थे। यह धूर्त इनसे पैसे भी ले लेता था। मगर था बड़ा दरिद्र। इसके एक भाई था। वह कुछ भोंदू ढंग का आदमी था। मुखिया और मुखिया की बीबी दोनों उसे फूटी नजर से नहीं देखते थे। वह गाँव के पट्टीदारों के यहाँ कटिया करता था, और तरह की मजदूरी करता था और मुखिया (तब वे मुखिया नहीं बने थे) अपनी बीबी-बच्चों के साथ उसकी मेहनत उड़ाते भी थे और उसे भूखा ही रखते थे। एक दिन कुछ बात हो गयी, मुखिया मर्द-मेहरारू ने उसे बहुत बहुत पीटा। वह भाग कर कलकत्ता चला गया और वहाँ चटकल में काम कर लिया। वह भोला बेचारा भाई के मोह में पसीज रहा था। उसका विवाह तो हुआ नहीं था। रुपये घर भेजने लगा। मुखिया धीरे-धीरे रुपया बचा कर गरीब पट्टीदारों का खेत रेहन लेने लगा और अब खेतवाला बन गया। अब तो उसकी चानी है। धूर्तों की ही तो दुनियाँ है। अब तो वह बड़ा आदमी हो गया है। उसके बच्चे रईस-जादे

हो गये हैं। और तुम्हारे बाप ने तुम लोगों को बेच देने में क्या कसर रखी ? आज बीस बीघे खेत में से कुल चार बीघे खेत बचे हैं और चारों ओर कर्ज का जंजाल घर को घेरे हुए है। हाँ, तो तुम्हारी बड़ी बहन की शादी बड़ी धूमधाम से हुई। पाँच सौ आदमी आये थे। तीस हाथी, बीस घोड़े, आठ पालकियाँ आई थीं। छोलदारियों की तो बात ही न पूछो। नाच-बाजे तो कई-कई जोड़े आये थे। उस शादी ने हमारे घर की कमर ही तोड़ दी। और फिर वे इतने हत्यारे लोग थे कि मेरी बेटी को भी खा गये।'

माँ की आँखें भर आयीं, गला भर्रा गया। नीरू अपनी बहन की स्मृति में कुछ क्षण डूब गया। और बहन की ससुरालवालों के सुने-सुनाये अत्याचारों के प्रति उसका दिल एक बार तड़प उठा।

'तो इसी तरह बेटा, घर का पतन होता गया। तुम्हारे बाबा के मरने पर ऐसी ही धूम एक बार फिर मची। और कर्जा की एक और भयानक छाया घर पर छा गयी। अब घर भर फटेहाल है। अब उनका सारा नशा उतर गया है। सबसे डरते हैं, अपनी गरीबी और अकेलेपन के कारण किसी से रार नहीं ठानते हैं, अपने हकों को छोड़ते जाते हैं। आस-पास के सभी खेतिहरों ने हमारे खेत बढ़-चढ़ कर जोत लिए हैं। मगर मेरे कहने पर भी ये किसी से कुछ नहीं कहते हैं। किससे-किससे झगड़ा करें, बहुत डरपोक हो गये हैं।

नीरू की हालत अजीब हो रही थी। उसे अपने बाप और धोखा देनेवाले मुखिया दोनों पर बेहद गुस्सा आ रहा था। यह बाप नहीं कसाई है। इन्होंने हमारा सर्वनाश कर दिया है और हम लोगों को भी डरपोक बनने का पाठ सिखाया करते हैं। अच्छा देखें, अब मुझे कौन रोकता है ? हम वीर बाबा के वीर नाती हैं और मुखिया दरिद्र-शैतान-धूर्त-बेईमान कहीं का। नीरू का मुँह तमतमा गया और उसके आखिरी वाक्य उसके मुख से उच्चरित हो गये। माँ सहम गई। सोचा, पता नहीं इसके मन में क्या-क्या भयानक इरादे पैदा हो गये हैं।

'लेकिन बेटा ! तुम्हारे बाप में इन दोषों के बावजूद एक बहुत बड़ा गुण है जो उन्हें अपने बाप से ही मिला है और जो तुम्हारे में भी दिखाई पड़ता है। उसके लिए तुम्हें अपने पिता का ऋणी रहना चाहिए।'

नीरू ने अपनी आँखें चुपचाप माँ के चेहरे पर बिछा दीं। जैसे वह कह रहा हो भला सुनूँ तो।

माँ का मुखमंडल एक गर्व से तमक उठा। बोली, 'तुम्हारे बाबूजी किसी का दुख नहीं देख सकते। उनका दिल मोम का बना है। इस जर-जवार में कोई ऐसा आदमी नहीं है जिसका इन्होंने उपकार न किया हो।

किसी को जोखिम में देख कर ये अपनी जान पर खेल जाते हैं। नदी, कुओं और आग में घिरे हुए कितनी जानों की रक्षा इन्होंने की है। कितने बीमारों की सेवा इनसे हुई है। कितने गरीबों को चुपके-चुपके इन्होंने कर्जे भी दिये हैं। कहाँ तक गिनाऊँ, ये हरेक मौके पर दूसरों की मदद करने के लिए तैयार रहे। कोई तनिक भी अपना दर्द कह दे ये रो पड़ते हैं। इन्होंने अपनी तथा परिवार की जिन्दगी से खेलवाड़ तो जरूर किया लेकिन इन्होंने दूसरों के साथ ऐसे-ऐसे उपकार के काम किए हैं जिनसे तुम लोगों का मस्तक ऊँचा ही होगा। किसी आदमी में यह हिम्मत नहीं है कि वह तुम्हारे कुल की इज्जत पर अँगुली उठा दे। हम गरीब हैं बला से और उन्होंने अपनी जायदाद बेची बला से। हमने किसी का कुछ बिगाड़ा तो नहीं।'

नीरू के दिल में उठती हुई घटा जैसे छँट गयी उसके मुख पर एक शुभ्र श्वेत स्वाभिमान बिहँस उठा। हाँ तो हम किसी तरह हीन नहीं हैं। परोपकार तो सबसे बड़ा धर्म है आदमी का। पुस्तकों में उसने यही तो पढ़ा है। ये पैसे वाले, बेईमान, धोखेबाज बड़े बनते हैं। देखूँ तो कैसे कोई सिर उठाता है मेरे सामने ?

६

चाँत की पूर्णिमा दूध की तरह बिखरी थी। रात का पिछला पहर था, तीन बजे होंगे। खलिहान बहुत देर तक जाग कर चुपचाप सो रहा था। मीठी-मीठी गन्ध और ठंडी ठंडी हवा खलिहान की आत्मा पर छा रही थी। बीच-बीच मे कभी-कभी डांठ खाते हुए पशुओं को हाँकने और कोयल की कूक के सिवा सब कुछ मौन था। अकस्मात् खलिहान के दक्खिनी कोने से कोलाहल उठ खड़ा हुआ। सब लोग अचकचा कर जाग पड़े और 'क्या है क्या है' कहते हुए उसी ओर दौड़े। लोग देखते ही सन्न रह गये। तीन-चार सिपाहियों के साथ दारोगाजी बैजनाथ को घेरे हुए हैं और बैजनाथ हक्का-बक्का-सा अपने बिछावन पर बैठा है। उसी की बगल में बिंदिया चमाइन सहमी सकुची-सी मुँह गड़ाए बैठी है। दारोगा चुन-चुन कर गालियाँ दे रहे हैं। कभी बैजनाथ को, कभी बिंदिया को। वैसी गालियाँ केवल दारोगा लोगों के ही शब्दकोश में होती हैं। कभी एकाध रोल बैजनाथ को जमा देते हैं, कभी अपना रोल बिंदिया की छाती में कोंच कर पीछे ढकेल देते हैं। लोगों को मामला समझते देर नहीं लगी। यह बिंदिया बैजनाथ की रखेल है। बैजनाथ ने अपनी पारिवारिक परम्परा से अनेक गुण प्राप्त किए थे। उन गुणों के कारण वह गाँव भर की घृणा का पात्र था और नाते-रिश्ते में भी उसका नाम बदबू करता था। किन्तु वह अपनी ताकत और आतंक के कारण गाँव की किसी न किसी शक्ति को दबोचे रहता था, यानी गाँव के लोग दूसरों को परेशान करने के लिए उसे अपने में मिलाये रहते थे।

तो बैजनाथ की शादी नहीं हो सकी। उसका पौरुष उसके भीतर को तोड़ रहा था। बिंदिया उसके हलवाहे की बेटी थी। बिंदिया छोटी-सी गुटकार-सी खूबसूरत लड़की थी। उसका बाप माधोपुर से भाग कर अभी एक साल पहले इस गाँव में आया था। बिंदिया गाँव के छोकरों और जवानों के दिल में बस गयी थी। हर आदमी उससे छेड़खानी करने का अपना सहज अधिकार समझता था। हर आदमी बिंदिया को अपने-अपने काम पर खींचने की कोशिश करता। दीवाने छोकरे उसकी आँखों में आँखें डाल कर कुछ पाने की कोशिश करते और शैतान बिंदिया मुस्करा मुसकरा कर सब की आँखों में जादू बन कर तैर जाती। लोग समझते

बहुत कुछ पा लिया और कुछ नहीं पाया। बिंदिया उस हवा के समान थी, जो सबकी छाती पर सिहरन बन कर लोटती चली जाती, मगर हाथ किसी के नही आती—बिंदिया चमाइन थी और सौभाग्य से चतुर भी। जानती थी कि इन छोकरों और बूढ़े बैलों की आसक्ति केवल मेरी देह के लिए है। अंधेरे में उसे चूस कर ये बाभन लोग उजाले में पंडित बने घूमेंगे और उसकी छाया से भी बचने का ढोंग रचेंगे। इनमें देने की कसक बिलकुल नहीं है, बस सब कुछ लेकर हजम कर जाने का हौसला है। कैसे हैं ये बाभन कुत्ते—रात में विष्टा तक खा लेंगे और दिन को ओठों पर पान की पीक पोत कर मँहकने की कोशिश करेंगे।

बात फैल गयी कि बैजनाथ बिंदिया को रखे हुए है। वह उसी के घर खाती है, पीती है, सोती है। देखा नहीं, वह आजकल किसी दूसरे के खेत पर काम करने जाती ही नहीं, जब देखो तब बैजू के यहाँ ही काम करती है। गाँव के जवानों और वृद्धों के सीने में आग लग गयी। अरे यह हरामजादी चिड़िया उस बहेलिए की फांस में कैसे फँस गयी? इतने-इतने राजकुमार उसके पीछे जान देते रहे, मगर वह साली भी एक ही सिर-फिरी निकली। सबने अपनी अपनी आह दबाई और कहा देखा जायगा।

'क्यों साला, बैजुआ बम्भन हो कर चमाइन रखता है!' दारोगा कड़क उठा और बैजू की पीठ पर धम्म से एक लात जमायी। बैजू गुमसुम बैठा था। गाँववाले आँखों में विचित्र-विचित्र भाव भर कर चुपचाप इस जोड़ी को देख रहे थे। बैजू निर्विकार भाव से चुप था। दारोगा ने एक भद्दी-सी गाली दे कर कहा—'उठ चमार!' सिपाहियों ने जबरदस्ती उसे उठा कर खड़ा कर दिया। दारोगा काफी हट्टा-कट्टा जवान था। यों जवान तो बैजू भी कम न था मगर जैसे इस समय उसका बल आधा हो गया था। दारोगा ने एक तगड़ा झापड़ बैजू की कनपटी पर लगाया। वह चौंधिया गया और फिर उसके पैरों को अलंगी लगा कर बैजू को धम्म से खलिहान की टीकुर जमीन में पटक दिया। बैजू की केहुनी छिल गयी, मगर वह कुछ न बोला, वैसा ही निर्विकार चुप रहा। दारोगा बिंदिया की ओर बढ़ा, एक लात जमा कर उसे डांठ पर सुला दिया; फिर दोनों हाथों से उसका गला दबा कर झकझोरने का अभिनय करता हुआ अपनी अँगुलियों को ऊपर उठा कर उसके गालों को स्पर्श करता रहा। बैजू और बिंदिया की हरकतों से गाँव के सभी लोगों को कहीं न कहीं चोट लगी थी। सभी इस दृश्य को देख कर मन ही मन पुलकित हो रहे थे। नीरू इस घोर नारकीय कीड़े को दण्ड मिलता देख कर बहुत प्रसन्न था, किन्तु पुलिसवालों के भी प्रति उसकी धारणा अच्छी नहीं थी। वह दारोगा के व्यवहार को भांप रहा था।

दारोगा ने कड़क कर पूछा—'मुखिया कहाँ है ?'

'जी जी' कई आवाजें एक साथ हकलाती हुई निकलीं—'कहाँ है', 'कहाँ हैं, मुखिया चाचा ! जी, अरे महेश, महेश, कहाँ हैं मुखिया चाचा ? सरकार यह महेश मुखिया का बेटा है।'

'मैं पूछता हूँ मुखिया कहाँ है उल्लू के बच्चो ! मुखिया के बेटे को ले कर क्या करूँगा ? बुलाओ उन्हें।' महेश भाग कर चला गया। मुखिया तो तैयार बैठे ही थे। मुसकरा कर वहाँ से खलिहान की ओर चले। महेश भाग कर गेंदा के घर पर गया। पुकारा—'गेंदा-गेंदा !' गेंदा घर में से मुसकराती हुई निकली—'क्या है जी, आज इतना सबेरे-सबेरे गुहार लगाने लगे ?' महेश का दिल गेंदा की इस अदा पर रीझ गया। गेंदा की माँ खांसती-खखारती निकली—'क्या है गेंदा, कौन है सुबह-सुबह !'

महेश सँभल कर घबराये हुए स्वर में बोला—'अरे काकी, बैजू भइया को दरोगा साहब पकड़े जा रहे हैं !'

माँ-बेटी दोनों एक साथ चौंक उठीं—'दारोगा ? इस हरामजादे का हमने क्या बिगाड़ा है कि...' दोनों सन्न रह गयीं। बैजू की माँ की आँखों में आँसू आ गये। गेंदा ने कड़क कर पूछा—'क्यों महेश भइया, बात क्या हुई ?'

महेश ने सहमते-सहमते कहा—'काकी बात यह है कि वह जो बिंदिया चमाइन है न। वह... !'

'झूठ है, सब झूठ है !' गेंदा कड़क कर बोली। भइया को लोग फँसाने के लिए एक-एक चाल चलते हैं।

महेश पशोपेश में पड़ गया—'हाँ झूठ तो है लेकिन वह तो वहीं...!'

'यह सब दारोगा की करामात है। वह उस लौंड़िया को उस के घर से पकड़ कर लाया होगा और जाल रच दिया होगा। महेश को इस की सचाई पर विश्वास हुआ हो या न, मगर उसे गेंदा की इस फरेब रचना की चातुरी पर आश्चर्य हुआ। कितनी घुटी हुई लड़की है।

मुखिया के पहुँचते ही दारोगा ने कहा—'मुखिया, चलो मेरे साथ थाने पर।'

एक बार उसने उपस्थित लोगों को घूर कर देखा, फिर डपट कर कहा—'तुम लोग अपने घर जाओ यहाँ क्या फेटवार लगाये हो।' और सिपाहियों को आगे बढ़ने के लिए संकेत किया। सिपाही बैजू और बिंदिया को लेकर आगे बढ़े। दारोगा कूद कर घोड़े पर सवार हुए। पीछे-पीछे मुखिया भी चलने लगे। खलिहान से निकल कर जब वे लोग बाग में चले गये, तो मुखिया ने बैजनाथ के प्रति हमदर्दी दिखाते हुए कहा—'छोड़ दीजिए सरकार, यह चमार ऐसा ही है।'

दारोगा गरजा—'छोड़ क्या दें ? इसी तरह अपराधियों को छोड़ते रहें तो हो चुकी थानेदारी। ऐसे हरामियों का तो मैं जानी दुश्मन हूँ। कहाँ यह साला बाभन जाति में जनम पाया और कहाँ इस हरजाई चमाइन के दलदल में पड़ कर पतित हो रहा है। मैं क्षत्रिय हूँ, इस तरह धर्म का नाश नहीं देख सकता हूँ।' घोड़ा बढ़ा कर उसने फिर बैजू की पीठ पर दो ऍड़ जमा दिये। और बिंदिया की छाती पर पैर जमा कर हलका-सा धक्का दिया। बैजू वैसा ही निर्विकार चुप रहा।

मुखिया ने रिरिया कर कहा—'हुजूर छोड़ दीजिए, फिर नहीं ऐसा काम करेगा। क्या बताएँ पता नहीं कहाँ की सनक इस शैतान पर सवार हो गयी है।'

दारोगा ने कड़क कर कहा—'क्या गारंटी है कि यह ऐसा नहीं करेगा ? इसके तो बहुत किस्से हमने सुन रखे हैं।'

'गारंटी किसी बात की कोई कैसे दे सकता है, हुजूर ! मगर यदि कोई जमानत पड़ जाय तो कैसा रहे ?'

मुखिया बैजनाथ को एक ओर ले गये। कहा कि बैजू सस्ते जान बचनी मुश्किल है, पुलिसवालों का हथकण्डा बड़ा भयानक होता है। मुझे विश्वास है कि दारोगा साहब को गाँव के ही किसी आदमी ने तुम्हें पकड़ने को बुलाया है मगर छोड़ो। इस समय तो काम की बात करनी होगी। पहली बात तो जमानत की है, सो अपने सगे पट्टीदार सुमेश काका को क्यों नहीं कहते हो जमानत पड़ने के लिए। और फिर चालीस-पचास रुपयों का इन्तजाम भी करना पड़ेगा। बिना इसके दारोगा न मानेगा।'

बैजनाथ ने इतनी देर बाद मुँह खोला—'आखिर हमने किसी का क्या बिगाड़ा है। हम अपने घर क्या करते हैं इससे किसी को क्या वास्ता ? मगर नहीं मेरी कौन सुनेगा ? तो मुखिया काका जैसा उचित समझिए कीजिए। सुमेश काका से म कैसे कहने जाऊँ ? मैं तो यहाँ सिपाहियों के चंगुल में हूँ और रुपये ? रुपए का इन्तजाम होना तो बड़ा मुश्किल है।'

'अच्छा मैं जाता हूँ सुमेश से खुद मिलता हूँ। अगर वे राजी हो गये तो ठीक वरना दूसरी पट्टी में कौन बला अपने सिर मोल लेगा ?'

मुखिया खलिहान की ओर चला गया। उधर गेंदा अपनी माँ के साथ रोती-कलपती बागीचे में पहुँची। मुखिया थोड़ी देर बाद लौट आया और बैजू से कहा कि सुमेश और उसका लड़का नीरू दोनों कहते हैं कि इस नीच और पापी की जमानत कौन होगा ? जाये साला लड़े और अपने कर्मों का फल पाये। बैजू के मन में एक जोर की ऐंठन हुई, उसे पी कर रह गया। उसने मुखिया से कहा—'तब !'

'तब क्या ? मुखिया तो अभी जीवित हैं... तुम्हारी जमानत होंगे।'

बैजू जैसे एहसान से नत हो गया, किन्तु कुछ बोला नहीं। गेंदा दारोगा के सामने जाकर गिड़गिड़ा रही थी—'सरकार छोड़ दीजिए भइया को उन्होंने कुछ नहीं किया है।' दारोगा और सिपाही कुछ न बोल कर गेंदा के उभरे यौवन पर आँखें गड़ाये मुसकरा रहे थे।

मुखिया ने आकर गेंदा और उस की माँ को डाँटते हुए कहा—'क्या गिड़गिड़ करती हो तुम लोग? सरकार क्या कोई यों ही बाँधे जा रहे हैं?' फिर उन्हें एक ओर ले जाकर साँय-फुस-फुस करने लगे।

'सरकार इसके पास रुपये हैं नहीं, पचीस-तीस ले लीजिए। उसका भी इन्तजाम यह मुश्किल से कर पायेगा।' दारोगा गंभीर बने सुनते रहे। फिर झटक कर बोले—'अरे भाई जो भी हो ले आओ, मैं चलूँ।'

मुखिया बैजनाथ के पास गये। गेंदा और उसकी माँ भी वहाँ आ गयीं। मुखिया ने परेशानी व्यक्त करते हुए कहा—'बैजू! क्या बताऊँ दारोगा किसी तरह मानता नहीं है। पचास से नीचे आ ही नहीं रहा था, बड़ी मुश्किल से चालीस पर तै किया है। अब तुम लोग कहीं से इन्तजाम करो'।

बैजू कुछ न बोला। उसकी माँ गिड़गिड़ाई—'मुखिया बाबू मेरे पास रुपये कहाँ हैं? गरीबों को ही सब सताते हैं।'

मुखिया ने व्यावहारिकता जताते हुए कहा—'देखो काम की बात होनी चाहिए, रोने-धोने से तो खतरा टलता नहीं, उपाय तो करना ही पड़ेगा।'

बैजू की माँ अपनी मोटी सी हँसुली गले से निकालती हुई बोली—'मुखिया बाबू! यह हँसुली ही बस मेरे पास जो कुछ है सो है। इसे गेंदा की शादी में देने के लिए रखा था, मगर ले जाइए। कहीं रख कर रुपए ला दीजिए, बड़ी मेहरबानी होगी।'

मुखिया ने जैसे आजिजी के भाव से कहा—'मगर दारोगा इतनी देर रुका कैसे रहेगा? हँसुली भँजाने में तो काफी देर लगेगी।' फिर कुछ रुक कर बोला, 'अच्छा लाओ दो तब तक मैं अपने पास से दे देता हूँ, फिर इसका इंतजाम करूँगा।'

मुखिया ने दारोगा के पास जाकर उसके हाथ में पचीस रुपये थमा दिये। दारोगा ने एक प्रश्न-सूचक दृष्टि से उसे देखा। मुखिया ने मुसकरा कर कहा—'हुजूर यह भी बड़ी मशक्कत से निकला है।' दारोगा मुसकरा पड़ा। और फिर बैजू और बिंदिया की ओर घोड़ा बढ़ा कर भद्दे-भद्दे शब्दों में कुछ तम्बीह देकर थाने की ओर बढ़ चला। मुखिया के व्यवहार से बैजू नत हो गया। और गेंदा और माँ भी उपकृत हो गयीं। बिंदिया की आँखों में भी एहसान का भाव तैर गया।

दो घंटे बाद मुखिया बैजू के घर पहुँचा। बोला—'यह लो, हँसुली सुमेस्सर साहू के यहाँ रख दी है। उसने कुल पचास दिये हैं। चालीस दारोगा को दिया, ये दस रुपये तुम्हारे हैं।'

बैजू की माँ ने ताज्जुब पूछा—'मुखिया बाबू, अस्सी भर चाँदी के उस ठगड़े ने सिर्फ पचास रुपये दिये हैं।'

मुखिया ने मुसकरा कर जबाब दिया—'भाभी, वह भी बड़ी मुशकिल से दिया कमबख्त ने। बड़ा घुटा हुआ है।'

७

बैजनाथ गाँव भर का शत्रु था और गाँव भर का मित्र। सब उसकी काली करतूतों से डरते थे, इसीलिए किसी में खुलकर उसका विरोध करने की हिम्मत नहीं थी। अपने गाँव का सबसे बड़ा आदमी समझे जाने-वाले मुखिया की भी मजाल न थी कि उसके सामने भला बुरा कहते। ऐसा नहीं था कि बैजनाथ के पास बड़ी शक्ति थी और भला-बुरा कहने वालों के सामने लाठी लेकर तैयार हो जाता और उनकी खोपड़ी फोड़ कर रख देता। बात इसके ठीक विपरीत थी। गाँव का कोई गरीब से गरीब, कमजोर से कमजोर आदमी भी यदि उसे भला-बुरा कहता, गाली-गुफ़्ता देता, यहाँ तक कि एकाध चपत मार भी देता तो वह वहाँ कुछ न कहता, उसके चेहरे पर उद्वेग आता ही नहीं; किन्तु बाद में वह उसके घर सेंध लगा देता, घर फूँक देता, खलिहान में या घारी में आग लगा देता, बैल चुरा लेता, कच्चे-पक्के खेत काट लेता। और लोग उसकी इन्हीं हरकतों से काँपते थे। और इसीलिए लोग इसे एक-दूसरे के खिलाफ अपना शस्त्र बनाया करते थे।

एक बार बैजू ने मुखिया का घर ही फूँक दिया। सब कुछ स्वाहा हो गया था उसमें। मुखिया बड़बड़ा कर रह गये, कुछ नहीं कर सके। यों तो मुखिया अपने को बहुत जन-धनशाली घोषित करते हैं और कहते फिरे कि साले को तोप पर उड़वा दूँगा, मगर पूरा गाँव साक्षी है कि वे उसका बाल बाँका नहीं कर सके और उसके सामने उससे कुछ बोल भी नहीं सके। वह उन्हीं के कुएँ पर पानी भरता रहा, मगर उनकी मजाल कि उसे एक शब्द कह सकें। हाँ, उन्होंने उसका सूक्ष्म बहिष्कार करना शुरू कर दिया। वे और उनके भाई-बन्धु कुएँ पर उसके साथ पानी नहीं भरते थे। उसके यहाँ से खान-पान बन्द कर दिया। मगर बैजू इन लोगों को देख कर मुसकरा उठता, जिससे इनके दिलों में एक आग लग जाती।

मगर बात आयी गयी, हो गयी। धीरे-धीरे मुखिया का घाव भर गया। या यों कहिए कि मुखिया को बैजू की आवश्यकता महसूस होने लगी। मुखिया अपने को नीरू और उसकी माँ के व्यवहार से बहुत अपमानित-से अनुभव कर रहे थे। नीरू का विकास और महेश का

पराभव उनकी आँखों में खटकता था। सुमेश तो निर्जीव है। उसका उसे डर नहीं था, परन्तु उसे पूरा परिवार एक शत्रु-सा दिखाई पड़ता था।

परन्तु वे यह जानते थे कि बैजनाथ अपनी पट्टीदारी के चाचा (यद्यपि अब इन दोनों परिवारों में कई पुश्त का अन्तर हो चुका था) सुमेश का बड़ा अदब करता था। सुमेश और नीरू किसी गुटबन्दी से नहीं, वरन अपनी सहज नैतिकता से प्रेरित होकर बैजू की बुरी हरकतों के कारण उसका बहिष्कार करने लगे थे और सुमेश तो खुले-आम और बैजू के मुँह पर लाख-लाख गालियाँ देता था। मगर अदब के कारण बैजू चूँ तक न करता था। और आज तक उसने गाँव के सभी लोगों की किसी न किसी चीज पर हाथ साफ किया था, मगर सुमेश की जायदाद की ओर उसने आँख तक न उठायी थी। यह बात मुखिया की आँखों में काँटे की तरह खटकती थी। नीरू का बढ़-बढ़ कर बातें करना, पढ़ने-लिखने में इतना तेज होना, महेश का पढ़ने में गन्दा होना और नीरू के संकेत पर मास्टर द्वारा महेश का मार खाना, फिर उस दिन नीरू का महेश को पीटना और नीरू की माँ का गरजना, मुखिया को चैन की नींद लेने नहीं देते थे। वे प्रतिशोध की आग में जल रहे थे और इसीलिए वह बैजनाथ की ओर झुक रहे थे। उस दिन रामनवमी के मेले में सुमेश ने गेंदा का पर्दा फाश कर दिया था। मुखिया ने लक्षित किया था कि बैजनाथ इस दृष्य को देख कर खून का घूँट पी कर रह गया था। मुखिया के मन में आशा की एक किरण उतर आयी थी। उसने शाम को बैजनाथ से एकान्त में भेंट की। ऐसी भेंट की जैसे अकस्मात् भेंट हो गयी है, जानबूझ कर भेंट करने की चेष्टा नहीं की है।

मिलते ही उसने बड़े स्नेह से पूछा कहो—'बैजनाथ प्रसाद, आजकल तो तुम पता नहीं, कहाँ लापता रहते हो। कभी आते जाते नहीं।' बैजू ने पहचान लिया कि आज देवता कहीं दूसरी ओर हैं। उसने भी काइएँपन से जवाब दिया—'लापता रहने पर भी लोग मेरा पता लगा लेते हैं, मुखिया चाचा!' मुखिया ने बात बदल दी। कहा—'बैजनाथ प्रसाद आज का मेला कैसा रहा?' बैजू की भवों में एक वक्रता उभर आयी, परन्तु वह तुरन्त संयत हो गया। 'ठीक तो था, अच्छा था।' 'हूँ'—मुखिया ने कहा। और फिर आगे की बात सोचने लगा—'लेकिन रामधन तेली भी कमाल करता है, भाई। उसके सामने भूत-परेत खुद बकरने लगते हैं। काली माई का सच्चा साधक है। क्यों तुम्हारा क्या ख्याल है बैजनाथ प्रसाद!'

'ठीक कह रहे हैं आप', बैजू ने बिना किसी भाव-परिवर्तन के सहज भाव से कह दिया। 'और सुमेश के बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है बेटा?'

मुखिया ने स्वाभाविक ढंग से पूछने का अभिनय किया । किन्तु बैजू ने उसकी वक्रता लक्षित कर ली । बोला—'ठीक है । वे तो बरम बाबा के सच्चे सेवक हैं, उनका हाथ बड़ा यशी है, जिसे उन्होंने छू दिया वही अच्छा हो गया ।'

'हाँ, लेकिन मुझे कभी-कभी ऐसा मालूम होता है कि वे जानबूझ कर बनावटी ढंग से किसी से बदला लेने के लिए चोट करते हैं ।' मुखिया ने कहा ।

बैजू के मन में अपमान वाली घटना तैर गयी, मगर अपने को दबाये रखा । कुछ न बोला । मुखिया ने समझा तीर लक्ष्य को छू गया है । उत्साहित होकर दूसरा तीर छोड़ा—'आखिर तुमने उनका क्या बिगाड़ा है ? तुम तो उनका भला ही करते आ रहे हो, मगर भरी सभा में उन्होंने घर पर लांछन लगा दिया कि गड़ंत है । गड़ंत नहीं उनका सिर है । ढोंगी कहीं का । जानते हो तभी से मुझसे कई आदमी काना-फूँसी कर चुके ।'

बैजू के मन में एक गुस्से की लहर दौड़ गयी । उसे खुद पता न चला कि यह गुस्सा सुमेश के प्रति था कि मुखिया के प्रति । उसके मन में कहीं एक हलकी-सी गाँठ पड़ गयी थी, मुखिया ने उसे थोड़ा-सा और कस दिया ।

मुखिया ने क्रुद्ध हो कर कहा—'मेरे ऊपर कोई इस तरह लांछन लगाये तो उस का सिर फोड़ कर न रख दूँ तब न !'

बैजू ने हँस कर कहा—'जाने दीजिए मुखिया काका, वे अपने खान-दान के हैं, बाप समान हैं, कुछ कहें तब भी बरदाश्त कर लेना चाहिए ।'

'खूब कहते हो बैजनाथ प्रसाद ! तुम्हारे विचार कितने ऊँचे हैं । मगर यह ऊँचे बरताव ऊँचे आदमियों के साथ बरते जाते हैं । जो तुम्हारी जड़ काटे उसके साथ ऐसा बरताव अच्छा नहीं होता ।'

बैजू धीरे-धीरे वहाँ से बढ़ने लगा । उसके मन में कुछ भारी-भारी-सा लग रहा था और मुखिया दूसरी दिशा को जाने लगे उनके भी मन में कुछ भारी-भारी था । उनको महसूस हो रहा था कि उन का तीर निशाने पर नहीं बैठा । वे मसोस कर रह गये । और फिर कोई दूसरा अस्त्र ढूँढ निकालने में खो गये ।

दारोगावाली घटना ने बैजू के विचारों में एक नया मोड़-सा ला दिया । सुमेश चाचा, जिसे वह अपना समझता आ रहा है, जमानत तक न हो सके । और नहीं तो मुझे घूम-घूम कर गाली दे-दे कर मेरे नाम पर थूक रहे हैं । और यह मुखिया जिसे मैं पराया समझता था, मेरी जमानत भी हुआ और रुपये का इन्तजाम भी किया । सुमेश और उस का लौंडा नीरू दोनों बड़े पुण्यात्मा बने हुए हैं । हुँ, गेंदा को गड़ंत

पकड़े हैं ! पापी नीच कहीं का । देखूँगा । मुखिया काका ठीक कहते थे उस दिन कि वह ढोंगी है; दूसरों को बदनाम करने के लिए सोखैती का बाना पहने हुए है।

साठ साल के रग्घू बाबा पाकड़ के नीचे भाव बता-बता कर गा रहे थे—'कइसे बनी कचनारी हो शामलाल, कइसे बनी कचनारी ।'

बेनी काका रग्घू बाबा के जोड़ीदार थे । यद्यपि रग्घू बाबा से बेनी काका पन्द्रह साल छोटे थे किन्तु भगवान् की दया से दोनों में कभी-कभी मेल खूब बैठता था । रग्घू बाबा की अवस्था की लम्बाई को बेनी काका की देह की लम्बाई सन्तुलित कर देती थी । रग्घू बाबा छोटे-से ठिंगने-से आदमी थे और बेनी काका सात फुट लम्बे-चौड़े—ऊँट की तरह । मगर गरीबी ने उन की लम्बी-चौड़ी देह को ढीला कर दिया था । वे ऊँट की तरह गरदन हिलाते हुए, झुकी हुई पीठ को मचकाते हुए चलते थे और भेड़िए की तरह उनकी अंगुलियाँ चलते समय चिट्टिर-पिट्टिर बजती थीं । लड़कों के इस चिट्टर-पिट्टिर काका से आप पूर्व परिचित हैं और लड़कों के चिथू बाबा (रग्घू बाबा) से भी आपकी जान-पहचान होली के दिन हो गयी है ।

हाँ तो रग्घू बाबा नाच-नाच कर गा रहे थे और बेनी काका बूढ़ी गाय की तरह सिर मटका-मटका कर और बड़ी-बड़ी तालियाँ पीट-पीट कर कह रहे थे—'हाँ काका, कइसे हो, जरा भाव बता कर !' और तब रग्घू बाबा अपने फटे अंगोछे को अपने सिर पर घूँघट की तरह डाल कर आँखें मटका-मटका कर और जोर-जोर से गाने लगते—'चूरा कहे हम सबसे बड़ा हई, बभनन से जिव हारी हो शामलाल ।'

एक जोर का कहकहा लगता । और रग्घू बाबा अपनी बहबूदी समझ कर और मस्ती से गाने लगते—

सानि सूनि जब पेटे में डरलें
ऊपर से माँगें सोहारी हो शामलाल

मुखिया अपने गणों में राजा बने हुए खूब किलकिला रहे थे। टीसुन गाँव का सबसे बेकार आदमी था, इसलिए वह दिन-रात कुत्ते की भाँति अनपेक्षित रूप से मुखिया के यहाँ दुम हिलाया करता था । तीस बरस का नाटा ठिंगना-सा बदसूरत जवान अपनी बतकटही आदत, कटु जबान और अधिकई के कारण सबकी उपेक्षा का पात्र था । तिस पर तुर्रा यह था कि वह एक दम दरिद्र था और धान कटने के सीजन में वह कई महीनों तराई में लापता रहता। इसीलिए गाँववाले उसे भिखमंगा कहते थे, किन्तु टीसुन साहब की मजाल तो देखिए कि अपनी बुद्धिमानी के आगे किसी को गिनते ही नहीं थे ।

'अरे ऊपर से माँगे सोहारी, हो शामलाल ऊपर से माँगे सोहारी !' रग्घू बाबा तान तोड़-तोड़ कर गाये जा रहे थे । टीसुन महाराज ने अपनी बुद्धिमानी दिखाने के लिए बीच में बात काट दी । 'सोहारी ! अरे भाई बिशुनपुर के बाबू साहब के यहाँ जैसी सोहारी खाने को मिली थी, वैसी अब मिलती कहाँ है, एक दम घिवही उसमें निरबल का नामोनिशान नहीं था ।' निरबल उस गाँव के तेली का नाम था, अतः सरसों या तीसी के तेल के लिए ऐसे लोग निरबल का ही प्रयोग करते थे ।

बेनी काका अपने को खाने-पीने के मामले में सबसे अधिक जानकार समझते थे और वे एक साँस में पचीसों मिठाइयों, चटनी, अचार का नाम गिना जाते थे । वे एक कायस्थ के यहाँ कुछ दिनों तक छावनीदार थे । वहाँ से नौकरी छोड़ आये या छुड़ा दिये गये, भगवान् जानें । सो टीसुन का यह हस्तक्षेप उन्हें बुरा लगा । वे हाथ चमका कर बोले—'इ दलिद्दर ससुर सब बात मे टाँग अड़ाता है, तनी देखिल कहाँ गाना हो रहा था और कहाँ सोहारी खाने की बात आ गयी । और बखान भी किया तो बिशुनपुर के बाबू के यहाँ की । अरे मुंशी गनेस प्रसाद के यहाँ जिसने खाया है वह जानता है कि पूड़ी-सोहारी क्या होती है । और तनी देखिल, खाली सोहारी पूड़ी की बात कौन कहे, चटनी, अचार, मिठाई, तरकारी के बीसों परकार मुंशीजी के यहाँ खाने को मिलते । खाते-खाते तबियत तर हो जाती थी । खाना और खिलाना तो कायस्थ ही जानते हैं । तनी देखिल, ई दलिद्दर तो दुनिया देखी नहीं, बस मियां क दौड़ मसजिद तक, बिशुनपुर के बाबू का एक नाम सुन रखा है ।'

टीसुन कुछ बोलने ही वाला था कि कि रग्घू बाबा गाना बन्द करके बीच में कूद पड़े । 'जे बा से चुप रह दलिद्दर टीसुन । ते का बतियइबे ? आ ए बेनी तू का बतियइब ? तूं कवन दुनियाँ देखले बाट ? जइसन सोहारी पूड़ी हमरे जगरनिया के बियाहे मे बनल रहे ओइसन बिशुनपुर के बाबू और चिउंटहा के मुंसी गनेस प्रसाद के इहां का मुअस्सर होई ! हमरे घर के बतियें और है जे बा से हं...!'

चारों ओर हँसी का कहकहा बिछ गया और रग्घू 'बेनी में मजेदार वाक्-युद्ध की संभावना से सभी लोग सजग हो गये । यह वाक्-युद्ध आये दिन हुआ करता था । लड़के इसे चित्थू—चिटर-पिटर या 'तनी देखिल'—'जे बा से' का युद्ध कहते थे । दोनों योद्धा अपने-अपने कल्पित सम्मान की प्रतिष्ठा के लिए एक-दूसरे पर वार करते और ओड़ते थे । श्रोता लोग इन दोनों को पास बैठाकर छेड़ने की कोशिश करते थे । कभी-कभी मुखिया को डाँटना पड़ता और वे दोनों को गालियाँ दे कर अपने पास से हटाते थे ।

यह वाक्-युद्ध गरम होने ही वाला था कि बैजू आता दिखाई पड़ा। सब लोग एक बार उसे देखकर आपस में कुछ रहस्यमय संकेतों से देखने लगे। सुबह की घटना की प्रतिक्रिया सबके दिलों से फूटना चाहती थी परन्तु कोई भी शुरू करने का साहस नहीं करता था। कौन बला ले अपने ऊपर! बैजू को आते देख कर सब लोग चुप हो गये, केवल मुखिया बोले—'आओ, बैजनाथ आओ!' बैजनाथ आ कर एक ओर बैठ गया। सब लोग बैजू और मुखिया को बारी-बारी से देख रहे थे; और कभी-कभी व्यंग्य से खँखार उठते थे।

मुखिया ने बड़े गम्भीर और चिन्तित स्वर में कहा—'भाइयो, गाँव का मुखिया मैं हूँ। जब एक आदमी मालिक होता है तो घर या गाँव का ठीक से इन्तजाम हो पाता है। लेकिन जब हर एक आदमी मालिक बन जाता है, तब घर और गाँव को बिगड़ा ही समझो।' मुखिया चुप हो गये। लोग कहने लगे—'सो तो ठीक है, ठीक है!' परन्तु बात किसी की समझ में नहीं आयी।'

'यानी यही कि मान लो अपने किसी भाई ने कोई भला-बुरा काम कर दिया तो क्या पट्टीदारी के लोगों का यही फर्ज है कि झट जाकर दारोगा को खबर कर दे। दारोगा के आने पर एक आदमी की बेइज्जती नहीं होती, सारे गाँव की होती है।'

लोग बात का नक्शा कुछ-कुछ समझने लगे थे। बड़े-बड़े सिर मटका कर लोग कहने लगे—'ठीक है, ठीक है, भला बुरा सब करते हैं, लेकिन गाँव का भला-बुरा गाँव में ही रहना चाहिए। ठीक कहते हैं मुखिया ठीक कहते हैं।' मगर मुखिया का लक्ष्य किस ओर है, यह ठीक तौर पर समझ में नहीं आया और लोग आँखों में जिज्ञासा भर उनकी ओर देख रहे थे।

मुखिया ने कहा—'मगर जाने दो, किसने दारोगा को बुलाया, क्यों बुलाया, ये सब बातें छोड़ो, किसी का नाम लेने से क्या फायदा? अब सवाल यह है कि हमारी ही पट्टीदारी का हमारा ही भाई हमारी बेवकूफियों से हमसे अलग हो गया है। मैं ही कसूरमन्द हूँ। मैंने भी जाने बैजनाथ को भला-बुरा कहा होगा। शायद इसे अछूत समझ कर इससे दूर भागने की भी कोशिश की होगी, मगर इसका नतीजा अच्छा नहीं हुआ। बैजनाथ हम लोगों का प्रेम खो कर और अँधेरे की ओर ही बढ़ता गया। और इस प्रकार हमारे खानदान का एक ताकतवर भाई हमसे कट कर अलग हो गया....आज की घटना का दोष केवल बैजनाथ को नहीं दिया जा सकता। जब हमने उसे अलग कर दिया तो वह चमार-डोम किसी से भी दोस्ती कर सकता है।'

लोग मुखिया की इस प्रभावशाली वाणी से प्रभावित होते जा रहे थे, परन्तु किसी के भी मन के भीतर यह किसी भी प्रकार नहीं धँस रहा था कि बैजनाथ पापहीन है ।

मुखिया कहते गये—'बेनी काका, रघू बाबा आप लोग गाँव के बुजुर्ग हैं, अब ऐसा कोई उपाय निकालिए कि अपना कटा हुआ अंग अपने से जुड़ सके । यानी बैजनाथ से जो हमलोगों का खाने-पीने का रिश्ता छूट गया है वह जुड़ जाय । बोलिए आप लोग क्या सोचते हैं ?'

कोई कुछ नहीं बोला । लोग समझ नहीं पा रहे थे कि क्या उत्तर दें । और सब जो कर्म यह बैजू करता है वह तो कोई बात नहीं, मगर इसने चमाइन जो रख ली है उसका क्या होगा ? चमाइन—बाप रे बाप बाप रे बाप चमाइन घर में रख कर उसका छुआ खाता होगा—पीता होगा, ब्राह्मण के लिए चमाइन का छुआ खाना-पीना कितना बड़ा पाप है ! कुछ देर बाद मुखिया हँस कर बोले—'मैं आप लोगों के मन की परेशानी समझ रहा हूँ—यही न कि बैजनाथ चमाइन के साथ पकड़े गये हैं। सो यह बड़ा ही पेचीदा मामला है, भाइयो ! इसमें बड़े-बड़े राज छिपे हैं । मगर छोड़िए, राज-वाज की बात को । यदि यही मान लिया जाय कि बिंदिया के साथ इनका सम्बन्ध है तो अब से यह सम्बन्ध टूट जायगा। बैजनाथ पर हमलोग प्रेम से दबाव डालेंगे कि ये उस हरामजादी छोकरी को मार कर अपने घर में से खदेड़ दें और मैं कल ही उसे अपनी जमींदारी में से उजाड़ फेकूँगा। यह मछली सारे तालाब को गन्दा कर रही है । भाइयो, भला-बुरा सबसे होता है मगर अपने ही अंगों के समान अपने एक भाई को हम काटते चलेंगे, तो हम एक दिन अपने ही से सूने हो जायेंगे । इसलिए हम चाहते हैं कि हम बैजनाथ को फिर से अपनाएँ ।'

फिर भी कोई कुछ न बोला । किसी के गले के नीचे कोई बात उतरती ही नहीं थी ।

'भाइयो'—मुखिया बोल रहे थे, 'लोग कहते हैं कि बैजू के घर में पेट-मडुवा है, परन्तु यह तो एक अदेखी बात है, किसी ने देखा तो नहीं है, सोखा-ओझा बन कर लोग दुश्मनी साधने के लिए किसी पर भी दोष लगा सकते हैं।' इतना कह कर उन्होंने बैजू की ओर देखा। उसकी आँखें क्रोध से टेढ़ी हो गयी थीं । मुखिया मन में मुसकराये । फिर सब से पूछा—'क्यों भाइयो, बैजू के साथ खान-पान शुरू करने के विषय में आप लोगों को क्या कहना है ?'

लोग सोच रहे थे कि जिसके घर कई-कई पेट-मडुवा पड़े हों, जो चमाइन रखे हो और अपने हाथों से गाय-बैलों से भरी घारियों को फूँक

चुका हो (कई बार तो जीवित गाय-बैल चिग्घाड़-चिग्घाड कर जल गये), उस पापी के साथ कैसे सम्बन्ध किया जाय ? मुखिया को क्या हो गया है ? परन्तु ये सबके सब मुखिया के दरबारी थे—बिना दाम के चाकर और फिर बैजू से सब काँपते थे; इसलिए सभी लोग केवल अपने बड़े-बड़े कपार हिला रहे थे । बोलते कुछ नहीं थे ।

मुखिया थोड़ा-सा मुसकराये और सबकी ओर एक बार हँसती निगाह डाली। जैसे अपनी विजय का अचूक अस्त्र छोड़नेवाले हों—'भाई लोगो ! मेरा यह विचार है और वेद-शास्त्रों का भी यही कहना है कि कथा-पुरान सुनने से, गंगाजी नहाने से सारे पाप-ताप कट जाते हैं। मैं बैजनाथ को भी यही सलाह दूँगा कि वे गंगाजी नहा आयें, भागवत सुनें और फिर गाँव भर को भोज दें। यह भोज दो दिन तक चलेगा ।'

बैजू बड़े असमंजस में पड़ गया। अप्रत्याशित रूप से इतना बड़ा खर्च उसके मत्थे पड़ने जा रहा है। वह जाति बाहर ही सही, कौन किसी से जाति में मिलाने की बिनती करने जा रहा है? मेरा यों कोई क्या बिगाड़ ले रहा है? मगर मुखिया के एहसान से वह लदा है, कैसे विरोध करे ? मगर उसके मन में एक दूसरा विचार कौंध गया । उसकी बहन गेंदा व्याह के लिए पड़ी है। कौन देगा अपना बेटा इसके लिए ? सब लोग मुझे चमार जो समझते हैं । उसके मन में एक उजाला फूट गया । खर्च ? अरे खर्च का इन्तजाम कर लेगा, उसके बावन हाथ हैं ।

मुखिया के भोजवाले प्रस्ताव से सबके चेहरे खिल गये । गरम-गरम पूड़ियों, तरकारियों की कल्पना से लोगों के मुँह में पानी भर आया। और सब एक साथ बोल उठे—'हाँ, हाँ मुखिया ठीक कहते हैं, गंगाजी नहाने से और भागवत सुनने से बड़े से बड़े पाप कट जाते है और फिर बैजू है तो अपना ही भाई। अपना कोई अंग घायल हो जाता है तो उसे काट थोड़े देते हैं, दवा दारू से उसे अच्छा करते हैं। हम सब तैयार हैं बैजू के यहाँ खाने को ।'

मुखिया ने बैजू से मुसकरा कर पूछा—'क्यों बैजनाथ क्या राय है तुम्हारी ?'

'आप गाँव के मुखिया हैं, आप का हुकुम मेरे सिर-माथे ।' बैजू बोला ।

मुखिया ने फिर जैसे कोई भूल सुधारते हुए कहा—'अरे हाँ, गाँव के सभी लोगों से पूछ तो लेना चाहिए ।'

'जे वा से के ससुर ए प्रस्ताव क विरोध करी । गंगाजी त केतना बड़े-बड़े पापिन के तरले बाटी, बैजनाथ के नाही तरिहैं । थित्त थू ।'

तनी देखिल, अरे जर-जवार के लोग भी ? ओ बहू की पूँछ--
पुरवा गाँव के केतना एका है । और बैजनाथ ं होती हैं इन राड़ों
तनि देखिल मुसी गनेस परसाद भीतर पड़ जायँ, हर आती हैं--हाँ
मिठाई की फिहरिस्त बनाते समय हमको बुलाय ली हो।
स्वर था । गते-चलाते

मुखिया ने हँस कर कहा--'अरे भाई, तुम लोग क्या समझते हो।
में ही साँप होता है । कल हम गाँव की सभा जुटायेंगे तो आप ?'
को मालूम हो जायगा कि कौन विरोध करता है ?'

लोग इस समय भोज की कल्पना से इतने अभिभूत हो गये थे कि विरोध की बात को वे मन में आने देना नहीं चाहते थे । टीसुन ने रग्घू बाबा के पाँव पर अपनी पगड़ी रखते हुए कहा--'बाबा, जरा वही गाना फिर हो जाय ।' धीमड़ पाँड़े जो खुशी से आपे में नहीं थे बोल उठे--'हाँ बाबा जरा होई जाय।'

'ना रे अब का ? जे बा से अब त धारा टूटि गइल। चित्त थू ।'

टीसुन उनका पैर दबाने लगा ।

रग्घू बाबा ने अपना पैर छुड़ाते हुए हँस कर कहा--'जे बा से छोड़ ससुरा । आरे ए लुटनवा क बेटा के मारे नाहीं जीउ बची।'

सानि सूनि जब पेटे में डरलें
ऊपर से माँगे सोहारी हो शामलाल
कैसे बनी कचनारी ।....

और न जाने कैसे रग्घू बाबा की टाँगों में इतनी स्फूर्ति आ गयी कि वे फिरकी की तरह घूम-घूम कर नाचने लगे ।

बाह रे बाबा बाह-बाह
बाह रे बाबा बाह-बाह
चट्ट चट्ट चट्ट चट्ट

टीसुन और धीमड़ मुँह से ताल देने लगे--

चप्पु चपू चप्पु चप्पू चप्पु चप्पू

बेनी काका नाक से सारंगी बजाने लगे--

किंग किंण किण किंगा किण किंण किंग किंगा
बाह रे बाबा बाह-बाह !

८

वैशाख की अँधेरी शाम थी । आस-पास के गाँवों से द्वारपूजा के नहाड़े, सिंहा और बैंड की धुन उमड़-घुमड़ कर रूपा (नीरू की माँ) के कान में समा रही थी । पड़ोसी के लड़के की शादी है, आज से पांच दिन बाद । लगान के दिन चढ़ गये हैं । गाँव की औरतें एकत्र हो कर गा रही हैं ।

रूपा का जी भारी है । नीरू इतना बड़ा हो गया मगर कोई भी उसके व्याह के लिए नहीं आया । एकाध आते भी हैं तो गाँव के लोग काट देते हैं । सभी तो भुक्खड़ बसते हैं इस गाँव में । एक शादी आयी तो गाँव भर टूट पड़ता है और सभी बरदेखुआ को अपने-अपने यहाँ खींचने की कोशिश करते हैं । नीरू सत्रह साल का हो गया मगर अभी कहीं कोई उम्मीद नहीं है । रूपा की आँखों में बहू का चाँद-सा मुखड़ा तैर गया । बहू घर में आयी है, कैसी भोली भोली हरिनी की-सी आँखें हैं । घर भर गया है। गीतों से घर का सूनापन कट गया है । बहू पानी देती है, खाना बनाती है, पैर दबाती है... नहीं नहीं बहू, तुम आज करते-करते थक गयी हो, जाओ आराम करो... क्या कहा ? थकी कहाँ हो ?... अरे दिन भर तो काम करती रही हो, जाओ जाओ । पर वह तो नहीं मानती—जबरदस्ती पाँव पकड़ कर बैठ जाती है । एक-एक बनावटी झगड़ा उठता है और फिर रूपा के आशीर्वादों में सारा झगड़ा बह जाता है । जुग-जुग जियो बहू रानी, दूधन नहाओ पूतन फलो ।.... किहाँ किहाँ ? आज रूपा अपने आपे में नहीं है। एक नन्हा-सा चाँद उसके घर आया है । वाह, कैसा कमल के समान मुँह है, बेईमान ठीक अपने बाप को पड़ा है । रूपा के पाँव जमीन पर नहीं पड़ रहे हैं। वह गीतों की कड़ियाँ पकड़ कर आकाश में उड़ी जा रही है ।.... अरे-अरे वाह पाजी दादी को तो छोड़ता ही नहीं । माँ के पास तो रहता ही नहीं । रूपा बहू को डाँटती है, गालियाँ बकती है, फूहड़ देख तो सोना जैसा लड़का पेशाब में मड़िया मार रहा है । अरी डाइन, देख तो बच्चा कब से भूखा चिल्ला रहा है, दूध तो पिला । बहू इस गाली को आशीर्वाद के समान हँस कर झेल लेती है । वह प्यारा-सा बच्चा घुटनों के बल रेंग रहा है, कैसे नन्हें-नन्हें दाँत उसके लाल-लाल ओठों के बीच

दमक रहे हैं। हँसता है मानो जादू करता है। अरी ओ बहू की पूँछ--जरा लाल को दिठौना तो दे दो, कैसी बुरी-बुरी नजरें होती हैं इन राड़ों की। हरजाई सब न जाने कहाँ-कहाँ से जादू-टोना सीख कर आती हैं--हाँ बेटा खेल आये! अरे सारी देह तो धूल से भर गयी है।

'हाँ हाँ खेलने गया था? यहाँ तो दिन भर कुदाली चलाते-चलाते छाती फट रही है और तुम कहती हो खेल आये। धूल से भर गये हो। अरे खेत गोड़ते-गोड़ते धूल से नहीं भरूँगा तो क्या चन्दन से भरूँगा?' कह कर नीरू ने अपनी कुदाली कन्धे पर से उतार कर जमीन पर धम्म से पटक दी।

रूपा का सपना भंग हो गया। वह सपनों के स्वर्ग लोक से ढकेली जाकर धरती पर धम्म से आ गिरी। वह कुछ न बोली। उसकी आँखें भर आयीं। 'बेटा, नाराज हो गये मैंने तुम्हें तो कुछ नहीं कहा?'

'तब किसे कह रही थी यहाँ तो और कोई नहीं है।'

'किसी से नहीं बेटा, किसी से नहीं।'

'नही माँ, मैंने अपने कानों सुना है। तुम किसी से जरूर बात कर रही थी--वह कौन था माँ?'

'कोई नहीं बेटा, मैं कहती हूँ कोई नहीं।'

'क्या तुम पागल हो गयी हो मैंने खुद सुना है।'

'रूपा कुछ न बोली। बरबस उसकी आँखों से दो बूँदें ढुलक पड़ीं।

नीरू अधीर हो गया--'माँ-माँ, तुम रो रही हो। जरूर कोई बात है, माँ! तुम छिपा रही हो।' और वह जाकर माँ की आँखें पोंछने लगा।

'कोई बात नहीं बेटा--जरा एक सपना आ गया था बड़ा प्यारा सपना।'

'मगर तुम तो अभी बैठी हुई थी, माँ सोई कहाँ थी?'

'वह जागते का सपना था बेटा!'

'जागते का? यह कैसे हो सकता है?'

'अच्छा छोड़ो यह तो बताओ वह सपना क्या था?'

'अरे जाओ पूता हाथ मुँह धोओ। कुदाल चला कर आ रहे हो। न हाथ मुँह धोना, न पानी पीना, बस बैठ गये सपना सुनने।'

लेकिन नीरू वहाँ से नहीं टला। वह सोचता रहा वह कौन-सा सपना है जिसे माँ बैठे-बैठे देखती थी और फिर उसकी आँखों में आँसू आ गये। उसने माँ से बार-बार जिद की और अन्त में जब वह न माना तो माँ ने भर्राये हुए स्वर में कहा--

'तुम्हारे विवाह का सपना बेटा।'

नीरू ठठा कर हँस पड़ा। 'वाह माँ' तुम भी तो खूब सपना देख-देख कर रो रही हो। पता नहीं यह पागलपन तुम पर क्यों सवार हो गया है। अरे मैंने तो पहले ही कह दिया है कि मैं पचीस वर्ष से पहले शादी नहीं करूँगा। अरे हमारे ग्रंथ यही कहते हैं माँ कि पचीस के पहले विवाह नहीं करना चाहिए।'

माँ समझती थी कि बेटा बहाने बनाता है। वह देखता है कि कहीं से विवाह नहीं आता है तो हम लोगों को तोख देने के लिए ऐसा कहता है। इससे माँ का दिल और भी दर्द से भारी हो उठता। बेटा कितना समझता है हम लोगों के दर्द को। माँ को विश्वास था कि विवाह लग जाने पर नीरू नहीं नहीं करेगा।

'आओ आओ संध्या।'

रूपा ने संध्या को आते देख झट अपने आँचल से आँखें पोंछ डालीं और हँसने की कोशिश करती हुई बोली, 'आओ-आओ बिटिया!'

'संध्या! देख तो मेरी माँ मेरे विवाह के लिए रो रही थी।' यह कह कर नीरू हँस पड़ा।

माँ को अपनी बेबसी औरों के सामने जाहिर करते हुए बड़ा बुरा लगा मगर वह जानती थी कि संध्या और नीरू बहुत हिले-मिले हैं, भाई बहन की तरह हैं। इसलिए वह कुछ निसंकोच हो गयी। बोली—'हाँ-हाँ, रो रही थी जनम भर कुँआरे ही रहोगे क्या? देख तो संध्या बिटिया यह कहता है कि पचीस बरस तक बियाह ही नहीं करूँगा। पूरा मर्द हो गया, पता नहीं अब कब बियाह करेगा? बियाह करने को कई लोग हमारे रिश्ते में ही तैयार हैं, परंतु सोचती हूँ कि उन्हें किस मुँह से बुलाऊँ। अगर बुलाऊँ, और यह नहीं कह दे तो हम लोगों की और उन लोगों की भी क्या इज्जत रह जायगी? तुम्हीं समझा न संध्या बिटिया।'

'चाची, मैं क्या समझाऊँ? पढ़े-लिखे लड़के-लड़कियों के दिल की बात कोई नहीं जानता। माँ-बाप एक जगह रिश्ता तय करते हैं तो लड़के-लड़कियाँ दूसरी जगह। सो इन्हीं से जरा पूछ देखो, शायद दिल की तहों में कोई शादी का संबंध छिपाये हों।'

रूपा कुछ मुसकरा पड़ी—'अरे बेटी, तो वही क्यों नहीं कर लेता, मुझे कोई एतराज नहीं होगा। बस मैं तो बहू और नाती का मुँह देखना चाहती हूँ। बूढ़ी हो रही हूँ, पता नहीं कब भगवान् के यहाँ से परवाना आ जाय और चल पड़ूँ।'

'अरे नहीं चाची ऐसी अशुभ बात मुँह से क्यों निकालती हो? नीरू महाराज शादी बिना रहेंगे, ऐसा मैं नहीं सोचती। जरा पूछो तो चाची, कहीं इन्होंने खुद लड़की-वड़की तो नहीं ठीक कर ली है?'

नीरू मुसकराया और संध्या की आँखों में अपने को डुबा देना चाहा। आह इन मुसकराती आँखों की सतह के नीचे कितनी गहराई है ? 'हाँ माँ एक बहुत खूबसूरत लड़की मेरी निगाह में है । चाँद भी उसके मुँह के आगे मात है । माँ ऐसी बहू पाकर तुम धन्य हो जाओगी ।

'तो बताओ न उसके माँ-बाप से बातचीत की जाय ।' माँ बोली ।

'ना माँ अभी वह पढ़ती है, कहती है बिना पढ़ाई पूरी किए मैं शादी नहीं करूँगी और तुम भी अपनी पढ़ाई पूरी कर लो ।'

'अरी चाची, जरा यह तो पूछ देखो कि वह है अपनी ही जाति की, कि कायस्थ, बनिया ?' हँसकर संध्या बोली । उसकी आँखें शरारत से नाच रही थीं ।

'कायथ, बनिया ? अरे कायथ, बनिया की बेटी ब्याहेगा ? कैसी बात करती हो संध्या बिटिया !'

'हाँ चाची, आजकल के पढ़े-लिखे लोग दूसरी जाति में विवाह करते हैं, तुम्हें ताज्जुब क्यों होता है ? जाति-पाँति तो झूठे बंधन हैं ।'

'आजकल जो न हो जाय बिटिया । मगर नहीं, नीरू ऐसा नहीं करेगा । जाति-पाँति सनातनी चीज है । वह किसी के तोड़ने से टूटेगी भला ?'

'नहीं माँ' नीरू बोला—'मैं तो अपनी ही जाति की लड़की ले आऊँगा । वह बड़ी अच्छी लड़की है माँ । वह छः में पढ़ती है, सुशील और सुन्दर लड़की है माँ । उसके घर वाले भी पैसे वाले हैं । मगर वह तुम्हारे घर घमंड बिलकुल नहीं करेगी ?' इतना कह कर उसने संध्या की आँखों में झाँका । संध्या संकल्प-विकल्प में खोई-खोई ज्ञात हुई ।

माँ को सहसा ध्यान आया कि उसे भी पड़ोसी के यहाँ विवाह का गीत गाने जाना है । वह उठ खड़ी हुई । 'अरे नीरू, मैं तो बात ही करती रह गयी । तूने पानी पिया न कुछ । बस बैठ कर गप्पें हाँकता रह गया । पपीहा पांडे के लड़के का विवाह है न, जरा जाती हूँ वहीं गीत गाने ।'

'अरे हाँ चाची, मुझे भी ध्यान नहीं रहा । कल मेरा हिंदी का इम्तहान है । जरा आयी थी नीरू से पढ़ने । अच्छा तब तक मैं इनसे पढ़ती हूँ तुम हो आओ ।'

रूपा चली गयी । केशव खेलने बाहर गया हुआ था और लीला पहले ही पपीहा पाँड़े के घर गाने चली गयी थी । सुमेश पाँड़े खलिहान से छुट्टी पाकर ससुराल करने चले गये थे । घर सूना था । घर क्या था जर्जर दीवारों से घिरा हुआ एक मकान था, जिसके एक ओर की दीवारें आधी गिरी हुई थीं और तीन ओर की दीवारें गिरने के इन्तजार

में थीं । ऊपर टूटी हुई कड़ियों और धरनों पर खपरैल अँटका हुआ था, जिसमें कई जगहों पर बड़े-बड़े छेद हो गये थे और बरसात के दिनों में उनसे होकर पूरा आसमान घर में उतर जाता था । घर के दक्खिन ओर अरहर के डंठलों से घेर कर एक बखार बनाया गया था जिसमें कुछ भूसों के साथ अनाज रखा हुआ था । दो-चार डेहरियाँ भी इधर-उधर रखी हुई थीं । रसोई घर में दो चार टूटे-फूटे बरतन रखे हुए थे जिनमें कुछ रोटियाँ और दाल पड़ी थी । नीरू और संध्या पश्चिम के दालान में बैठ गये । उसकी बगल में डेहरी का आड़ था । आड़ में एक डेबरी भुक-भुक करके जल रही थी । हवा से डेबरी को बचाने के लिए दोनों ने यहीं आड़ में बैठना ठीक समझा । चारों ओर अंधकार छाया हुआ था ।

'क्यों ज्ञानी महाराज कहीं नजर लग गयी है क्या ?'

'कैसा ?'

'अभी अम्मा से नहीं कह रहे थे कि एक बड़ी खूबसूरत लड़की मेरी निगाह में है जो चाँद से भी सुन्दर है । जरा मैं भी तो जानूँ उस खुशनसीब का नाम ?'

'अरे वह तो अम्मा को तोख दे रहा था । तू भी कैसी बात करती है पगली !'

'ऊँ हूँ बात जरूर कोई है जो तुम मुझसे छिपा रहे हो । छः में पढ़ती है, कौन है वह लड़की ? मेरे क्लास में तीन लड़कियाँ और हैं । हाँ, वह उमा सुन्दरी है, तुम्हारी जोड़ी खूब फबेगी ।'

नीरू मुसकराया—'अच्छा पढ़ो संध्या, कल तुम्हारा इम्तहान है न !'

संध्या समझी कि नीरू बात टाल रहा है । उसका स्वर कुछ भारी हो आया । किताब उलट कर बोली—'अच्छा पढ़ाओ ।'

नीरू पढ़ाने लगा ।

'रहीम कवि कहते हैं कि सच्चा प्रेम कभी नहीं मिटता । देखो न, पानी मछली को अपने से अलग कर देता है, परन्तु पानी को सच्चे दिल से प्यार करने वाली मछली पानी से अलग होते ही प्राण त्याग देती है । समझी संध्या !'

संध्या कुछ न बोली । नीरू ने चौंक कर पूछा—'संध्या ! कुछ समझी ? आगे चलूँ ?'

संध्या जैसे किसी ध्यान से चौंक कर बोली—'हूँ ऊँ क्या कह रहे हो ? हाँ...आँ समझी । मगर अब पढ़ने को जी नहीं हो रहा है । रहने दो ।'

'कैसी बात कर रही हो । कल तुम्हारा इम्तहान है और तुम्हारा पढ़ने

को जी नहीं हो रहा है। चलो-चलो आगे चलो—हाँ! 'रहीम कवि—

'नहीं नहीं रहीम जायें चूल्हे-भाड़ में। मैं जा रही हूँ मेरा मन नहीं लग रहा है।'

नीरू एक बार हँसा। संध्या के दिल में आग लग गयी—'हँसते क्या हो कसाइयों की तरह? आखिर तुम भी पुरुष हो ना और सुना है पुरुषों को औरतों की तकदीर से मजाक करना अच्छा लगता है।'

'अच्छा संध्या तुमने भी पुस्तकों की पंक्तियाँ मंत्र की तरह घोख ली हैं।

'जाओ हटो मैं तुझसे नहीं बोलती।' धीरे-धीरे वह सिसकने लगी।

नीरू ने संध्या का हाथ पकड़ लिया—'बोल पगली, तू रोती क्यों है? मुझसे क्या कसूर हो गया?'

संध्या ने हाथ झिटकारते हुए कहा—'जाओ जाओ उसी राँड़ उमा का हाथ पकड़ कर मनाओ। मैं तुम्हारी कौन होती हूँ?'

'संध्या, तुम किस उमा का नाम ले रही हो? मैं इस उमा नाम की चिड़िया का नाम भी आज ही सुन रहा हूँ।'

'तुम सच-सच बताओ क्या तुम इस उमा की बात नहीं कह रहे थे चाची से?'

'तुम्हारी कसम पगली इस उमा का नाम भी मैंने नहीं सुना है।'

'तब तुम किस लड़की की बात कर रहे थे?'

नीरू मुसकराया—'मैं तो उस लड़की की बात कर रहा था जो सचमुच चाँद है और जिसका नाम है....क्या नाम है क्या नाम है कि...'

'हाँ हाँ बोलो क्या नाम है कि?'

'क्या नाम है कि....(संध्या के गालों पर उँगली से एक ठुनकी देकर तेजी से मुड़ता हुआ) संध्या!'

'जाओ हटो झूठ बोलते शरम नहीं आती।'

'तुमसे मैं झूठ बोलूँगा संध्या! जरा अपनी आत्मा से तो पूछो!'

संध्या का कपोल आरक्त हो गया। शरमा कर उसने दूसरी ओर मुँह फेर लिया।

नीरू धीरे-धीरे संध्या के सामने आ गया। संध्या धीरे-धीरे फिर सिसकने लगी।

'मुझे माफ कर दो नीरू!'

'क्या पागलपन करती हो संध्या?'

फिर कुछ हँसकर उसने कहा कि सभी औरतें समान रूप से शंकाशील होती हैं संध्या। इसमें तुम्हारा क्या कसूर है।'

'अच्छा तो पुस्तकों की पंक्तियों को तुमने भी मंत्रों की तरह घोख लिया है।' कहकर संध्या हँस पड़ी।

'तभी तो हम-तुम सभी रूप से बराबर हैं।'

थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे। फिर नीरू काँपते हुए गले से बोला—'संध्या! मुझे डर लगता है।'

'काहे का?'

'यही कि हमारा-तुम्हारा संबंध न जाने कब टूट जाय?'

'ऐसी अशुभ बात मुँह से क्यों निकालते हो? क्या तुम मुझसे ऊबने लगे हो?'

'नहीं संध्या, ऐसी बात नहीं है।'

'तो फिर?'

'बात यह है कि मैं अत्यन्त गरीब हूँ। और तुम धनी।'

'फिर वही बेकार की बात?'

'नहीं संध्या, बेकार बात नहीं है। सोचो कि क्या तुम्हारे माँ-बाप मेरे साथ...।'

संध्या को कोई जवाब न सूझा। वह कुछ देर तक सोचती रही कि आज तक तो उसने इस सवाल पर कभी विचार ही नहीं किया। मगर उसके भोले-भाले दिल ने उत्तर दिया—'क्यों नीरू? इसमें पाप क्या है? किताबों में तो लिखा है कि धन से बड़ी चीज आदमी का गुण है, उसकी पूजा होनी चाहिए। और मैं तो तुम्हारे समान स्वस्थ, विद्वान्, दयालु और मेहनती किसी को देखती ही नहीं। मुझे तुम्हारे ऊपर घमंड है नीरू। भइया और बाबूजी मुझे इतना प्यार करते हैं तो क्या मेरी इच्छा के अनुकूल तुम्हारे साथ भी नहीं रहने देंगे?'

'नादान लड़की!' नीरू बुदबुदाया। उसे पुस्तकों में पढ़ी और कुछ बड़ों-बूढ़ों द्वारा सुनी कहानियाँ याद पड़ गयीं, जिनमें लड़कों और लड़कियों के इच्छित संबंधों को उनके अभिभावकों ने बड़ी निर्दयता से तोड़ा था। उसका मन भारी होने लगा।

'क्यों चुप क्यों हो गये नीरू! तुम्हारी यह चुप्पी बड़ी डरावनी मालूम पड़ रही है। भला तुम्हें विश्वास है कि मैं तुम्हें छोड़ सकती हूँ?'

'नादान लड़की।' नीरू के मन ने फिर दुहराया। किन्तु फिर उसकी कल्पना की आँखों के आगे एक रंगीन इन्द्रजाल खड़ा हो गया। यथार्थ उस रंग में विलुप्त हो गया। कोई नहीं है केवल वह है और संध्या। वे दोनों जैसे लाल किरणों से रंजित कुहरे भरे आकाश में एक-दूसरे का हाथ पकड़े उड़ रहे हैं।

टूटी हुई दीवार के पास कोई चीज खरखराई। नीरू का ध्यान भंग हुआ, संध्या तो भय से सिहर गयी।

'माँ!' नीरू चिल्लाया।

'लीला!'

'केशव!'

'ऊँह कोई नहीं। तो कौन है?' नीरू बड़बड़ाया।

'मुझे तो डर लग रहा है मुझे मेरे घर पहुँचा दो।'

'अरे डर की क्या बात है? लगता है कोई बिल्ली-उल्ली कूदी है।'

'नहीं मेरे घर पहुंचा दो अब काफी रात हो गयी है।'

'अरे अंधकार से काफी रात मालूम पड़ रही है, नहीं तो अभी तो नव-दस के बीच होगा। और अभी तो घर सूना है कैसे छोड़ सकता हूँ।'

कुछ देर रुक कर नीरू बोला—'तुमने तो कुछ पढ़ाई की ही नहीं, लाओ तब तक कुछ पढ़ायें।'

मगर संध्या को कुछ नहीं अच्छा लग रहा था। उसे न जाने क्यों ऐसा लगने लगा कि उसकी छाती पर मन भर का बोझ रखा हुआ है। नीरू की माँ नीरू के विवाह के लिए बेचैन है, पता नहीं कब और कहाँ कर बैठे? नीरू ने एक नया संदेह पैदा कर दिया है। मेरे बाप भाई क्या नीरू के साथ मेरा संबंध स्वीकारेंगे? वे कितना भी प्यार करते हैं तो क्या नीरू के साथ मेरे संबंध की कल्पना से आग बबूला नहीं हो जायेंगे। एक तो नीरू गरीब है, दूसरे गाँव का ही लड़का। बाप रे बाप, छाती पीट लेंगे गाँव वाले। घर वाले मेरा सिर भी तोड़ दें तो कोई ताज्जुब नहीं।...बाप रे बाप यह अंधकार और इस अंधकार में मैं और नीरू, पता नहीं चाची कब आयेंगी। और यह खरखराहट...यह कौन है शायद कोई हम लोगों की बात सुन रहा था छिप कर, तब तो अनर्थ ही हो जायगा। कल से गाँव में निकलना भी मुश्किल हो जायगा। ऐसा लगने लगा जैसे उसने कोई बहुत बड़ी चोरी की हो और भरी सड़क पर पकड़ ली गयी हो। उसका दिल धक-धक कर रहा था।

पड़ोस से अब भी विवाह का गीत उठ रहा था। और संध्या गुमसुम खोई-खोई-सी खड़ी थी।

'माँ नहीं आयी और लगता है केशव भी खेलने के बाद वहीं गीत सुनने चला गया है, बड़ा पाजी है।' नीरू संध्या की उदासी देखते हुए बोला।

'कोई बात नहीं नीरू, मैं चली जा रही हूँ, डर कौन है? यह तो गाँव है। शहर थोड़े न है?'

'क्या मतलब?

'मतलब क्या ? भइया कहते हैं कि शहर में गुंडे बसते हैं और रात को लड़कियाँ अकेली नहीं निकल सकतीं।'

नीरू ठठा कर हँस पड़ा। 'अच्छा चलो तुम्हें रास्ता तो दिखा दूँ' कहता हुआ नीरू संध्या को लेकर दरवाजे तक आया। संध्या को दरवाजे पर छोड़ कर ज्यों ही वह अन्दर आया कि एक काली छाया को अधगिरी दीवार फाँद कर भागते देखा। वह ठिठक कर सन्न रह गया। उसका इस ओर ध्यान ही नहीं गया कि भूसे में रखे हुए अनाज से धूआँ निकल रहा है।

तब तक भकभका कर भूसा जल उठा। और नीरू चिल्ला उठा 'आग-आग !' आग ने बात की बात में लपक कर ऊपर की बँड़ेर पकड़ ली और अरहर तथा सरपत ने आग को बहकावा दिया। अंधकार की छाती पर लपटें बड़े-बड़े अजगरों की तरह हिलने लगीं। नीरू किंकर्त्तव्य-विमूढ़-सा चिल्लाये जा रहा था, आग आग। और चारों ओर गाँव में हल्ला मच गया आग...आग।

आग की लपटों की छाया दूर-दूर तक के पेड़ों पर लोटने लगी। पास के पीपल के पत्ते काँप कर हरहरा उठे। आसपास के पशु चौंक-चौंक कर पगहा तुड़ाने लगे। आग बढ़ती जा रही थी। लकड़ियाँ के जलने की चटचटाहट वातावरण में भर उठी। चारों ओर से लोग हल्ला करके दौड़ने लगे आग-आग। बूढ़ी औरतें घरों के बाहर होकर और नयी बहुएँ आँगन में से ही लाल आसमान को देखने लगीं। आसमान ऐसा लगने लगा जैसे लाल-लाल बादल घिरे हुए आ रहे हों।

घटनास्थल लोगों से भर गया। एक अजीब कोलाहल-सा छा गया। कोई खपड़े के ऊपर चढ़ गया। कोई दाना मिश्रित भूसे को डंडों से पीट-पीट कर बुझाने लगा। बहुत से लोग घड़े लेकर कुएँ पर दौड़े, छपाछप पानी की बौछारें आग के ऊपर कूदने लगीं। नीरू की माँ एक ओर खड़ी होकर हाय-हाय कर रही थी। नीरू की बहन और भाई माँ की हाय-हाय में सहयोग दे रहे थे। संध्या रूपा को संतोष दे रही थी। नीरू छत पर चढ़कर खपरैल उजाड़ कर कड़ियों को निकाल रहा था ताकि आग आगे न बढ़ सके। मुखिया, बेनी, टीमुन, रग्घू, धीमड़ सभी बड़ी वीरता से आग की लपटें शान्त करने के लिए पानी का अस्त्र ले लेकर दौड़ रहे थे। पपीहा पांड़े पानी परोर कर आग पर मार रहे थे, ताकि आग की शक्ति बँध जाय। सब लोग अभिभूत होकर उनकी इस मांत्रिक क्रिया को देख रहे थे।

पड़ौसी लोग अपने-अपने घरों पर चढ़ कर अपने-अपने खपड़े उजाड़ रहे थे, सबके सब घबड़ाये हुए थे।

कहीं-कहीं कुछ कानाफूँसी भी हो रही थी—'नहीं-नहीं उसकी करतूत नहीं है।'

'नहीं भाई उसी की होगी ।'

'वह तो इनको बहुत मानता है ।'

'अरे चोर-बदमाश भी किसी के होते हैं ? रमेश दुबली-पतली लोमड़ी की तरह फटी पुरानी नेकर पहने यहाँ से वहाँ, वहाँ से यहाँ नाच रहा था जैसे क्या करे, क्या न करे ? कभी-कभी वह अपना माथा ठोंक लेता था । और यों ही सबसे कहता फिरता, पानी ले आऊँ ? अयँ क्या ले आऊँ ? परन्तु कोई भी उसकी ओर नहीं देखता था । और वह माथा ठोंक-ठोंक कर कहता फिर रहा था, अरे मेरे नीरू भइया का घर फूँक दिया बदमाश ने । और सुमेश काका को क्या कहूँ कि उन्हें रिश्तेदारी करने से फुरसत नहीं मिलती । वास्तव में नीरू की माँ से वह यह शिकायत सुन-सुन कर कह रहा था । नीरू की माँ इस विपत्ति का दोषारोपण सुमेश की ससुराल-यात्रा पर कर रही थी । इन्हें तो मेला, हटिया, नातेदारी, बरात करने से छुट्टी ही नहीं मिलती । छोटे-छोटे बच्चों पर घर छोड़ कर घूमते फिरते हैं ।

तेईस वर्ष का नवयुवक मलिन्द बड़े परिश्रम से घर के सामानों को आग के प्रभाव से दूर हटा हरा था । उसका सुन्दर शरीर और मुख लपटों की छाया में दमदमा-दमदमा उठता था । उसकी आँखें रह-रह कर किसी को खोज रही थीं । वह धीरे से भुनभुना पड़ा—'नहीं है वह । उसी का गुण हो सकता है ।'

मुखिया चिल्ला रहा था—'अरे ये गाँव के बदमाश साले किसी भी भले आदमी को ठीक से नहीं रहने देंगे ।' मलिन्द मुसकरा उठा । उस व्यंग्य की मुसकान को मुखिया ने देख लिया और हतप्रभ-सा चुप हो गया ।

धीरे-धीरे आग की लपटें शान्त हुईं । काफी अन्न, भूसा, गृहस्थी के सामान और एक ओर का छत जल चुका था । बाकी मकान लोगों की दौड़-धूप से बचा लिया गया ।

रात भर नीरू के घर में धराशायी आग दहकती रही ।

९

नीरू उदास बैठा था। नीरू सामने देख रहा था अपने मकान के जले हुए अंशों को जो कि अब काले हो गये थे। वह कुंठित कालिमा जैसे नीरू के तन मन में भरी जा रही थी। नन्हीं-सी जान और उसके पीछे गाँव भर के कुत्ते भूँक रहे हैं। चोट खाकर वह जैसे थोड़े ही दिनों में बहुत सयाना हो गया है। उसके मन में सत्य और कल्पनाओं की एक भीड़-सी खड़ी हो गयी है। खेत सब मुखिया के पेट में चले गये। घर के सामान कस्बे के बनिये ने खा डाले। चारों ओर से कर्ज दहाड़ रहा है। फिर भी छुटकारा नहीं। गाँव के चोर बदमाशों का दल साजकर मुखिया राजा बना हुआ है। न जाने क्यों मुझे उसकी शान बर्दाश्त नहीं होती। यदि मैं भी उस समाज में मिल जाता तो फिर कोई झगड़ा ही नहीं उठता, मगर अपने मन को क्या कहूँ जो किसी का मिजाज और नागवार बातें बर्दाश्त ही नहीं करता। अब यह बैजू भी नया दुश्मन खड़ा हो गया। इसको भी मुखिया ने ही बहकाया है—नहीं तो मेरे घर की ओर आँख उठाकर देखने की इसे हिम्मत तक न होती थी। बाबूजी ने मेले में उसकी बहन का पर्दाफाश किया। इन महाराज की भी जिन्दगी लाखैरपन में ही बीती। करने को कुछ नहीं, बस अपनी जबान से सबसे तीते होते चलते हैं। न दे भगवान ऐसी अकारथ जिन्दगी किसी को, बस सोखैती के जोश में घर फुँकवा दिया। मगर उसकी बहन ने भी तो हमारे घर का अपमान किया था। कौन है हमारे घर में टोना देने वाली औरत? मेरी माँ? मेरी बहन? कमीनी गेंदा तूने होली के दिन का बदला लिया।

'मगर नहीं, सारी उत्पात की जड़ मेले वाली घटना ही नहीं है। बैजू के यहाँ खाने-पीने की समस्या भी एक गंभीर कारण है।' नीरू की आँखों के आगे उस दिन की सारी घटना एक बार फिर तैर गयी—'मुखिया ने प्रस्ताव रखा था कि बैजू अपना भाई है। उसे हमने काट कर अपने से अलग कर दिया है। बैजू हमारी घृणा से नहीं हमारे प्रेम से सुधरेगा। बैजू गंगा नहा आये, भागवत सुन ले और फिर गाँव को खिलाये। गाँव के सभी लोग बैजू के यहाँ खाकर उसे फिर जाति में मिला लें।'

मुखिया के इस प्रस्ताव से कुछ लोगों के मुँह में कल से ही पानी भरा आ रहा था। आज फिर उस प्रस्ताव को सुनकर उनके सामने धर्म-कर्म, पाप-पुण्य, गंगा-स्नान, भागवत कथा, छूतछात को धकिया कर लाल-लाल गरम-गरम पूड़ियाँ नाच उठीं। धीमड़ पाँड़े के मुँह से पानी चू पड़ा। वह झट से अपने मुँह को पोंछता हुआ खड़ा हुआ और अपनी थुलथुल दाहिनी बाँह को हवा में एक बार झटकारते

हुए कहा——भाइयो, मुखिया भाई का यह प्रस्ताव एक दम ठीक है। इसमें नहीं करने की तो कोई बात ही नहीं। मुखिया जो कुछ कहेंगे हमारे भले की कहेंगे, वे गाँव के मालिक हैं।

रग्घू, बेनी, टीसुन, पपीहा सब एक स्वर से चिल्ला उठे——'हाँ-हाँ इसमें न मानने की बात ही क्या है?'

सुमेश बैजू से पहले ही से खार खाये बैठा था। वह जानता था कि बैजू जो कुछ अधरम करता है, करता ही है उसके घरमें भी बहुत से दुराचार होते हैं। उसके घर में पेट मड़ुवा है। सुमेश इस मामले में बड़ा ही साफ-पाक आदमी था। खाने-पीने के मामले में वह किसी का भी विरोध कर सकता था इसका एक कारण और था वह यह कि वह बरम बाबा का पुजारी था। अभद्र जगह खाने से बरम बाबा नाराज हो उठते थे और कई बार उसे खून फेंकना पड़ा था। इसलिए वह धीमड़ को फटकारता हुआ बोला——'तो जाओ न खाओ, बड़ी लार टपक रही है तो। हम तो नहीं खायेंगे इसके यहाँ। नहा धोकर यह चोरी चमारी फिर करेगा तो कोई है इसका जिम्मेदार?'

टीसुन, रग्घू, धीमड़, पपीहा सब जैसे एक साथ प्रतिवाद कर उठे कि 'हई देखो रे——अरे मुखिया गाँव के मालिक हैं मुखिया का कहा नहीं मानते है?

सुमेश मुखिया के नाम के आतंक से चुप हो गया मगर नीरू का खून खौल उठा। उसने देखा महेश अपने बाप के बड़प्पन के गर्व से अभिभूत हो उठा है, यह बात और भी उसके दिल में लग गयी। वह तपाक से बोला——मुखिया आपके घर के मालिक होंगे मेरे घर के नहीं। जाइए खाइए आप लोग। आदमी अपने कर्मो से शुद्ध होता है गंगा नहाने से या भागवत सुनने से नहीं। अगर बैजू भाई आज से ही बुरा कर्म करना छोड़ दें तो सबसे पहले हम लोग खायेंगे उनके यहाँ। मगर नहीं वह गंगा नहा कर भोज देकर फिर वही बुरा काम करेंगे। हम नहीं खाते उनके यहाँ।

'अरे चुप रह छोकरे तेरे बाप बैठे हुए हैं और तू बढ़-बढ़कर पद-पुरान कर रहा है।' पपीहा पांड़े चिल्लाये।

नीरू गुस्से मे आ गया——बोला——'जाओ जाओ पपीहा चाचा कथा बाँचकर सीधा माँगते फिरो तब आकर मुझे डाँटना।'

सब लोग जैसे ताव में आ गये, 'अरे इस दो दिन के छोकरे की हिमाकत तो देखो कैसी बढ़ चढ़ कर बातें कर रहा है।' सुमेश पांड़े चुप था जैसे वह बेटे की इस लियाकत पर खुश भी था और नाराज भी। मुखिया इस लड़के की हिम्मत और तेजी से एक बार और अभिभूत हो गया और उसे अपने बेटे की मन्दी फिर अखर गयी। वह तिलमिला कर उठा। लोगों से कहा——'अच्छा अब आप लोग घर जाइए, यह तै रहा कि सब लोग बैजू के घर खाना खायेंगे।

टीसुन ने टिपासा दिया—'सुमेश काका को छोड़ कर।'

सुमेश तो चुप रहा किन्तु नीरू ने जोश में कहा—'हाँ-हाँ।' और उसने टीसुन की ओर हकारत की दृष्टि से देखकर जैसे कहा—'कुत्ते।'

मलिन्द ने उसे बहुत-सी बातें बताई थीं। मलिन्द पढ़ा-लिखा आदमी है। उसी ने नीरू को बहुत कुछ सिखलाया पढ़ाया था और नीरू कुछ अपनी प्रतिभा से और कुछ मलिन्द की सीख से पंचायत में बोल रहा था। किन्तु उसे अफसोस हुआ कि मलिन्द खुद क्यों नहीं आया या अपने बाप को भेजा। उसे लगा कि मलिन्द उससे उस्तादी पढ़ रहा है। उसे भाड़ में झोंक कर खुद तमाशा देख रहा है। मगर उसे संध्या की याद आ गयी। कितनी सरल है—संध्या। संध्या का भाई इतना कपटी हो सकता है? नहीं यह नहीं हो सकता। यह उसका भ्रम है।

'संध्या'! एक मधुर कल्पना। उसका हृदय तरल हो उठा। काश वह मेरी हो पाती। मगर कैसे होगी? हमारी और उसकी परिस्थिति में जमीन-आसमान का अन्तर है। वह पढ़-लिखकर विदुषी हो जायगी और नीरू?

नीरू सोच रहा था कि वह पढ़ तो सकता है, हर क्लास में वह फर्स्ट होता है। मास्टर लोग उसकी तारीफ करते नहीं अघाते। वह घर का काम भी करता है और पढ़ने में सबसे तेज भी है। उसे याद आ गयी महेश की। हूँ शोहदा है पाजी। उसे हँसी आ गयी क्योंकि मास्टर साहब की छड़ी से मार खाते हुए महेश की देह का चित्र उसकी आँखों में आ गया।

लेकिन वह पढ़ेगा कैसे? बहुत करके वह यहाँ से इन्ट्रेंस कर सकता है मगर उसके बाद? वह शहर कैसे जा सकता है? उसके पास पैसा कहाँ है इतना? मगर अब तो लगता है कि मैट्रिक भी नहीं कर पायगा। उसकी आँखें मकान के जले हुए अंशों के काले-काले दागों में फँस गयीं। अन्न भी जल गया, थोड़ा बहुत होगा। चार बीघे खेत में अन्न होगा ही कितना? उसमें से अधिकांश आग के के पेट में गया, शेष...। हे भगवान् कैसे साल कटेगा? खरीफ का क्या भरोसा? बाढ़ तो आयेगी ही।

लीला तेरह साल की हो गयी। विवाह की अवस्था आ गयी। मलिन्द भाई कहते हैं कि शहरों में लड़कियों के विवाह बीस-बाईस की उम्र में होते हैं और बहुत-सी तो क्वाँरी रह जाती हैं। लेकिन गाँव में तो लड़कियाँ जहाँ बारह के पार हुई कि लोग कानाफूसी शुरू कर देते हैं कि लड़की सयानी हो गयी है, विवाह नहीं कर रहे हैं, विवाह नहीं कर रहे हैं। लीला अभी छोटी है तो क्या हुआ, एक साल में पूरी औरत बन जायेगी। लड़कियाँ भी जैसे बढ़ती हैं तो रुकना जानती ही नहीं। कहाँ से आयेगा पैसा उसके लिए?

और केशव? इतना होनहार लड़का भी गरीबी में पिस जायगा। छोटा-सा बच्चा भूख से कैसा अहक-अहक कर रोता है। कागज-कलम के लिए पैसे माँगने पर बाबूजी उसे मार बैठते हैं। वह बड़ा जिद्दी है किसी चीज के लिए अड़

जाता है तो अड़ ही जाता है। लेकिन क्या करे ? स्कूल के मास्टर भी तो लड़कों से ऐसा तुर्रा गाँठते हैं जैसे खुद लखपती हों। किसी चीज की कमी देखी बस मारना शुरू कर देते हैं कमबख्त कहीं के।

नीरू माथा पकड़ कर वहीं लेट गया। उसकी आँखें भर आयीं, सिर फटने लगा। उसकी माँ गाँव में कहीं गयी थी। केशव भी खेलने निकल गया था। लीला बैठ कर आँगन में घरर-घरर बर्तन माँज रही थी। सुमेश अब तक नहीं लौटे थे।

'नीरू !'

नीरू समझ गया कि यह संध्या की आवाज है, मगर वह ज्यों का त्यों लेटा रहा। लीला वैसे ही घरर-घरर बर्तन घिसती रही।

'अरे नीरू सुनते नहीं हो ?'

'सुनता हूँ, यही न कि तुम आयी हो।'

संध्या को लगा जैसे नीरू उसके प्रति कुछ कड़ा पड़ रहा है, किन्तु नीरू की दयनीय हालत सोच कर उसका मन भींग उठा। वह झपट कर उसके सामने गयी। 'अरे यह क्या नीरू ! तुम रो रहे हो ?'

लीला ने बर्तन घिसना छोड़ कर एक क्षण स्तब्ध भाव से नीरू की ओर देखा और फिर बर्तन घिसने लगी।

नीरू अकबका कर उठा। आँसू पोंछता हुआ मुसकराने का प्रयास करता हुआ बोला—'नहीं संध्या रो कहाँ रहा हूँ !'

यह बेबसी की हँसी संध्या के दिल में दर्द की एक लहर मार गयी। संध्या की आँखें भर आयीं—

'अरे यह तो तुम रो रही हो संध्या, मैं कहाँ ?' कहता हुआ नीरू अपनी ठंडी अंगुलियों से संध्या के आँसू पोंछने लगा।

'हिश' कह कर संध्या पीछे हट गयी। नीरू को लीला की उपस्थिति का ध्यान ही नहीं रहा। वह लीला की ओर देख कर लज्जित-सा हो उठा। लीला कुछ मुसकरा उठी।

'तुम्हें भइया ने बुलाया है।' कह कर संध्या ने अपनी गीली आँखें उधर को फेर लीं।

'अच्छा अभी आऊँगा जरा अम्मा आ जायें।' नीरू ने कहा।

लीला बर्तन माँज चुकी थी। वह हाथ धोकर कोले में लकड़ी लेने चली गयी।

'नीरू जानते हो किसने तुम्हारा घर फूँका है ?' संध्या ने पूछा।

'हाँ जानता भी हूँ और नहीं भी।'

'क्या मतलब ?'

'मतलब यह कि अन्दाजा से बता सकता हूँ या तो बैजू ने घर फूँका हो या मुखिया ने, किन्तु देखा तो किसी को नहीं।'

'तुम्हारा अधिक शक बैजू पर है या मुखिया पर।'

'बैजू पर।'

'हूँ।'

'क्या हूँ ?'

'हूँ यही कि जब उस रात मैं तुम्हारे यहाँ से निकल कर जा रही थी तो तुम्हारी और रमेश की गली के बीच से बैजू जैसा आदमी भागा जा रहा था। और तब तक भकभका कर तुम्हारा मकान जल उठा।'

'हूँ।'

'अच्छा मैं चली, तुम आ जाना।' कह कर संध्या जाने लगी।

नीरू का मुँह फिर एक बार उतर गया। आँसू भरे संध्या का जाना देखने लगा। जाते-जाते संध्या ने मुड़कर एक बार देखा तो नीरू के आँसू उसकी आँखों में समा गये। और वह सिर नीचे किए मकान से निकल कर गली में चली गयी। नीरू धम्म से फिर अपनी जगह बैठ गया।

१०

मलिन्द अपने ओसारे की कुर्सी पर खड़ा होकर टूथ ब्रश कर रहा था। २३-२४ साल का सुन्दर स्वस्थ नवजवान मलिन्द एक बादामी रंग की रेशमी तहमद लपेटे हुए था और देह में एक धुली हुई बनियाइन पहने था। उसकी आँखें, नाक, ठोड़ी सभी संध्या से मिलती थीं। अन्तर केवल ललाट में था। इसके प्रशस्त ललाट पर लापरवाही से बिखरे हुए बाल झुक आये थे। वह रह-रह कर जैसे किसी की प्रतीक्षा कर रहा था।

'आओ नीरू भाई!' ब्रश का झागदार थूक उगलते हुए मलिन्द बोला।

नीरू ने हाथ उठाकर नमस्कार किया और खाट पर जाकर बैठ गया। मलिन्द ने जल्दी-जल्दी ब्रश रगड़ते हुए कहा—'जस्ट ए मिनट' यानी अभी आया।' नीरू पर इसकी कोई स्पष्ट प्रतिक्रिया नहीं हुई।

ब्रश करने के बाद मलिन्द नीरू को अपने दीवानखाने की तरह बने एक कमरे में ले गया। नागरिक दीप्त सौंदर्य और देहाती मलिन तेज पास-पास बैठे थे। नीरू चिन्ता की मूर्ति की तरह गुमसुम था।

'तुझे मालूम तो होगा कि किसने तुम्हारा घर फूँका है?'

'कैसे कह सकता हूँ? मगर डर है कि बैजू की ही यह करनी है।'

'ठीक, बिलकुल ठीक, मुझे भी उसी का डर है। मगर भाई नीरू, मैं तुमसे बहुत खुश हूँ तुमने गाँव के कुछ बने-बनाये बड़े आदमियों को ऐसा पानी भरा कि उनको छठी का दूध याद आ गया। साले बदमाश, गुंडों को जमा कर लिया और गाँव के महाराजा बन बैठे।

'मुझमें कौन सी अक्ल है मैं तो अभी अबोध हूँ? आपने जो मुझे सिखाया-पढ़ाया उसी का उपयोग मैंने निडर होकर किया।'

'भाई, इतनी निडरता भी बड़ी चीज है। देखो न गाँव के सारे पढ़े-लिखे छोकरे कैसे अपने और गाँव घर के बेवकूफ दकियानूस बाप दादों के आतंक की छाया में डोलते फिरते रहते हैं। मगर तुमने उस दिन बड़ों-बड़ों के दाँत खट्टे कर दिए। वे लोग भी समझेंगे कि गाँव में कोई शेर बालक है।'

'आप तो मुझे आसमान पर चढ़ा रहे हैं।'

'नहीं बिलकुल नहीं, मैं सच कह रहा हूँ। मैं तुम्हें इसीलिए बहुत स्नेह करता हूँ कि तुममें प्रतिभा है, लगन है, निर्भीकता है, और सबसे बड़ी बात सच्चरित्रता है।' कह कर मलिन्द नीरू की पीठ थपकाने लगा।

फिर बोला—'तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है नीरू भाई । मुझसे जहाँ तक होगा, तुम्हारे लिए करूँगा ।

नीरू अपनी तारीफ से झेंप रहा था । उसके मन में एक प्रश्न कई दिनों से रेंग रहा था कभी उग्र और कभी धीमे रूप से । मलिन्द से पूछने का हौसला लेकर आया था परन्तु तारीफ के प्रवाह में वह प्रश्न हाथ से छूटा जा रहा था और नीरू उसे पकड़ रखने की कोशिश कर रहा था । आखिर बहुत देर तक सोचने के बाद नीरू ने उस प्रश्न को अत्यन्त मुलायम से मुलायम बनाकर पूछा—'भाई साहब, आप उस दिन कहाँ चले गये थे ? आप मेरे साथ रहे होते तो मुझे कितना बल मिलता ।'

मलिन्द समझ गया कि नीरू के हृदय में कहीं सन्देह उग आया है कि मैं उसे आग में झोंक कर दूर हो गया हूँ । इसलिए उसने अत्यन्त बारीकी से काम लिया । और उसने अपनी अनुपस्थिति के दो-तीन कारण दिए और उसे जैसे खुद अपने तर्कों पर अविश्वास था और एक को अशक्त समझ कर दूसरा तर्क पेश करने लगा । बोला—'भाई मैं इस मुखिया नाम के जन्तु से बात नहीं करना चाहता । तुम तो जानते हो कि शुरू से ही ये लोग हमारे दुश्मन रहे हैं, इतना मर-मुकदमा किया, जायदाद जब उनके हाथ से छूट कर हम लोगों के हाथ में आ गयी तो और भी खार खा बैठे । मैं ऐसे लोगों से डरता नहीं हूँ घृणा करता हूँ । इसलिए इनसे बहस भी नहीं करना चाहता । मूर्खों से बहस कौन करे ? अब भला तुम्हीं बताओ कि मैं इस वर्ष राजनीति से एम० ए० कर लूँगा । दुनियाँ भर के कायदे कानून, रीति रिवाज की जानकारी कर लूँगा और कर लिया है । और ये गाँव की चारदीवारी में बन्द रहने वाले बकरे हमसे कानून और सभ्यता की बहस करेंगे, ये गीदड़ मुझे उपदेश देंगे, क्योंकि ये बाबा हैं, चाचा हैं और जाने क्या-क्या हैं साले . . .

और हाँ दूसरी बात यह हो गयी कि जिस दिन बैजू के यहाँ भोज था उसी दिन मेरे एक मित्र के यहाँ तिलक पड़ गया । मुझे जाना ही पड़ा । यदि मैं उस दिन होता तो आज्ञा माँगने के लिए आये हुए बैजू को ऐसा डाँटता की उसकी ब्राई गुम हो जाती । पिताजी भी रिश्तेदारी में चले गये थे । मगर खैर देखा जायगा ।'

संध्या दो गिलासों में चाय लेकर आयी । 'लो भाई नीरू पियो' मलिन्द न कहा ।

'मुझे चाय पीने की आदत नहीं है, मुझे नहीं अच्छी लगेगी ।' नीरू हाथ जोड़ता हुआ बोला ।

'अरे पियो यार, तुम भी किस जमाने की बात रहे हो । तुम्हारा नाइन्थ था इस साल न । फिर तो शहर जाओगे कालेज में तो चाय पीनी ही पड़ेगी ।

कालेज का नाम सुनकर नीरू के दिल को एक धक्का लगा। उसकी आँखें उदास हो आयीं। संध्या को भी एक धक्का लगा और वह अपने को संभालती हुई अन्दर चली गई।

नीरू के मन में भावी चिन्ताओं की छायाएँ फिर त्वरित गति से उड़ने लगीं।

'अरे पियो भाई, तुम तो अभी से फिलासफर हो रहे हो, रह-रह कर डूब जाते हो अपने में।'

मगर नीरू के चेहरे पर प्रसन्नता नहीं आयी। वह सोच रहा था कि जैसे जो मूल प्रश्न है उसका कोई समाधान ही नहीं दीख रहा है यहाँ। फिर भी वह मलिन्द के साथ-साथ ऊपर-ऊपर से बह रहा है।

नीरू ने साहस से पूछा—'भाई साहब बैजू ने घर फूंक दिया, मुखिया खार खाये बैठे हैं—इनसे बदला लेने का क्या उपाय है ?'

'घबड़ाने से कोई लाभ नहीं होगा। मैं खुद ही सोच रहा हूँ इस विषय पर। एक बार तो सोचता हूँ कि इस बैजू नाम के गुण्डे को पकड़कर पीट दूँ और इस मुखिया को भी, किन्तु उससे अपनी ही बदनामी होगी। लोग कहेंगे कि इतना पढ़-लिख कर फौजदारी करते चलते हैं। और इन नीचों के मुँह लगना भी तो ठीक नहीं है।' कह कर मलिन्द कुछ सोचने का अभिनय करने लगा।

'अच्छा, हमारी राय है कि गाँव के सारे नवयुवकों को इकट्ठा किया जाय और नवयुवक संघ बनाया जाय। वह नवयुवक संघ पुराने लोगों के अत्याचारों का मुकाबला करे। चोर-चाइयों से गाँव की रक्षा करे। साथ-साथ सुबह-शाम बागीचे में ड्रिल करे और गाँव को अच्छे रास्ते पर लाये। मैं सोचता हूँ कि एक छोटा-सा वाचनालय गाँव में स्थापित कर दूँ जिसमें सामूहिक चन्दे से एक अखबार भी मँगाया जाय। मैं पार्टी से कुछ पुस्तकें भी लाऊँगा और कभी-कभी भाषण-वोषण देने के लिए किसी नेता को भी पकड़ लाऊँगा। कहो क्या ख्याल है नीरू ?' मलिन्द को जैसे अपनी सूझ पर अभिमान हुआ।

नीरू दबे हुए मन से बोला—कर देखिए, गाँव के छोकरे आप से छिपे थोड़े न हैं। सब अपने घर वालों के सामने भीगी बिल्ली बन जायेंगे।

'हाँ, ठीक कहते हो। फिर भी देखा जायगा कोई न कोई उपाय तो करना ही होगा, इन गुण्डों के दमन के लिए। अच्छा घबड़ाओ मत नीरू, मैं तुम्हारे साथ हूं।'

नीरू को वहाँ बैठना अब भार मालूम पड़ रहा था। असमंजस से बोला—'अच्छा चलूँ अब।'

'अरे बैठो न क्या जल्दी है ?'

नीरू थोड़ा सकपकाया, फिर थोड़ा झिझकता हुआ बोला—'नहीं चलें। माँ ने जल्दी बुलाया था।'

'अच्छा जाओ फिर मिलना।' कहते हुए मलिन्द चारपाई पर पसर गया। नीरू बाहर निकला तो दरवाजे पर दो मासूम आँखें उसके लिए खड़ी थीं।

११

मुखिया सोच रहे थे कि बैजू अब अपने हाथ में आ गया। कितनी सफाई से सारे काम हो गये। साँप भी मारा गया और लाठी भी नहीं टूटी। मगर साँप अभी मरा कहाँ? वह तो आहत भर हो गया है, वह फिर फन उठायेगा। मुखिया रह-रह कर नीरू से आतंकित हो उठते थे। वह छोकरा कितना तेज है और कितना निडर। नीरू का भविष्य उनके सामने चमक उठता। बड़ा आदमी होगा यह छोकरा। और महेश? मुखिया महेश की बुद्धि-मन्दता और लाखैरा चरित्र से नाउम्मीद हो उठते। वह मन ही मन भूसी के समान ईर्ष्या से सुलगते रहते, वह सोचते, कि जब तक मैं हूँ, तब तक तो कोई डर नहीं है किन्तु मेरे न रहने पर यह छोकरा अपनी सारी जायदाद छीन लेगा। और रमेश भी तेज लड़का है उसी का साथी। उसका भी भविष्य उज्ज्वल है। उसने भी अपने खेत वापस कर लिए तो? तो बचेगा क्या अपने पास? महेश से उम्मीद नहीं है कि वह कुछ अर्जित कर पायगा। यह सोचते-सोचते मुखिया की निगाह दौड़ जाती मलिन्द पर। मलिन्द एम० ए० कर रहा है, वह नीरू का मददगार है। वह और भी जहर उसके मन में उड़ेलता है। इतनी लड़ाई लड़ी किन्तु जीत उन्हीं सबों की हुई। ये बदमाश टूट पड़े नहीं तो सुदामा काका की सारी जायदाद मेरी होती और तब मैं कितना बड़ा जमीदार होता। उसी जमीन को लेकर ये सब कितने बड़े आदमी हो गए। यह एम० ए० की पढ़ाई उसी जमीन में से उग रही है। और यह एम० ए० की पढ़ाई मुखिया की आँखों में बर्छे के समान धंस जाती।

अच्छा देखूँगा इन सबों को। मेरे पास बहुत ताकतें हैं। और अब तो बैजू को भी एहसान से लाद दिया है वह मेरा प्रबल शस्त्र है। गाँव के सभी लोग तो मेरे यहाँ कचहरी करते हैं। मगर उसी समय मुखिया की आँखों में एक बात कसक जाती कि कोई पढ़ा-लिखा आदमी मेरे पास बैठने नहीं आता। काफी बड़े-बड़े लोग मलिन्द के पास आते हैं, नेता आते हैं, लड़के आते हैं। और यह निरुआ भी पता नहीं कहाँ-कहाँ से पढ़े-लिखे आदमियों को खींच लाता है और मेरा यह महेश? इसके पास तो गाँव के दो चार हुरहुंडे छोकरों के अलावा कोई आता ही नहीं। इसीलिए मुखिया के मन में पढ़ेलिखे लड़कों के प्रति एक प्रकार की बेबस ईर्ष्या सुलगती रहती। और अपने साथियों के बीच बैठ कर वह प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से शिक्षित समुदाय के दोष निकाल कर गालियाँ दिया करता।

वह सोच रहा था कि वह छोकरा कैसी जोरदार बहस कर रहा था उस दिन ? ठीक तो कह रहा था कि बैजू खाने-पीने से शुद्ध नहीं होगा अपने कार्यों से शुद्ध होगा। मैंने लोगों को आश्वासन दिया है कि वह अब पाप नहीं करेगा। मगर वह मानेगा कब ? और वह मान ही जाय तो मेरा काम कैसे चले ? मगर वह पकड़ जायेगा तो ये पढ़े-लिखे छोकरे मुझसे सवाल करेंगे कि अब कहो तुम्हारा बैजू तो बड़ा पवित्र निकला। मगर वह पकड़ा ही कब जायेगा और आज तक उसे पकड़ा ही किसने ! सभी लोग केवल शक करते हैं। मगर बिंदिया के साथ उसका फिर फिर पकड़ जाना आसान है। इस चमार की छोकरी को किसी तरह हटाना ही पड़ेगा। मगर कैसे हटाया जाय ? ये तमाम बातें सोचता-सोचता मुखिया शाम के झुटपुटे में खेत से लौट रहा था। गाँव के पूरबवाले बगीचे में जब आया, तो देखा बिंदिया कहीं से आ रही है। मुखिया ने उसे पुकारा—'अरी ओ बिंदिया सुन !'

बिंदिया मुखिया के पास आ गयी। 'क्या है मालिक ?' कह कर वह खड़ी हो गयी।'

'अरी दुष्ट छोकरी बैजू को क्यों सता रही है ! अपने भी जा रही है और उसको भी ले जा रही है।'

बिंदिया चुपचाप खड़ी रही। उसके ऊपर इसकी कुछ भी प्रतिक्रिया नहीं पड़ी। मुखिया ने जरा तेज होकर पूछा—'मैं पूछता हूँ कि क्यों नहीं उसका साथ छोड़ देती है ? सारे गाँव की इज्जत मिट्टी में मिला रही है। इतना बड़ा जुल्म करके तू फूली-फूली फिरती है।'

बिंदिया फिर चुप रही और जाने के लिए मुड़ी।

मुखिया ने इसे अपना अपमान समझा। क्रोध में बोले—'क्यों री चमार की छोकरी, मैं कुछ पूछ रहा हूँ। तुझे जवाब देना होगा। कबूल कर कि तू बैजू के साथ कभी नहीं जायेगी नहीं तो तुझे उजाड़ दूँगा।'

बिंदिया झटके से मुखिया की ओर मुड़ी उसकी बड़ी टिकुली दमक उठी। मुसकरा कर बोली—'अच्छा मालिक, अब मैं बैजू बाबा के साथ नहीं जाऊँगी आपके यहाँ आऊँगी।'

मुखिया क्रोध से पागल हो गया—'बदतमीज छोकरी मारे जूतों के तेरी खाल खींच लूँगा। मेरे यहाँ क्या करने आयेगी...!' और एक भद्दी-सी गाली उगल दी। 'तेरा सारा रंडीपना निकालता हूँ। कल ही उजड़वाया न तो मेरा नाम नहीं।'

बिंदिया घुटी हुई लड़की थी। हताश नहीं हुई बोली—'इसमें नाराज होने की बात नहीं मुखिया बाबू ! एक दिन आपके लाड़ले महेश ने मेरे पैरों पर अपना सिर रख कर कहा था कि बिन्दो रानी मैं तुम पर अपनी जान न्योछावर करता हूँ,

कभी-कभी मेरी गली आया करो, और न जाने क्या क्या अण्ट-सण्ट बकते रहे। कहते रहे कि बैजू में क्या धरा है ! लुच्चा है, चोर है, बदमाश है, और मुझे देखो मैं पढ़ा-लिखा हूँ, पैसे वाला हूँ, सुन्दर जवान हूँ, तुम्हें पैसे भी दिया करूँगा। तभी तो कह रही हूँ कि बैजू को छोड़ कर आपके लड़के के पास चली आऊँगी।'

मुखिया बड़ी भद्दी-भद्दी गालियाँ बकने लगा और धमकाता हुआ बोला—'नीच, हरामी की पिल्ली, तूने सारे गाँव को बदनाम करने का बीड़ा उठा लिया है। मेरे लड़के को बदनाम करते समय तेरी जबान नहीं कट जाती। अच्छा देखता हूँ लौंड़िया तेरी हिमाकत ! कल तुझे उजाड़ न फेंका तो कहना।'

बिंदिया भयभीत तो न हुई मगर उसमें कुछ रोष आ गया—'अच्छा देखा जायगा,' कह कर वह झमक कर अपने रास्ते चली गयी।

ठीक उसी समय मुजहन से किसी का ठहाका फूट पड़ा। ऐसा जान पड़ा कि कोई बहुत देर से अपने ठहाके को दबाने की कोशिश कर रहा था और आखिर में न दबा सका।

मुखिया चौंका, मगर कोई दिखाई नहीं पड़ा, वह अन्धकार को घूरता हुआ आगे बढ़ने लगा।

१२

मुखिया ने दूसरे दिन दो चौकीदारों को बुला लिया और रग्घू, बेनी, टीसुन, धीमड़, पपीहा आदि को अपने साथ ले लिया। बैजू को भी बुलाया मगर बैजू घर पर नहीं था। बिंदिया द्वारा उसे आनेवाली परिस्थिति का ज्ञान पहले ही हो गया था और बिंदिया को कुछ समझा-पढ़ा कर घर से कहीं चला गया था।

गाँव भर को मालूम हो गया कि मुखिया बिंदिया को उजाड़ने जा रहे हैं। गाँव भर के बूढ़े जवान बिंदिया की झोंपड़ी के पास इकट्ठा होने लगे। दिन के ग्यारह बजे थे। गरम लू हहरा कर चल रही थी। लोग अभी-अभी अपने खेतों पर से लौटे थे। घुटनों तक धूल से सने हुए कुछ लोग कुदाली कन्धे पर रखे सीधे यहीं चले आये थे। चौकीदारों ने बिंदिया की झोंपड़ी को लाठी से पीट कर कहा—कहा है बिंदिया हरजाई, निकल घर में से।'

बिंदिया अभी काम पर से नहीं लौटी थी या कहीं गयी थी। उस की बूढ़ी मां घर में कुछ पका रही थी। शोरगुल सुन कर बाहर आयी तो भीड़ देख कर सन्न रह गयी। बोली—'क्या है सरकार! बिंदिया तो अभी नहीं है घर पर।'

मुखिया गरजे—'दारोगा साहब का हुकुम है कि गाँव को बदनाम करनेवाली इस हरजाई को गाँव से बाहर कर दिया जाय। बैजनाथ पांड़े के यहाँ हम लोगों ने भोज खा कर पवित्र कर दिया है फिर यह लौड़ियाँ अपनी कारगुजारी न दिखाने लगे, इसीलिए तुम लोगों को मैं अपनी जमीन में से उजाड़ता हूँ। जा कर किसी और गाँव में रहो।'

बुढ़िया गिड़गिड़ाई—'मालिक आप लोग माई-बाप हैं, आपमें हमारा गुजर-बसर होता है..., हम और कहाँ जा सकते हैं?'

चौकीदार गरजे—'हम कुछ नहीं सुनते। दारोगा जी का आडर है। तुम लोगों को गाँव छोड़ना ही पड़ेगा।'

'मगर हम जायँ कहाँ?'

'जहन्नुम में जाओ!' मुखिया गरजा।

टीसुन ने टिपासा कसा—'अरे तेरे पास तो वह पुड़िया है, जिसे लेकर कहीं रह सकती है।' फिर एक ठहाका मच गया।

चौकीदारों ने लाठी से झोंपड़ी पीटनी शुरू की। बुढ़िया हाय-हाय करने लगी। सबके पैर पड़कने लगी परन्तु कोई भी टस से मस नहीं हुआ, जैसे सब जड़ हो गये हों।

उसी समय बिदिया अपने छोटे भाई के साथ आती दीख पड़ी। लोग सजग हो गये। बिंदिया ने दूर से ही भीड़ देखकर वस्तु-स्थिति का ज्ञान कर लिया। घर के पास आ कर देखा उसने कि चौकीदार उसकी झोंपड़ी लाठी से पीट रहे हैं। बिंदिया के आते ही सबके चेहरों पर एक मुसकान दौड़ गयी। 'आ गयी फुलझरी रानी!' टीसुन ने फिर टिपासा जड़ा। फिर मुसकान ठहाकों में टूट पड़ी।

नीरू ने सुना तो वह भी दौड़ा हुआ आया, रमेश भी भागा-भागा आ गया। मलिन्द भी चहलकदमी करता हुआ पहुँच गया। महेश, पपीहा पांड़े का लड़का छेदी, रग्घू बाबा का नाती धिरेन्दर, बेनी काका का बेटा छबीले तथा और भी नौजवान छोकरे वहाँ इकट्ठे हो गये थे।

बिदिया चौकीदारों के पास आँधी की तरह झपट कर गयी और गरज कर बोली—'यह क्या करते हो? गरीब दुखिया की झोंपड़ी उजाड़ने में भी तुम लोग सारी बहादुरी दिखा रहे हो।'

'अरे वाह री गरीब दुखिया, आग की तरह बाभनों की इज्जत चबा रही हो न! बड़ी गरीब बनी हो!' चौकीदार ऐंठ कर बोला।

'चुप रह शैतान की छोकरी!' मुखिया डपटा।

'मुखिया बाबा और गाँव के मालिक लोगों मेरे साथ यह बेइंसाफी का सलूक हो रहा है। मैंने किसी का क्या बिगाड़ा है?'

'बिगाड़ा ही नहीं है एक बाभन को चमार बना रही है! और बेशरम पूछती है कि क्या बिगाड़ा है। चौकीदारो! उजाड़ो इसकी झोपड़ी—ताकते क्या हो?'

सब लोग हा-हा ही-ही करने लगे। और चौकीदार जोर-जोर से लाठी पीटने लगे। चमरौटी के नर-नारी इकट्ठा हो गये थे। कुछ तो ईर्ष्यावश खुश थे और कुछ वर्गीय पीड़ा से भीतर ही भीतर छटपटा रहे थे। कुछ चमार छोकरे सोचते थे—'चलो वह साली हम लोगों को अंगूठा दिखा कर एक बाभन की गोद बसा ले रही है अच्छा है सजा पा रही है। परन्तु कुछ युवक इसे अपनी पूरी जाति का अपमान समझ कर मजबूरी से अपना गुस्सा पिये जा रहे थे।

बिंदिया ने अपने को बहुत जब्त किया किन्तु उसका आहत अभिमान भभक पड़ा—'आप लोग बड़े इज्जतदार बने हैं बाबा लोगो! और मुझी पर बाभन की इज्जत लेने का इलजाम लगा रहे हैं किन्तु अपने इन छोकरों से क्यों नहीं पूछते जो मेरे कारण चमार बनने पर उतारू हो गये हैं। बिंदिया क्रोध में हर एक छोकरे के आगे जा जा कर गुस्से में तथ्य उगलने लगी—'यह देखिये महेश बाबू हैं मुखिया,

बाबा को इन पर बड़ा नाज है। ये अपना सिर मेरे पैरों पर रगड़ कर कितनी बार मेरे प्रेम की भीख माँग चुके हैं, मैंने इन्हें कोरा जवाब दिया तो इन्होंने जान देने की धमकी दी। ये हैं धिरेन्दर बाबू, रग्घू बाबा के नाती। इनसे पूछिए कि जब मुझे देखते हैं तो कंकड़ी फेंकते हैं और बड़े फूहड़ तरीके से गाते हैं—'गोरी तोरे करनवा जइबे जेहलखनवाँ न।' इतना ही क्यों अभी इसी चैत में इनका डांठ ढो रही थी रात हो गयी थी ये बोझ उठा रहे थे। बोझा उठाते समय बोझा पीछे ढकेल कर मेरी देंह पर आ गये मैंने ऐसा लात मारा कि इन्हें भी याद आ गया।

'चुप रंडी कहीं की। गाँव के सारे छोकरों को बदनाम करती फिरती है।' बेनी काका गरजे और उनका छोकरा छबीले सरकने की ताक में था कि बिंदिया उसके सामने पहुँच गयी—'भागते कहाँ हो लाला अपनी भी करनी सुनते जाओ—'ये भी मेरे पीछे कई साल से दीवाने हैं। मिलते हैं तो आँखें मारते हैं फूहड़पन से मुसकराते हैं। एक बार मैं इसी जाड़े में कहीं से आ रही थी तो ये रहरी में ढूका लगे हुए थे और अचक्के में पीछे से आकर पकड़ लिया। वह तो उधर से रमेश बाबू पढ़ कर आ रहे थे तो ये छोड़ कर भागे।

'झू...झू...झूठ बोलती है चमाइन।' छबीले हकला कर बोला।

'हाँ मैं झूठ बोलती हूँ और रमेश बाबू भी झूठ कहेंगे। क्यों रमेश बाबू कहिए न सच-सच।' बिंदिया हाँफ रही थी।

रमेश धर्म-संकट में पड़ गया। यह कमजोर लड़का सत्य और अपने प्राण-भय के बीच में पड़ गया। तब तक नीरू डपटा—'हाँ हाँ कहता क्यों नहीं है रमेश, किस साले का डर पड़ा हुआ है।' नीरू ने यह लक्षित कर लिया था कि महेश और छबीले दोनों घूरती आँखों से रमेश को वर्जित कर रहे हैं।

छबीले ने फिर हकलाते हुए कहा—क...क...कहेगा क...क्या ब...बात झूठी है।' रमेश अकस्मात् रोष में आ गया—'झूठ नहीं ठेंगा है। ठीक तो कह रही है बिंदिया।'

छबीले गरजा—'अच्छा देखूँगा तुझे।' बेनी काका ने छबीले को जोर का एक झापड़ जड़ते हुए कहा—जा रे साला भाग यही सब करता है और लड़ता भी है झूठ-मूठ में।

छबीले रुआसा हो कर रमेश को घूरता चला गया।

बिंदिया झपटी गबई की ओर। लेकिन गबई पहले ही चुपचाप सरक गया था। 'कहाँ गये गबई बाबू? बैकुण्ठ बाबा के बेटे?' 'अरे अभी तो यहीं थे भाग गये क्या?' नीरू ने मुसकरा कर कहा। वह मुसकराहट कितनों को गड़ गयी।

'भग नहीं जायेंगे तो करेंगे क्या।' बिंदिया तड़पी। 'वे मेले में मुझे चवन्नी दिखा रहे थे और कह रहे थे कि फलां रात को उस बगीचे में आना।'

'और छेदी बाबू कहाँ हैं पपीहा बाबा के लाड़ले ?'—बिंदिया आँखों से ढूढ़ती हुई बोली।

'भाग गया, भाग गया वह भी भाग गया!' कुछ छोटे लड़के चिल्लाए। उन्हें बड़ा मजा आ रहा था।

'एक दिन मैं उनके यहाँ मिट्टी ढो रही थी तो मुझे गरी छोहाड़ा दिखा रहे थे और कहते थे कि मैं तुझे रोज दिया करूँगा, मगर जरा मुझ पर नजर रखा करो बिंदिया रानी।'

सब लोग हँसने लगे। बिंदिया रुकने का नाम न लेती थी, बोली—'मैंने उनसे कहा कि पपीहा बाबा कई घर घूम कर तो चार छोहाड़ा जुटाते होंगे तुम काहे को उनकी कमाई ऐसे बरबाद करते हो?'

मुखिया मन ही मन क्रोध से पागल हुआ जा रहा था। नीरू, मलिन्द, रमेश और-और अनेक लोगों तथा चमारों के कहकहे उस पर वज्र की तरह टूट रहे थे। चौकीदार झोंपड़ी पीटना छोड़ कर तमाशा देख रहे थे।

टीसुन टिपासे पर टिपासा जड़ रहा था। परन्तु उसके टिपासे अब कुंठित हो रहे थे। मलिन्द ने उसे जोर से डांटा दिया—'क्या बक-बक किये हो। कोई तुम्हारी सुनता भी है?'

अब टीसुन कुछ गंभीर हो गया और टिपासे की जगह क्रोध उगलने लगा। 'आप लोगों को क्या? आप लोग तो पढ़े-लिखे हैं, गाँव की इज्जत-बेइज्जत का कुछ ख्याल थोड़े ही है। नाक तो कटती है हम गाँववालों की न?'

मलिन्द डाँट कर कुछ कहने ही वाला था कि बिंदिया बरस पड़ी—'अच्छा बड़े इज्जतदार बने हैं टीसुन बाबा। लाज नहीं आती है, इज्जत का नाम लेते हुए। याद है जब मैं पिछले साल पूस में चउपारन गयी थी, तो आप सोनबरसा गाँव में हाथ में करताल ले कर' भजि ल रामचन्द्र कू नाँव सिरि गंगा जी राखें मान' गाते-गाते घर-घर घूम रहे थे। और गाँव के छोकरे गालियाँ दे देकर आप को खदेड़ रहे थे और आप हें-हें करके आगे बढ़ जाते थे।'

'झूठ है हरजाई कहीं की झूठ बोलती है।' लेकिन उसका गुस्सा लोगों के कहकहे में समा गया।

'झूठ है मैं वहीं चनरभान बाबा के यहाँ काम कर रही थी आपने मुझे नहीं देखा और मैंने आप की इज्जत का ख्याल करके आप से मिलना चाहा भी नहीं।'

बहुत देर से पपीहा पांड़े मौलिक तर्क देना चाहते थे मौका नहीं पा रहे थे। अब बोले—गाँव भर के सारे छोकरों को तो तुमने बदनाम कर दिया झूठ सही। तुम बड़ी पतिबरता बनी हो और गाँव के छोकरे आवारा। मगर बैजू के साथ जो तुम रंडीपना करती हो वह भी झूठ है? क्यों करती हो?

'नहीं यह झूठ नहीं है वह तो करती हूं', अपना मन । बैजू बाबा आप सब लोगों से अच्छे हैं । मैं उनके साथ रहती हूं वे मेरे दुख सुख का ख्याल रखते हैं । हमें कपड़ा-लत्ता देते हैं, खाना-पानी देते हैं । आप लोगों के छोकरे तो भंवरे की तरह रस लेकर फुर्र से उड़ जाने चाहते हैं ।

मुखिया ने क्रोध में उसकी पीठ पर दो लात जमा कर कहा—'चुप रह हरजाई नहीं तो जबान खींच लूंगा । साँप की तरह सटर-सटर जीभ चलाये जा रही है । न लाज है न डर ।'

बिंदिया लात के प्रहार से जमीन पर गिर पड़ी । उसके मुँह में खून आ गया । ललाट पर भी कंकड़ की एक हलकी-हलकी चोट आ गयी थी । वह सिसकने लगी । उसकी बुढ़िया माँ हाय-तोबा करने लगी—'राँड़ से कब से कह रही थी कि चुप हो जा, बड़ आदमियों के मुंह नहीं लगते ।'

मुखिया गुस्से में गालियाँ बक रहा था । उसे पिछली बातें सोच कर फिर क्रोध आ गया और जाकर गिरी हुई बिंदिया की पीठ पर चार-पाँच लात और लगाये । बिंदिया चीख उठी ज़ोर-ज़ोर से । उसकी बुढ़िया माँ मुखिया के पाँवों से लिपट गयी । उसका छोटा भाई बिंदिया की देह से लिपट कर रोने लगा । नीरू का हृदय फटने सा लगा, परन्तु वह मलिन्द का मुंह देख रहा था । मलिन्द जलती आँखों से मुखिया को देख रहा था । परन्तु वह सीधे झगड़ा मोल लेना नहीं चाहता था । कोई कह दे कि तेरे बाप का क्या जाता है, झूठे झगड़ा मोल लेता फिरता है ।

मुखिया ने चौकीदारों से डाँट कर कहा—'ताकते क्या हो ? उजाड़ फेंको इसकी झोपड़ी को ।' चौकीदार जैसे चौंक कर सजग हो गये । और झोंपड़ी को उजाड़ने लगे । पपीहा, टीसुन आदि भी मुखिया के आदेश से झोंपड़ी के पास पहुँच गये ।

बिंदिया तो पड़ी कराहती रही, किंतु उसकी माँ फिर झोपड़ी के पास जाकर झोपड़ी की रक्षा के लिए सबके पैर पकड़ने लगी । थोड़ी देर बाद बिंदिया ने पीड़ा से जाग कर झोपड़ी की ओर देखा तो देखा कि झोपड़ी आधी उजड़ चुकी है । वह धीरे-धीरे उठी और मुखिया के पास गयी, अहकती हुई बोली—'मालिक माफी दी जाय । मैं पागलपन में न जाने क्या-क्या कह गयी ।'

'हट छिनाल कहीं की, तुझे आज गाँव छोड़ना ही पड़ेगा' कहते हुए मुखिया ने उसे फिर एक धक्का दिया । वह फिर ज़मीन पर गिर पड़ी ।

'बिंदिया !' मलिन्द चिल्ला उठा । क्यों इतनी बेइज्जती सहती है ? चल मेरी जमीन में बस, देखूं तो......' उसके मन में आया कि कह दे कि देखूं तो कौन साला तुम्हें गाँव से उजाड़ता है, लेकिन उसने अपने को जब्त कर लिया । फिर भी मुखिया समझ गया कि वह क्या कहना चाहता था । दोनों के आग्नेय नेत्र क्षण

भर के लिए आपस में मिल गए। नीरू दौड़ा हुआ बिंदिया के पास गया। बोला—'अरे उठ-उठ, देख तुझे मलिन्द भइया अपनी जमीन में बसा रहे हैं।'

झोपड़ी उजाड़ने वालों के हाथ वहीं रुक गये। मुखिया क्रोध में गुमसुम खड़ा रहा। नीरू जैसे अपने समस्त क्रोध को पुलक में भो रहा था। मलिन्द शेर की तरह कुछ देर घूरता रहा, फिर झटके से घर की ओर मुड़ा।

टीसुन बोल उठा—'अरे उठ री बिंदिया रानी, अब तो बड़े आदमी का हाथ तेरे पर है।'

मलिन्द ने मुड़ कर जलती आँखों से टीसुन की ओर देखा। टीसुन अपने व्यंग्य की तीक्ष्णता पर मुसकरा रहा था। मलिन्द ने हिकारत से कहा—'नीच दरिद्र भिखमंगा, जूताखोर, कुत्ता!' और फिर घृणा से थूक कर आगे बढ़ गया। नीरू और रमेश भी टीसुन को निगाहों से गाली देते हुए आगे बढ़ गये।

१३

आजादी का आंदोलन जोरों पर था। गांधी, जवाहर के जय-जयकारों से गाँव-गाँव गूंज रहा था। पांड़ेपुरवा गाँव में भी कांग्रेस की यह जय बोलने वालों का एक झुंड था। चमारों ने सुन रखा था कि कांग्रेस भारत को आजाद करेगी। गरीबों और खेतहीनों को खेत देगी। चमारों को बड़े-बड़े ओहदे देगी। हम लोगों को भी बड़ी जाति वालों के बराबर हक मिलेगा। इसलिए उनमें बड़ा जोश था। फेंकू हरिजन हरिजनों के नेता थे। ये गाँव-गाँव तिरंगा झंडा लेकर घूमा करते थे। इनके साथ दिनई और भगत हरिजन भी थे। बाभन टोली के नेता थे गनपति पांड़े। गनपति पांड़े लम्बे और काले से अधेड़ उम्र के आदमी थे। मोटे खादी का कुरता-धोती और टोपी पहन कर कांग्रेसी जलसों में जब जाते तो इनके हाथ म उठा हुआ तिरंगा झंडा दूर से ही दिखाई पड़ता था। इनके मोटे-मोटे पैरो में बरहों मास बेवाई फटी रहती। मलिन्द गनपति पांड़े को खूब प्रोत्साहित करता रहता। शहर से आता तो कभी-कभी उनके लिए हिन्दी का अखबार लाया करता। और उस एकही अखबार को गनपति महीना भर लिए घूमते। और अपनी छोटी-छोटी आँख पर डोरे के फ्रेम वाला चश्मा लगा कर और लिलार सिकोड़-सिकोड़ कर सबको सुनाया करते। गनपति पांड़े बहुज्ञ आदमी थे—हिन्दी जानते थे, उर्दू जानते थे और गाँव के छाकरों को चकित करने के लिए अपने बड़े हाथ से धूल में बंगला और अंग्रेजी के भी अक्षर घसीट देते थे। और अपनी विजय पर जब खिलखिला कर हंसते तो उनके आगे के टूटे हुए दाँत उनकी हंसी में बड़ा भोलापन भर देते। नेता गनपति सत्यनारायण की कथा बाँचने के लिए अपने और दूसरे गाँवों की पगडंडियों पर गर्मी की दोपहरियों में दौड़ते हुए मिलते। नेता जी पत्रा भी देखते, कुंडली भी भाखते, छान-छा लेते, खपड़ा पाथ लेते, खांची बना लेते, घर छा लेते और खेत-खलिहान के सारे कार्य तो कर ही लेते। सार्वजनिक कार्यों तथा शादी-बरातों में अपने सिर पर बड़ी-बड़ी गठरी भी ढोते, ज़रूरते नागहानी गाने भी गा लेते और ढोलक पर थाप भी दे लेते। इसलिए नेता गनपति देहाती नेता होने के सारे गुण रखते थे।

इन दिनों गांधी जवाहर का नाम बड़े जोरों पर था। ऐसा मालूम पड़ता था कि आजादी अब मिली तब मिली। इसीलिए नेता गनपति अपने साथ बहुत से

जवान और अधेड़ आदमियों को लेकर शाम को खाने-पीने के बाद गाँव का चक्कर काटते हुए नारे लगाते—'भारत माता की जय, गांधी बाबा की जय, जवाहर लाल नेहरू की जय।' और फिर जय जयकार का नाद संगीत में बदल जाता। नेता जी के पीछे चलने वाले लोग जोर से गाते—'गांधी की जय हो, जवाहर की जय हो, अरे भाई नेता गनेपो की जय जय जय हो।' लोगों ने छन्द में बैठाने के लिए गनपति का गनेपो कर लिया था। अपने नाम के जय-जयकार से गनपति फिर बच्चों की तरह खिलखिला पड़ता। फेंकू, दिनई और भगत हरिजन भी अपने झुण्ड के साथ जलूस में शामिल होते और हँस-हँस कर नारे लगाते। इस जलूस में शामिल होने वाले कुछ और प्रमुख व्यक्ति थे—निरबल तेली, भीखन गड़ेरी और दधिबल यादव। ये लोग अपने-अपने वर्ग के प्रतिनिधि थे। गाँव की जनता इन्हें सुराजी कहती थी।

मुखिया स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहता था, किन्तु भीतर ही भीतर इन सुराजियों से आतंकित था। उसे डर था कि सुराजियों का आन्दोलन लोगों के धरम-करम और जमीन जायदाद का जो नाश करेगा सो करेगा ही; उसकी शान को भी कम कर देगा। चमार, तेली, अहिर, गड़ेरी अभी से मन-बढ़ हुए जा रहे हैं, सुराज-मिलने पर तो पता नहीं क्या कर देंगे। उसे तो सब दूध की मक्खी की तरह निकाल कर फेंक देंगे। क्योंकि सब जानते हैं कि मैं सरकारी आदमी हूँ। 'सरकारी आदमी' के ध्यान से उसका हृदय एक क्षण गर्व से फूल जाता; परन्तु दूसरे ही क्षण सोचता कि गाँव में कोई उपद्रव होने से थानेदार मेरा ही गला पकड़ेगा। ये सब मेरे ही दरवाजे पर सभा करना चाहते हैं और ऐसा होने से मैं सरकार का कोप-भाजन हो जाऊँगा। मना करने पर मैं गाँव में नक्कू बन जाऊँगा। इसलिए सुराज मिलने पर मुझे कुछ नहीं मिलेगा। मगर सुराज मिलेगी ही नहीं। अंगरेज सरकार के पास बड़ी-बड़ी ताकते हैं। तोप है, बम है, इतनी बड़ी फौज है और उसके पास दिमाग है। ये देसी सुराजी क्या अंगरेज बहादुर के दिमाग को पा सकते हैं? वह शाम को अपने यहाँ बैठा हुआ सोच रहा था कि गनपति के पीछे पीछे गाँव वालों का झुंड नारे लगाता हुआ आ पहुँचा।

गनपति ने कहा—'मुखिया भाई, आओ मिल जाओ जलूस में, गाँव का एक चक्कर काट आओ।'

मुखिया मुसकरा उठे—'अरे भाई गनपति! किस चक्कर में डाल रहे हो, मैं ऐसे ही ठीक हूँ।'

'ऐसे ही क्या ठीक हो? देखो, गाँव के सभी लोग तो हैं, तुम गाँव के मुखिया हो। तुम्हारे बिना जलूस शोभा नहीं देता।'

'क्यों नहीं देता' किसी ने भीड़ में से धीरे से कहा।

मुखिया का हँसता हुआ चेहरा बुझ गया और भुन-भुन कर बोला—'मेरे पास इतना फालतू टाइम नहीं है कि इस बेवकूफी के काम में बरबाद करूँ?'

'राम-राम ऐसा नहीं कहते मुखिया भाई, गांधी जी बेवकूफ हैं जो अपनी जिनगी इसी में बिता रहे हैं। गांधी जी देवता हैं उन्हें भला-बुरा कहने से पाप लगेगा।'

'गांधी जी ने तो आँधी मचा रखी है। सारा धरम-करम मिटाने पर तुले हुए हैं। चमार-बाभन कहीं एक हो सकते हैं? और अंगरेज बहादुर से लड़ना आसान है क्या? अंगरेजों के पास इतनी ताकत और दिमाग है कि वे कई गांधी जी को जिनगी भर नचा सकते हैं।' कह कर मुखिया गनपति को घूरने लगे।

सुराजियों को यह बात बड़ी बुरी लगी। चमारों और अन्य छोटी जातियों को गांधी जी के प्रति बड़ी श्रद्धा थी—लगा कि उनके दिल में किसी ने लात मारा है किन्तु भय से वे चुप रहे। नेता गनपति झगड़ालू स्वभाव के आदमी नहीं थे। इसलिए उनसे कोई कड़ा जवाब नहीं सूझा। जलूस में बहुत से लोग मुखिया के पिट्ठू थे इसलिए वे हाँ-नहीं के बीच में लटके रहे। नीरू को गुस्सा आ रहा था, किन्तु खून का घूंट पिये जा रहा था।

रघू बाबा भी उस जलूस में शामिल थे। लेकिन उन्हें सुराज-वुराज से कोई मतलब नहीं था। बस जलूस देखा, कुछ हो-हल्ला सुना, किसी ने बुलाया, चले गये। वे मुखिया के दल के आदमी थे; किन्तु सचमुच में वे अपनी झक के दल के आदमी थे। किसी से किसी भी विषय पर विवाद कर सकते थे और खास कर के जब उनके हमजोली बेनी काका किसी पक्ष पर बोलते तो वे दूसरा पक्ष जरूर ग्रहण करते। सो मुखिया की बात सुनकर वे जलूस से निकल आये और मुखिया के पक्ष में बोलने ही वाले थे कि उधर से बेनी काका चिट्टिर-पिट्टिर चिट्टिर-पिट्टर करते और इतमीनान से सुरती मलते हुए आ पहुँचे। और सुरती ठोंकते हुए बोले—'क्या बात है मुखिया भाई, तनि देखिल।'

'कुछ नहीं बेनी भाई, यही झंडा तानि-तानि के लोग घूम रहे हैं, कोई काम न काज।'

'अरे तनि देखिल। ई सब देश के दलिद्दर कर देंगे। फितुही लगा-लगा कर नाचते फिरते हैं, सुराज लेंगे। बाभनों के घर में डोम-चमार बसायेंगे, गांधी माई आन्ही लेके आयी है।'

नीरू अपने को जब्त नहीं कर पा रहा था। गनेपू अब भी हँस रहा था। जैसे वह कह रहा हो—बको बको, जो जी में आये बको। हमारा रास्ता तो अहिंसा का है। हम अपना काम करेंगे और तुम बकोगे।'

नीरू कुछ बोलने ही वाला था कि रघू बाबा बेनी काका की ओर मुखातिब होकर बोल पड़े—"तू जे बा से नगीचे क मुह पा के जवने होला तवने बकि

१. जो है सो नजदीक का मुँह पाकर तुम जो ही आता है वही बक देते हो। दुनिया में है कोई गान्धी जी के जोड़ का? गाँधी जी अवतारी पुरुष हैं। मुरदे को जिला देते हैं। जेल से उड़ जाते हैं। कूएँ में कूदकर पचास कोस की दूरी पर उपराते हैं। गाँधी जी सुराज जरूर लेंगे। तुमने समझा क्या है?

देल। बा केहू दुनियाँ में गान्हीं जी के जोड़ क। गान्हीं जी अवतारी आदमी हवें। मुरदा के जिया देलें। जेल में से उड़ि जालें। कुआँ में कूदि के पचास कोस दूर जा के उतरालें। गान्हीं जी सुराज जरूर लीहें, तू बुझलें का बाट।'

बेनी काका बोले—'तनि देखिलऽ। ई सब बात में टांग अड़ाते हैं जानने सुनने को कुछ भी नहीं। हम दुनिया भर क अखबारी हाल जानते हैं। हम गोरखपुर जाइल करते हैं। गान्हीं जी बनिया हवें, अवतारी आदमी नाहीं। भगवान् बनिया बनि के पैदा होखेंगे राम राम! अंगरेज बहादुर फितुही धारी सुराजिन के भूज न डाले तो कहना। धरम-करम नहट कर रहे हैं ये सुराजी लोग।'

रग्घू बाबा और भी उत्तेजित हो गये। सिर झांट-झांट कर कहने लगे—'बेनी[1] तू कछु नाहीं जानल जे बा से। सुराज मिलि के रही। तुहें चमारे के साथे-खाये के परी। गान्हीं जी अवतारी पुरुख हवें। बनिया कवन बाउर आदमी हवें। बनिया त कहत हव अ जाके ऐही सुमेस्सर बनिया के आगे हाथ फइलावल। उधार मांगल रोवल-गिड़गिड़ाल।'

सुमेस्सर बनिया भी जुलूस में थे। वे बेचारे संकोच से गड़े जा रहे थे। वे कुछ कहने ही वाले थे कि बेनी काका रोष से आँखें लाल-लाल कर गरजे कि 'तनि देखल रग्घू काका, हम तुहार अगराइल छोड़ा देंगे। अपने जाके अपने भाई के साथ इहाँ-उहाँ भीख मांगते फिरते हो, जोतिषी बन कर ठगते हो, सेज्जा लेते हो, और हमको बदनाम करते हो।'

'चुप[2] रह दलिद्दर कहीं के। रोज-रोज हमसे उधार मांगलऽ आ जवन मांगि के ले जाल तवन देबे नाहीं करल आ इल हव बड़ आदमी बने। तुहार माई हमार कर्जा खा के मरि गइल हम चलत हई बिहाने नालिश करब।'

इतना कह कर रग्घू बाबा ने 'चित्त थू' थूक की पिचकारी मारी और मार खाने की नौबत देखकर झटके से उठ खड़े हुए और जलूस के आगे जा कर जोर से चिल्लाये—'गान्हीं बाबा की जै। चलो भाई लोगों, चलो हमन के आपने काम करीं।'

---

१. बेनी! तुम कुछ नहीं जानते हो, सुराज मिल कर रहेगा। तुम्हें चमार के साथ खाना पड़ेगा गांधीजी अवतारी पुरुष हैं। बनिया कोई बुरे व्यक्ति थोड़े न होते हैं। बनिया तो कह रहे हो मगर इसी सुमेस्सर बनिया के आगे हाथ फैलाते हो, रोते हो गिड़गिड़ाते हो।

२. चुप दरिद्र कहीं का। रोज-रोज हमसे उधार माँगते हो और जो माँग-कर ले जाते हो वह देते ही नहीं हो। आये हो बड़ आदमी बनने। तुम्हारी माँ मेरा कर्ज खाकर मर गयी। मैं चलता हूँ कल ही नालिश करने।

और लोग हँसते हुए नारे लगाते हुए रघ्घू बाबा के पीछे-पीछे चलने लगे। 'गान्हीं बाबा की जै। जवाहर लाल की जै। भारत माता की जै।' और फिर नेता गनेपू अपने नक्की सुर में गाने लगे--'हमं चरखें से लेंवें सुंरांज हमांर कोई कां करिहें।'

१४

मलिन्द के बाप घनश्याम तिवारी यद्यपि मैट्रिक तक पढ़े-लिखे आदमी थे और रिटायर्ड स्टेशन मास्टर थे, किन्तु उनके विचार पुराने ही थे। वे किसी राजनीतिक या सामाजिक मामले में कोई हस्तक्षेप करना-कराना नहीं चाहते थे, और खास कर इस गाँव के मामलों के बीच पड़ना उन्हें पसंद नहीं था। क्योंकि इस गाँव के लोग उन्हें विचित्र मालूम पड़ते थे। घनश्याम तिवारी यहाँ नेवासे की जायदाद पर थे। सुदामा पांड़े अपने नाम के प्रतिकूल इस गाँव के अच्छे खाते-पीते लोगों में से थे। वे ही गाँव के मुखिया भी थे। उनके घर एकमात्र उनकी लड़की राधा बच रही थी। शेष लोग धीरे-धीरे अपने-अपने रास्ते चले गये थे। घनश्याम ने जायदाद के लोभ से अपने बड़े लड़के दिनेश की शादी राधा से करना स्वीकार कर लिया। बड़ा लड़का उस समय नाइन्थ में पढ़ रहा था लेकिन वह बहुत तेज नहीं था; इसलिए घनश्याम तिवारी ने इस लड़के से बड़े-बड़े हौसले न बाँध कर सत्य को नजदीक से पहचान लिया था और राधा से उसका विवाह कर दिया। घनश्याम तिवारी ने अपने जमाने में काफी पैसा कमा लिया था, तनख्वाह से नहीं अन्य तरीकों से। इधर सुदामा पांड़े के आँख मूंदते ही नेवासे के लिए लड़ाई शुरू हो गयी। मुखिया सुदामा पांड़े की पट्टीदारी का होता था; इसलिए उसने उनकी जगह-जमीन पर अपना हक समझा। और मुकदमा शुरू हो गया। लेकिन सुदामा ने राधा के नाम जायदाद लिख दी थी और घनश्याम तिवारी के पास मुकदमा लड़ने के सारे अस्त्र-शस्त्र मौजूद थे और पैंतरे बदलना भी वे मुखिया से कम नहीं जानते थे; इसलिए उनकी जीत हो गयी और मुखिया इस हार से छटपटा कर रह गये। यह हार उसके दिल में एक गाँठ, एक कसक बन कर बैठ गयी। और प्रत्यक्ष रूप से घनश्याम तिवारी के यहाँ से उसका सारा व्यवहार बन्द हो गया था। गाँव वालों ने कुछ मुखिया के भय से, कुछ गाँव के पक्षपात से और कुछ इस सिद्धान्त से कि नेवासेदार का गाँव में आना ठीक नहीं है, आस-पास के घरों पर उसकी धांध पड़ती है, मुखिया के पक्ष में गवाहियाँ दी थीं, इसलिए घनश्याम तिवारी गाँव वालों से तटस्थ से ही रहा करते थे। यों स्टेशन मास्टरी करते-करते शहर में रहते-रहते गाँव वालों से निरपेक्ष बने रहने का स्वभाव पहले ही बन चुका था। इसीलिए वे अपने लड़कों को भी गाँव के मामलों में हाथ न डाल कर अपने काम से वास्ता रखने का पाठ

पढ़ाया करते थे। उनका बड़ा लड़का गृहस्थी का कामकाज देखता था और गृहस्थी के ढांचे में कुट-पिस कर बराबर हो जाने के कारण वह भी बाप के पथ का पथिक था, किन्तु मलिन्द अभी नयी लालसायें, नयी शक्ति और नये सपने लेकर उठता हुआ जवान विद्यार्थी था, तिस पर उसका सम्पर्क कांग्रेस आन्दोलन से था। वह गांधी जी के सिद्धान्तों को पढ़ता और उनसे आन्दोलित होता था और चूंकि वह एम० ए० का विद्यार्थी था और उसके साथ या बुलावे पर बड़े-बड़े कांग्रेसी नेता उसके यहाँ आया करते थे, इसलिए घनश्याम तिवारी चाहते हुए भी बेटे के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करते थे। कभी-कभी आजिज आ कर वे जरूर कह देते कि तुम तो यह सब खुराफात करके पढ़ने चले जाओगे, भोगना तो हम लोगों को पड़गा किन्तु जब मलिन्द रोष और विश्वास के स्वर में कहता—कौन है जो हमारे रास्ते में आयेगा ? हमारे घर पर जिसने बुरी निगाह उठाई, उसे कुचल कर रख दूँगा। घनश्याम को बेटे की यह विश्वास भरी वाणी अच्छी लगती और मन के भीतर का किंचित भय धुल जाता और मुखिया आदि से प्रतिशोध लेने का भाव लहर मार जाता। ठीक तो है, इनसे जितना ही बचाओ उतना ही पीछा करते हैं हम किससे किस बात में कम हैं। देखा जायगा।

जलूस नारे लगाता हुआ मलिन्द के दरवाजे पर आ लगा। घनश्याम तिवारी और सुमेश पांड़े एक चारपाई पर बैठे-बैठे बात कर रहे थे और मलिन्द लालटेन के प्रकाश में गुडअर्थ पुस्तक लेकर बैठा था।

भारत माता की जै।
गान्हीं बाबा की जै।
जवाहर लाल की जै।
नेता गनेपू की जै।

रघू बाबा आज के स्वयं निर्वाचित नेता बन गये थे। उन्होंने आर्डर दिया 'जलूस रुक जा।' सब लोग रुक गये।

रघू बाबा बहुत दिनों से घनश्याम तिवारी के यहाँ नहीं आये थे। वे अपना झोलदार कुरता लहराते हुए मलिन्द के पास पहुँचे और बोले[1]—'मलिन्द बाबू जेबा से तू बिद्मान दुख हव। तू राजा हव। तू गान्हीं बाबा क कुल हाल जानल। तुहसे ई गाँव पबित्तर हो गइल बा। तू ए गाँव क लच्छिमी हव। कुछु भाखन दे कुछ गियान द हमहन के। जे बा से हंह।

---

१. मालिन्द बाबू तुम विद्वान पुरुष हो, तुम राजा हो, तुम गाँधी बाबा का सब हाल जानते हो। तुम से यह गाँव पवित्र हो गया है। तुम इस गाँव की लक्ष्मी हो। कुछ हम लोगों को भाषण और ज्ञान दो।

फिर रग्घू बाबा घनश्याम तिवारी की ओर मुड़ गये और बोले—'घनस्याम[1] भाई, तू बहुत भागसाली पुरुख हव कि एइसन लच्छिमी खान बेटा पवले बाट। ए जवार में तुहरे खान केहू धनि नाहीं बा। आ हम कहि देत हुई ए सुमेश भाई, जे बा से तुहरो बेटा नीरू एक दिन बड़ा बड़हन आदमी होई, ई मामूली बात नाहीं है। कहाँ बाटे से निरुआ।' फिर नीरू के पास जाकर उसकी बांह पकड़ कर चारपाई के पास लाकर खड़ा कर दिया। 'हाँ देखतऽ लिलार, कइसन चमकत बा। जइसे रोवाँ-रोवाँ से सुरसती बोलत होखें।' नीरू लजाकर हंसता हुआ जलूस में मिल गया। संध्या भी लीला के साथ बाहर निकल आयी थी। उसकी आँखें नीरू से मिलीं और मुसकरा पड़ी। नीरू और लजा गया।

रग्घू बाबा अपने आप बोले—'मलिन्न[2] बाबू, लोग कहला कि कांगरेस में कवनो दम नाहीं बा। जे बासे ई कइसे हो सकला। गान्हीं बाबा अवतारी पुरुख हवें। बेनी कहे लें कि गान्हीं आन्हीं ले के आइल बाटें। जे बा से, एइसन डंटली हुई उनके कि उनक अगराइल छुटि गइल हवे।'

'मुखिया ने भी तो कहा है कि यह सब अधिकों का काम है।' नीरू बोला।

'जे[3] बासे मुखिया क बात छोड़ि द। मुखिया गाँव क मालिक हवें। उनक कुछु कहल फबेला। लेकिन ई बेनी हर बात में टाँग अड़ावेला।'

सब लोग मुसकरा उठे। मलिन्द उठ खड़ा हुआ और बोला—'भाइयो, मुखिया कहें चाहे कोई कहे, बात एक ही है। लेकिन हमें तो अपना काम करना है। यह तो पुण्य कार्य है जो चाहे साथ दे जो न चाहे न दे। हमें अपना काम करते हुए लोगों को इसमें खींचना है। लेकिन एक बात जरूर है जिस पर हम लोगों को आज विचार करना है। है। वह यह कि कांग्रेस की निगाह में कोई छोटा बड़ा नहीं है। चमार और बाभन सभी आदमी हैं। अपनी इच्छा के अनुसार हम जिस किसी को उजाड़ फेंके या मारें, गाली दें, या किसी का घर फूंक दें, आज के जमाने में ठीक नहीं है। ऐसी घटनाएँ हमारे गाँव में हो रही हैं। इसका विरोध करने के लिए सबको एक होना पड़ेगा। पंचायत करनी होगी। हम बाहर से नेताओं

---

१. घनश्याम भाई तुम बहुत भाग्यशाली व्यक्ति हो कि ऐसा लक्ष्मी की तरह बेटा पाये हो। इस जवार में तुम्हारे जैसा कोई अन्य नहीं है। और मैं कहे दे रहा हूँ ओ सुमेश भाई कि तुम्हारा बेटा नीरू भी एक दिन बड़ा आदमी होगा। यह मामूली बात नहीं है। नीरू तुम कहाँ हो?

२. मलिन्द बाबू! लोग कहते हैं कि काँग्रेस में कोई दम नहीं है। जो है सो यह कैसे हो सकता है? गाँधी जी अवतारी पुरुष हैं। बेनी कहते हैं कि गाँधी जी आँधी लेकर आये हैं। ऐसा डाँटा है कि उनकी बदमाशी भूल गयी।

३. जो है सो मुखिया की बात छोड़ दो। मुखिया गाँव के मालिक हैं उनका कुछ कहना फबता है लेकिन यह बेनी हर बात में टाँग अड़ाता है।

को बुलायेंगे। मुखिया ने बिंदिया का घर उजाड़ दिया, कल दूसरे चमार को उजाड़ फेंकेंगे, परसों तीसरे को। यदि आपस में एकता नहीं रही तो आये दिन ये वारदात होते रहेंगे। पंचायत होनी चाहिये। बोलिये आप लोगों की क्या राय है?'

जुलूस में एक चुप्पी सी छा गयी। निरवल तेली बोले—'हाँ बाबू जी यह तो ठीक नहीं है कि पवनी परजा से काम भी लिया जाय और उन्हें सताया भी जाय।' कुछ चमार और अहिर छोकरों ने भी इसका समर्थन किया। किन्तु हरिजनों के नेता फेंकू ने कहा—'बाबू जी यह तो आशनाई का मामला है।'

मलिन्द थोड़ा सा मुसकराया मानो कह रहा हो वाहरे नेता, तू मुखिया का असामी है इसीलिए यह दलील दे रहा है।

रग्घू बाबा ने न आव देखा न ताव और न यही सोचा कि इसका परिणाम अनुकूल होगा कि प्रतिकूल। मन में झटके से बात आई कह दी—"आ तू नइखे पतोह रखले, बड़ा आसनाई वाला आइल बाटऽ।'[1] सभा में कहकहा मच गया। फेंकू तिलमिला कर रह गया।

मलिन्द ने लोगों को संयत करते हुए कहा—'भाइयो मामला आशनाई का नहीं, स्वार्थों का है। आशनाई से कौन बचा है?' बीच में नीरू कूद पड़ा—'मैंने अपनी आँखों से महेश को गाँव की एक लड़की के साथ शरारत करते हुए देखा है और'—

'चुप रहो' सुमेश गरजे।

'ना ना इस तरह लड़के को डांट कर कायर मत बनाइए सुमेश काका। भाई नीरू, तुम जरा चुप रहो। हाँ यह बात सही है कि आशनाई से कोई बचा नहीं है और उस दिन भरी सभा में बिंदिया ने गाँव के शरीफ छोकरों की जब पोल खोल दी तो सबके मुँहों पर कालिख पुत गयी। अगर ऐसे ही एक-न एक बहाना लेकर जबर्दस्त लोग गरीबों को उजाड़ते रहे और तुम लोग चुपचाप सहते रहे तो हो चुका सुराज आन्दोलन।'

नेता गनपति ने जैसे बीच-बचाव का रास्ता निकालते हुए कहा कि भाई अब तो तुमने उसे अपनी जमीन में बसा लिया। बखेड़ा खतम हो गया। छोड़िए इस सवाल को।

जलूस में बहुत से लोग मलिन्द के इस सिद्धान्त को गले के नीचे नहीं उतार पा रहे थे। उनके दिमाग में यह बाभन और चमार का सवाल था। एक चमाइन बाभन को खराब कर रही है और यदि एक बाभन ने चमाइन को भला बुरा कह ही दिया तो उसमें कौन आफत आ गयी। चमारों को बाभनों के खिलाफ भड़काना और उनकी शान बिगाड़ना तो सुराज का मतलब नहीं है। सुराज का तो मतलब है अंगरेजों को हिन्दुस्तान से खदेड़ बाहर करना। ऐसे लोग कुछ भी बोल नहीं पा रहे

---

१. और तुमने नहीं पतोहू रख ली है। बहुत आसनाई वाले बनते हो।

थे। उन्हें मुखिया की मुरौवत या भय भी था। कुछ लोग मलिन्द के साथ बोलना चाहते थे किन्तु एक दूसरे का मुंह ताक रहे थे। पहले वह कुछ बोले तो बोलू। कुछ के मन में यह भ्रम हो गया कि यह नेवासेदार तिवारी मुखिया से बदला लेने के लिए यह सब कुचक्र रच रहे हैं। कुछ लोगों—विशेषतया छोटी जातियों के लोगों के मन में मलिन्द की बात जम रही थी और धीरे-धीरे समर्थन भी कर रहे थे। मलिन्द समझ रहा था कि अभी गाँवों को आंदोलित करने में बड़ी देर लगेगी। छोटे-छोटे स्वार्थो में व्यस्त लोगों के मन में सही बात बहुत देर से उतरेगी। जाति-पाँति, छूआ-छूत, ऊँच-नीच का भेद-भाव अभी कस कर जकड़े हुए है लोगों को और उसके जाने में समय लगेगा। वह पंचायत करना चाहता था लेकिन समझ रहा था कि सही बात को समझने की क्षमता और उसे स्पष्ट व्यक्त करने का साहस अभी किसी में नहीं है।

वह सोच ही रहा था कि घनश्याम तिवारी बोले—'बेटा तुम किस चक्कर में पड़ गये हो। इस गाँव में पंचायत बोंचायत नहीं चलने की। सभी लोग खेलाड़ी है, कोई साफ बात कह कर जबरदस्तों का दुश्मन होना नहीं चाहता।

भुमेश पांड़े बोले—'अरे बच्चा किस फेर में हो मेरा घर फूक दिया गया। लोगों ने घर फूंकने वाले को देखा भी। किन्तु जब पचायत के लिए लोगों को बुलाया तो एक तो बहुत कम लोग आये और जब नीरू ने भरी सभा में कहा कि बैजू ने मेरा घर फूंका है तब किसी की जबान नहीं खुली। यह गाँव अपना-अपना मतलब देखता है।'

मलिन्द इस तथ्य से अपरिचित नहीं था, किन्तु उसे कोशिश तो करनी ही चाहिए। गांधी जी का यही तो सिद्धान्त है। निराश होकर बैठ जाने से कुछ नहीं होने का। इसी तरह धीरे-धीरे फूक मारते मारते एक दिन आग दहक उठेगी।

उसने हंस कर कहा—'अच्छा भाइयो, छोड़ो इस मामले को। लेकिन हम सब मिलकर आजादी के लिए तो पुकार लगावें। गाँव तो धीरे-धीरे ठीक हो ही जायगा, पहले अंगरेजों को तो निकाल फेंकें।'

सब लोगों के चेहरे खिल गए जैसे किसी धर्म-संकट से बच गये हों। और रघू बाबा फिर जलूस में आ मिले और चिल्लाने लगे—

गान्हीं बाबा की जै।

जवाहर लाल नेहरू की जै।

मलिन्द बाबू की जै।

भारतमाता की जै।

और फिर गनपति अपने नक्की सुर में गाने लगे—

'मेरें चरखें कां टूटें न तांन।

चरखवाँ चालूं रहें'

गबई मुंह से ताल देने लगा—चप्पुर-चप्पुर, चप्पुर-चप्पुर।

गनपति ने क्रोध में आकर उसे एक हुच्चा मारा। लोगों में कहकहा छा गया। गबई चुप हो गया। जलूस बिखर गया।

१६

चारों ओर हल्ला हुआ कि गेंदा को चुरइल पकड़े है। वह मुंह से फेंचकुर फेंक रही है, बेहोश है। सब लोग खासकर औरतें दौड़ी जा रही हैं। गाँव के अधिकतर मर्द पपीहा पांड़े के बेटे के विवाह में चले गये थे। बैजू भी गया था। घर म गेंदा की माँ घबराई हुई सी गेंदा को गोद में लिए पड़ी थी। नीरू को बैजू के घर से घृणा हो गयी थी, वह नहीं गया। गेंदा हुचुक-हुचुक कर साँस ले रही थी और उसके वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये थे, केश खुल गये थे। उसकी आँखें बार-बार तिरछी-सीधी हो रही थीं। किसी को कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। पास-पड़ोस की कुछ बूढ़ी औरतें हाथ जोड़ कर पूछ रही थीं—'बताओ महाराज, तुम कौन हो ? या कौन देवी हो ? काहे को इस बेचारी लड़की को तंग कर रहे हैं। गाय बधने से क्या मिलेगा महाराज ? जो हों सो परगट हों, अपना पूजा-पाठ लें और लड़की की जान छोड़ दें। लड़की बड़ी गरीब जीव होती है महाराज, आज यहाँ कल वहाँ। किन्तु गेंदा वैसी ही हाँफती रही।

लोगों ने कहा, बुलाओ न सुमेश बाबा को। सेवड़क आदमी हैं अभी ठीक कर देंगे। लेकिन हाय वे भी तो बारात गये थे। और होते तो भी आते कि नहीं कौन जानता है ? नहीं, वे जरूर आते, वे इस तरह के काम में किसी से बदला नहीं लेते हैं।

महेश भी पहुँच चुका था। महेश थोड़ी देर तक डरा-डरा सा देखता रहा। फिर उसके शरीर में सिहरन होने लगी। भय से उसे पसीना छूटने लगा कि जैसे बरगद पर का वह काला भूत अब भी उसके पीछे-पीछे दौड़ रहा है, ललकार कर ढेले मार रहा है। वह ढीला होते-होते गिर पड़ा और चिल्लाया—बरगद पर का भूत ! भूत है, भूत है ! गेंदा भी बेहोशी में चिल्लाई—भूत भू. . . . .तो लोग अवाक रह गये और सोचा कि महेश कोई बहुत बड़ा सोखा हो गया है। गेंदा की माँ हाथ जोड़कर उसके सामने बैठ गयी। हे बरगदवा पर क भूत महाराज, मेरी गऊ लड़की ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा कि इसे सता रहे हो। किन्तु महेश बार-बार 'भूत-भूत' ही चिल्लाता रहा और औरतें हाथ जोड़े बैठी रहीं।

महेश थोड़ी देर में जागरूक हो गया और उस दिन की बात प्रकट हो जाने का भय हो गया। इसलिए अब धूर्तता से काम लेने लगा—हाँ मैं पश्चिम के बरगद पर का भूत हूँ। यह शाम को उधर जा रही थी कि मैंने इसे पकड़ लिया।

'हे महाराज छोड़ दो इसे ।' महेश धीरे-धीरे सोखैती के पूरे नाटक में आ गया—'ना ना मैं नहीं छोड़ूंगा । फिर अपने ही आप गलगलाता—छोड़ रे पाजी तुझे छोड़ना ही पड़ेगा ।' औरतों और बच्चों की भीड़ में इस अभिनय के निभाने में उसे कोई कठिनाई नहीं हुई ।

उसने कहा—'अच्छा मैं लवंग और धार लूंगा तब छोड़ूंगा ।' उसे यह भी पता नहीं था कि भूत की पूजा माँस और शराब से होती है लवंग धार तो देवताओं और देवियों की पूजा होती है । किन्तु वहाँ सब खप गया ।

गेंदा की माँ ने कहा—'कब तक छोड़ोगे महाराज ?' महेश ने सोचा, न जाने कब तक यह चेत में आयेगी फिर उसने यों ही कह दिया एक घंटा में पूजा पा जाने पर । औरतें धीरे-धीरे खिसकने लगीं । क्योंकि कौतूहल का अब ह्रास हो रहा था । घर सूना हो गया । महेश अब प्रकृतिस्थ हो गया था और अब भी रह-रह कर उसे भूत की आशंका हिला रही थी ।

गेंदा की माँ ने कहा—'बेटा जरा इसके पास बैठो, मैं धार कपूर लिए आऊँ ।'

महेश एकाकीपन के डर से कांप उठा—'ना चाची, मुझे बहुत डर लगेगा भूत से ।'

चाची ने कहा—'तुझे क्या भय है रे ? तू तो बड़ा सोखा बन गया है । सोखा लोगों से तो भूत भागता है । बैठो मैं तनिक देर में बनिया के यहाँ से धार-कपूर लेकर आयी ।'

और वह निकल गयी ।

महेश अकेले बैठा-बैठा पीला पड़ने लगा । गेंदा ने उलट कर लाल-लाल आँखों से उसे देखा । वह डर कर खड़ा हो गया । गेंदा ने उसी तरह घूरते हुए पूछा—'कोई है तो नहीं ।' महेश को काटो तो खून नहीं । ओठ दबाते हुए और आँखें मीचते हुए सिर हिलाकर कहा—'नहीं ।'

'यहाँ आओ ।' गेंदा ने धीरे से निश्चल स्वर से कहा ।

महेश ने समझा—'अब मौत आई, अकेलेपन में अब खैर नहीं । वह वहाँ से भागने को ही था कि गेंदा मुसकरा पड़ी । इतनी देर की बेहोशी के बाद कुछ होश की यह मुसकराहट थी, महेश को बड़ा भय मालूम पड़ा; परन्तु धीरे-धीरे उसके पास चला गया । गेंदा ने इशारे से कहा—'पास बैठो ।' वह बैठ गया । गेंदा ने महेश का हाथ अपनी हथेलियों में खींच लिया । महेश डर से अपना हाथ खींचने को ही था कि गेंदा ने उसे और भी खींच लिया । महेश का भय गेंदा की हथेलियों की गरम-गरम मांसलता में डूब गया । और थोड़ी देर बाद वह एकदम स्वस्थ चित्त दिखाई पड़ने लगी । महेश नहीं समझ सका कि यह रहस्य क्या है ? मगर उसने कहा कि माँ के आने तक अनमन पड़ी रहो ।

माँ के धार-कपूर देने के बाद गेंदा स्वस्थ हो बैठी और माँ ने महेश को बहुत-बहुत आशीर्वाद देकर विदा किया ।

१६

रमेश गेंदा के यहाँ से लौट कर आया तो नीरू से बोला कि अरे भाई तुम नहीं गये, गेंदा को तो भूत पकड़े हुए था। बाप रे बाप! मुझे नहीं मालूम था कि पश्चिम वाले बरगद पर भी भूत है। अकेला नहीं जाऊँगा उधर।

'किसने बताया कि वह बरगद पर का भूत है।' नीरू ने पूछा।

'महेश ने। वह उसे देखते ही देखते खेलने लगा। लगता है, जाबिर सोखा निकलेगा।'

नीरू थोड़ा मुसकराया और बरगद वाली घटना उसके मन में कौंध गयी।

'हँसते क्यों हो नीरू भाई! मुझे तो गेंदा का वह रूप बड़ा डरावना लग रहा था।'

'रह गये तुम उल्लू ही। अरे यह महेसवा मुखिया का बेटा है धूर्त नम्बर वन। उसे सोखैती-वोखैती कुछ नहीं आती है।'

'नहीं भाई नीरू, बात कुछ सच थी, तभी तो बरगद पर के भूत का नाम ले लेकर वह लोट रहा था और फिर गेंदा भी अब ठीक हो गयी है।'

नीरू ने रमेश के सफाचट्ट सिर पर एक चांटा चट्ट से लगाते हुए कहा—'मूरख सुन।' और उसने उस दिन वाली सारी घटना सुना दी। रमेश कभी गाल फुला कर कभी आँखें फाड़ कर घटना सुनता रहा।

'तो फिर क्या हो सकता है?' रमेश ने पूछा।

'उसे रिश्तेदारी में का गड़न्त पकड़े है उस दिन बरम बाबा ने नहीं बताया था। तुम तो सब भूल जाते हो।'

'गड़न्त क्या है नीरू भइया?' रमेश की आँखें भय से फैल गयीं।

नीरू आज तक कभी इस शब्द की उधेड़-बुन में नहीं पड़ा था। वह ऐसे ही समझ बैठा था कि होगा कोई भूत प्रेत। परन्तु रमेश के प्रश्न के साथ-साथ उसके मन में भी प्रश्न उठा कि आखिर यह है क्या चीज। उसने रमेश से कहा—'भाई यह तो मुझे भी नहीं मालूम।' और फिर दोनों मिलकर मुसकराये, फिर हँस पड़े।

'अच्छा चलो मलिन्द भाई से पूछा जाय।' नीरू ने रमेश की गरदन पकड़ कर खींचते हुए कहा।

'गड़न्त क्या चीज है मलिन्द भइया।' नीरू ने पूछा।

मलिन्द ने प्रश्न भरी दृष्टि से नीरू की ओर देखा और पूछा—'क्यों?'

रमेश ने झट कहा—'नीरू भइया कहते हैं कि गेंदा को गड़न्त पकड़े हुए है।'

नीरू ने उसे एक चाँटा मारते हुए कहा—'चुप बे सूअर।'

रमेश मार खाकर झेंप गया।

मलिन्द फिर मुसकराया और कहने लगा—'अरे भाई, इस गड़न्त-सड़न्त के चक्कर में क्या पड़ गये। देहाती लोग विश्वास करते हैं, कि जब मरे हुए या मारे हुए बच्चे को मिट्टी के बरतन में बन्द कर के गाड़ दिया जाता है, तब वह भूत बन कर सबको परेशान करता है। लेकिन यह सब कपोल-कल्पना है।'

नीरू और रमेश इस गड़न्त के रहस्य को समझने की कोशिश में थे।

'लेकिन एक बात है।' मलिन्द के स्वर से नीरू चौंका। 'कि गेंदा की बेहोशी गड़न्त से नहीं है। विज्ञान इन सब बेकार की बातों में विश्वास नहीं करता। असल में यह हिस्टीरिया है।'

'हिस्टीरिया' क्या आफत आ गयी? रमेश सोच रहा था—बरगद का भूत, गड़न्त, हिस्टीरिया। जितने बैद उतने ही रोग।

'यह क्या चीज है भाई साहब?' नीरू ने अवाक भाव से पूछा।

मलिन्द धीरे से डाँट कर मुसकराया। देख किसी से कहते मत घूमना। लेकिन तुम दोनों होनहार विद्यार्थी हो और तुम लोगों को ज्ञान-विज्ञान की बातें जाननी ही चाहिए। इसलिए बता देता हूँ। देखो—जब कोई आजाद तबीयत की लड़की काफी अवस्था की हो जाती है और उसकी शादी नहीं हो पाती तो उसमें वासना का एक उन्माद छा जाता है और वासना जब पूरी नहीं हो पाती तो वह मन के भीतर रोग बन कर बैठ जाती है और समय-समय पर उसी का दौरा हुआ करता है।'

दोनों लड़के कुछ खास नहीं समझ पाये, लेकिन उनके मन में एक चित्र खिंच गया—आजाद गेंदा, बीस बरस की उम्र, अविवाहिता और बेहोशी का दौरा।

१७

बैंजू जब कभी फुरसत पाकर बैठता, तब उसकी माँ वही रोना ले कर बैठ जाती—क्यों जी, कुछ होश-हवास है कि नहीं, बहिन बीस बरस की हो गयी और शादी विवाह का कहीं नाम ही नहीं। कई साल से भूंकते-भूंकते मैं थक गयी, लेकिन तू तो न जाने क्या-क्या सोचता रहता है?

आज भी वही सवाल उसके सामने रख दिया गया। बैंजू चुपचाप बैठा रहा न हाँ कहा न 'नहीं'।' बैंजू का इस तरह गुम-सुम होकर बैठना उसकी माँ को ऐसे अवसरों पर अखर जाता था। फिर वह उद्विग्न होकर बोली—'बोलता क्यों नहीं तू। यह भी नहीं देखता कि गेंदा को भूत-चुरइल लगने लगे हैं। अगर सबको मालूम हो जायगा तो कोई उससे विवाह करने को भी तैयार नहीं होगा। इस गाँव का हाल तो जानते ही हो—बेटे का बियाह तो काटता ही है बेटी का भी बियाह काटता है। लड़की इतनी सयानी हो गयी, कहीं ऊँचे-खाले पाँव पड़ जाय तो फिर कौन-सी इज्जत रह जायगी?

किन्तु बैंजू टस से मस न हुआ। माँ ने देखा और फिर क्रुद्ध होकर ललकारा —'क्यों रे दहिजरा, तू सुनता क्यों नहीं है? अगर नहीं सुनेगा तो ले मैं ही निकल कर जाती हूँ बर खोजने।' और वह सचमुच ही अपना लुग्गा-लत्ता लपेटने लगी। बैंजू अपनी माँ के हठ को जानता था। वह जानता था कि वह कई बार भाग-भाग बाहर निकल गयी है और महीनों बाद लौटी है।

बैंजू अब बोला—'रुको माँ।'

'अब बोल फूटा है बबुआ जी का, कभी से भूँक रही हूँ; मगर काहे को सुनने लगे। मैं नहीं रुकती जाती हूँ और बर खोजकर ही आऊँगी।'

बैंजू ने उठ कर माँ का हाथ पकड़ लिया—'बैठो माँ। तुम सोचती हो कि मुझे गेंदा के बियाह की परवाह नही है; किन्तु मैं ही जानता हूँ कि कैसे दिन-रात सोच में गला जा रहा हूँ। माँ, गेंदा ने दर्जा चार पास किया है; उसके लायक अच्छा सा बर जरूर चाहिए। मगर देखो न, अच्छे वर तो बहुत दहेज माँगते हैं और हमारे पास क्या है दहेज देने लायक।'

माँ कुछ सोच-विचार में पड़ गयी।' 'ठीक ही तो कह रहा है। मैं क्या इस बात को नहीं जानती मगर शादी को कब तक टाला जा सकता है। मुँह पर कालिख पुत जायगी। अभी से सारा गाँव कह रहा है कि बाप रे बाप, बीस बरस की

लड़की हो गयी; लेकिन शादी-बियाह की चर्चा ही नहीं। यद्यपि सभी की लड़कियाँ सयानी बनी घूमती हैं' फिर वह बैजू से बोली—'सो तो है बेटा लेकिन मन छोटा करने से क्या होगा? सादी तो करनी ही पड़ेगी। जाओ कोई बर ढूँढो।'

'माँ अब तो लगन खतम हो रही है, अगले साल देखा जायगा। इस साल तो देखो कुछ रहा भी नहीं खरच-बरच करने लायक। जो कुछ अन्न-पताई थी, वह इस जग्ग-भोज में खतम हो गयी।'

माँ को बेहद गुस्सा आया कि वह कह दे कि इस चमाइन ने तो सारा घर बरबाद कर दिया। लेकिन उसे कहने की हिम्मत नहीं हुई। उसे लगा कि उसके जीवन का एक-एक अपराधी क्षण बेटे के आगे खुला पड़ा है, वह किस मुँह से उसे कहे? आखिर वह उसी का तो बेटा है। बोली—'बेटा, तुम बेकार इन गाँव वालों के बहकावे में पड़ गये। वे हमारा छुआ नहीं खाते तो न खाते।'

बैजू को एक क्षण गाँव वालों पर बड़ा क्रोध आया। फिर कुछ सोच कर बोला—'माँ तुम जान बूझ कर अनजान बनती हो। अगर ये गाँव वाले हमें कुजात काढ़ देते तो हमारे यहाँ कौन बियाह करता?'

माँ ने भी सोचा—'हाँ यह तो ठीक ही हुआ—जो राम करते हैं, सो अच्छा करते हैं।' उसके दिल पर से जैसे एक पत्थर हट गया।

वह कुछ देर चुप होकर जैसे कुछ सोचती रही। फिर बोली—'तब?'

'तुम्हीं कहो, मैं क्या करूँ?' बैजू का मायूस स्वर था।

'ढाई-तीन बीघे खेत बच गये हैं, कहो तो उसी में से कुछ रेहन रख दूँ। मगर फिर कैसे खाया-पिया जायगा। सोच लो।' बैजू ने कहा।

माँ कुछ न बोली। वह नीचे मुख किये कुछ सोचती रही। बोली—'मैं क्या बताऊँ। चाहो तो बेंच दो; मगर कैसे बेड़ा पार होगा हे राम!'

बैजू सोच रहा था कि बेंच तो दूँ मगर क्या खाया जायगा?

वह सोच ही रहा था कि उसकी माँ की आवाज सुनाई पड़ी—'क्या ऐसा कोई परोपकारी नहीं है जो हमारे ऊपर दया कर के कन्या कबूल कर ले।'

बैजू को माँ के इस कथन में एक संकेत सा जान पड़ा। वह जो बात नहीं कहना चाहता था, उसे माँ ने कह दिया। उसने समझा; उसकी समस्या हल हो गयी। आखिर इसके सिवा और चारा ही क्या था। उसका जी कुछ हलका हुआ वह खड़ा हो गया, कहा—'अच्छा माँ कल जाऊँगा। कोशिश करूँगा।'

१८
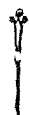
जुलाई आ गयी। स्कूल-कालेज खुल गये। नीरू को नाइन्थ में अपने क्लास में सबसे अधिक अंक मिले थे। मास्टर ने उसकी पीठ ठोंक कर उसके भविष्य की बड़ी-बड़ी मंगल-कामनाएँ की थीं। महेश फेल होते-होते रह गया। मुखिया ने जब एक बड़ी-सी पासकराई मास्टर के हाथों में ठूस दी, तो महेश न जाने कैसे योग्य हो गया और पास होने की खुशी में दो सेर गुड़ बाटें।

संध्या ने इस साल मिडिल स्कूल से छः पास किया था। धिरेन्दर, छबीले, गबई, रमेश ये सभी अंगरेजी स्कूल से आठ पास करके नवीं में गये थे। केशव अभी प्राइमरी स्कूल के तीन में गया और लीला चार में। इसी प्रकार गाँव के बहुत से छोटे-छोटे लड़के और एकाध लड़कियाँ प्राइमरी, मिडिल स्कूल तथा तथाकथित अंगरेजी स्कूल में पढ़ते थे।

मगर अंगरेजी स्कूल का भी अपना एक इतिहास है। यह गाँव घोर कछार में बसा हुआ है। इस गाँव के चारों ओर फैली हुई नदियाँ बरसात में बीसों मील तक उमड़ कर ठाँठें मारती हैं। बाढ़ और बाढ़ ही बाढ़ दिखाई पड़ती है। दस-बारह मील तक सवारी का कोई रास्ता नहीं है। बाहर से न कोई आता है, न जाता है। यह कछार प्रान्त अपने आप में स्वतंत्र है, पूर्ण है। इस विशाल क्षेत्र में न कोई अंगरेजी स्कूल है और न अस्पताल, न पुलिस चौकी।

यहाँ के लड़के प्राइमरी और मिडिल स्कूल की शिक्षा प्राप्त कर यहाँ-वहाँ बिखर जाते हैं। गोरखपुर शहर यहाँ से बीस मील की दूरी पर है। यह गरीब क्षेत्र शहर में लड़कों को भेज कर अंगरेजी शिक्षा दिलाने की सामर्थ्य नहीं रखता। इसलिए थोड़ी सी शिक्षा प्राप्त कर कोई भाग्यशाली हुआ तो मिल में चार महीने के लिए क्लर्की पा जाता है, कोई कलकत्ता भाग जाता है, कोई बम्बई और अधिक लोग गाँव की धारा में डूब कर अपनी शिक्षा की थोड़ी सी पूँजी हाथ से गाँव बैठते हैं और फिर वही करते हैं जो गाँव का वातावरण उन्हें करने को मजबूर करता है।

इसीलिए जर-जवार के कुछ बड़े आदमियों ने मिलकर एक मीटिंग की और बहुत चख-चख के बाद यह तै पाया कि एक अंगरेजी स्कूल खोला जाय। कहाँ खोला जाय; इस पर बात का बतंगड़ हुआ। अन्त में किसी तरह यह तै पाया कि पांड़ेपुरवा के सिवान पर स्थित शिवपुर में बाबू गजेन्द्र सिंह की छावनी में ही

जगह मांग ली जाय । वहाँ प्राइमरी स्कूल तो चलता ही है । क्या हर्जा है कि उसी की बगल में अंगरेजी स्कूल भी शुरू हो जाय । बाबू गजेन्द्र सिंह इस जवार के बड़े नामी और दानी आदमी हैं, जगह देने में कोर-कसर नहीं रखेंगे । कोशिश पैरवी से स्कूल के लिए जगह मिल गई । छावनी में और कमेटी में यह फैसला हुआ कि शुरू-शुरू में दो एक मास्टर रख लिए जाएँगे । फिर धीरे-धीरे स्कूल के विकास के साथ मास्टरों की संख्या बढ़ाई जायगी । इस कमेटी के सेक्रेटरी थे पड़ोसी गाँव रामपुर के हुरदेख राय, जो ठीकेदारी से पैसे कमा-कमा कर जवार के नामी आदमी बन गये थे । सवाल उठा मास्टरों की नियुक्ति का, सो किसुनपुर के बूढ़े पंडित देवदास तिवारी ने जो मिडिल स्कूल की मास्टरी से अवकाश प्राप्त कर बेकार बैठे थे अपने को इस कार्य के लिए निवेदित किया । सो सेक्रेटरी की सिफारिश पर उनकी नियुक्ति हो गयी । वे आठ, नव और दस को सभी विषय पढ़ायेंगे; किन्तु इंगलिश का क्या होगा ? इंगलिश के लिए किसी को बाहर से बुलाना पड़ेगा । सो उसके लिए भी विशेष परेशानी नहीं उठानी पड़ी । हुरदेख राय का साला बी० ए० फेल होकर बैठा था, न पढ़ रहा था, न नौकरी मिल पा रही थी । सो हुरदेख राय ने अपने योग्य साले से बहुत अरज-मिन्नत की अंगरेजी विषय पढ़ाने तथा हेडमास्टरी का पद संभालने के लिए । पहले बच में नीरू और महेश ही पढ़ने गये पांड़ेपुर गाँव से । और दूसरे बैच में गाँव के और छोकरे गये । देवदास तिवारी के नाम से पहले तो लड़के बहुत काँपे । उनकी आँखों में कुछ सुनी-सुनाई कथाएँ और कुछ अनुभूत घटनाएँ उभर आयीं--'अरे यह बड़ा दोखी पंडित है । चइले से मारता है, धूप में सुला देता है, और कहता है कि अपनी आँखें फाड़-फाड़ कर सूरज की ओर देखो । और फिर वह दाँत पीस-पीस कर सबके पैरों पर बेंत से सपा-सप्प मारता है । कभी-कभी तो रोल से लड़कों की पीठ पर धम्म-धम्म जमाता है ।

मगर जो भी हो, लड़कों की मरजी से तो कोई फैसला होने को नहीं । सो देवदास तिवारी मास्टर नियुक्त हो गये और गरीब विद्यार्थियों को इस स्कूल को को छोड़कर और शरण ही कहाँ थी !

सो स्कूल चल पड़ा । दोनों मास्टरों की तनख्वाह चन्दे और फीस पर अवलंबित रही । किन्तु यहाँ तो हर आदमी अपने बेटे की फीस माफ कराना चाहता था, यहाँ तक कि पैसे वाले भी । कैसे काम चले ! चन्दा मांगने पर भी लोग कहते कि मेरा लड़का थोड़े न पढ़ रहा है, मैं क्यों दूं ? और सच बात तो यह है कि खाने का ठिकाना नहीं, चन्दा कोई कहाँ से दे !

ज्यों-ज्यों करके स्कूल चल रहा है । मास्टरों की तनख्वाह महीनों से पड़ी हुई है । देखें क्या होता है ?

हाँ, तो आज स्कूल खुल गया; मगर दोनों में से कोई मास्टर नहीं आया । एक दिन, दो दिन, चार, पाँच, छः, सात यानी सप्ताह भर तक लड़के आते रहे, परन्तु

मास्टर के दर्शन नहीं हुए। मालूम पड़ा कि देवदास तिवारी अब थकावट महसूस करते हैं। अब उनसे काम होता नहीं, यद्यपि अब भी लोग उन्हें कुदाली लेकर खेत में जूझते हुए देखते हैं। सौ बात की एक बात कि बेचारे को तनख्वाह मिलती नहीं तो थकावट क्यों नहीं आये! यद्यपि स्कूल में आने की कोशिश करते हुए उन्होंने यही कहा था कि यह तो देश सेवा है अपने जवार के लड़कों का उद्धार करना है, बेतन-सेतन की क्या बात है।

अंग्रेजी मास्टर के बहनोई हुरदेख राय ने यह शुभ समाचार दिया कि साले साहब को थानेदारी की जगह मिल गयी और बड़े गर्व से उन्होंने लोगों को देखा।

तो अब फिर क्या हो! कमेटी के लोगों का सवाल था।

होगा क्या? कोई चन्दा देता नहीं तो मास्टर क्या हवा पीकर पढ़ायेंगे। और उस मीटिंग में उन्होंने ऐसी उदासीनता बरती, जिसका अर्थ था कि मुझे क्या करना है। मैं तो इस जवार के उपकार के लिए ही अपने को खपा रहा था, वरना मेरे लड़के तो गोरखपुर ही पढ़ेंगे, चाहे यहाँ स्कूल हो या न हो।

मतलब यह कि स्कूल टूट गया। गाँव के लड़कों के लिए शिक्षा का जो एक धोखा खड़ा हुआ था, वह भी न रहा। अब लड़कों और उनके अभिभावकों के सामने समस्या थी कि लड़के जायें कहाँ!

१६

पीहा पाड़े गोरखपुर में उपरेहिती का काम करते थे। सो वे अपने बेटे छेदी को गोरखपुर उठा ले गये संस्कृत पढ़ने के लिए। रमेश के पिता का एक चेला जो गोरखपुर में डाक्टर था उसने रमेश को अपने यहाँ भत्तरिन्हा बना कर बुला लिया। महेश को मुखिया ने उसके ननिहाल के हाई स्कूल में भेज दिया। रग्घू बाबा के नाती धिरेन्दर कुछ सोच नहीं पा रहे थे कि क्या करें? बेनी काका के सामने कोई विकल्प न था, वे पढ़ाई-लिखाई में विशेष आस्था नहीं रखते थे और आस्था रखते भी तो इतनी छोटी औकात वाले आदमी के लिए अपने बेटे को गोरखपुर भेजना नामुमकिन था। इसलिए छबीले गृहस्थी में डुबा दिया गया।

और बेचारा नीरू? उसके सामने ऐसी समस्याएँ थीं कि उसका तो शिवपुर के ही स्कूल में पढ़ना मुश्किल था और अब तो जैसे उसके सारे रास्ते बन्द हो गये। वह शहर जा कर किसी वकील-मुख्तार का रसोइंया बनने की कोशिश कर सकता है और कोशिश करने पर वह काम पा भी सकता है, मगर न जाने क्यों उसे इस काम से शुरू से ही नफरत थी। वह इसे औरताना काम समझता था। यदि किसी तरह मन मसोस कर यह काम भी ले तो उसके घर वालों का क्या होगा। ममतामयी माँ, करुणा की मूर्ति लीला और होनहार भाई केशव, ये सब उसकी सजल आँखों में तैरने लगते। उसे पिता का ध्यान कम आता। आता भी तो वह एक विशेष प्रकार के गुस्से से भर जाता—इन्होंने ही सब कुछ बरबाद किया है। इन्होंने हम सबों को बेंच देने में कोई कोर-कसर नहीं रखी और अब भी तो बच्चों के पेट पर लात मार कर अनाज चुरा-चुराकर सुरती-भेली खाते हैं। अब भी घर के कामकाज छोड़कर मेला-बरात और रिश्तेदारों के यहाँ जाने के लिए झगड़े करते हैं। वह एक विवश क्रोध से तिलमिला उठता। सोचता, उन्हें क्या? अकाल पड़ने पर पेट पालने के लिए वे नातेदारों के यहाँ एक महीना काट सकते हैं।

—'माँ! तूने कितनी तकलीफ बर्दाश्त की है। सास और पति के जुल्म सहते-सहते गरीबी से लड़ने के लिए अपने शरीर के सब गहने बेचते-बेचते और उपवास की मार खाते-खाते तू कितनी जर्जर हो गयी है? तूने हम लोगों को जैसे अपनी पवित्र आत्मा से पैदा किया, उसी प्रकार उसकी छांह में पाला। क्या करूँ? पढ़ाई करूं या घर की डूबती नाव को किनारे लगाने की कोशिश।' फिर मुखिया उसकी आँखों में उतरा जाता 'सूअर ने धूर्तता से मेरे सारे खेत रेहन रख

लिए हैं और फिर भी सूद के साथ मूल-धन बढ़ाता ही जा रहा है। यह हरामी अपने को पैसे के बल पर बड़ा समझता है और गरीबों को तंग करता है। इसकी हेठी मिटानी ही पड़ेगी। पढ़ाई-लिखाई बन्द, चलो कहीं नौकरी की तलाश करें।

इस निश्चय से वह धूल झाड़ कर उठा कि संध्या उसके मन में बरस पड़ी। सुना है, वह पढ़ने के लिए गोरखपुर जा रही है। मलिन्द अपने साथ ले जा रहा है। यह बहुत अच्छा हुआ; क्योंकि अब उसका मिडिल स्कूल के छोकरों के साथ पढ़ना ठीक नहीं है। ये गाँव के छोकरे बड़े शैतान हैं। वे संध्या को लेकर एक-एक बोली कसते हैं तो लगता है कि किसी ने मेरे मन पर बरछे की नोंक धंसा दी है। इच्छा होती है बेईमानों का खून पी जाऊँ, मगर संध्या की बदनामी के डर से सब कुछ सुन कर भी चुप रह जाता हूँ। कोई पूछ दे कि तू उसकी ओर से क्यों लड़ता है? तो? सयानी लड़की का यहाँ के आवारा लड़कों के साथ न पढ़ना अच्छा ही हुआ।

मगर शहर जा कर वह मुझे भूल तो नहीं जायेगी। वहाँ तो एक से एक सुन्दर स्वरूप और धनी लड़के पढ़ते होंगे, मेरी तो गिनती ही क्या हो सकती है उनमें? किसी से संध्या की आँखें उलझ गयीं तो! लेकिन नहीं, ऐसा नहीं होगा। वह ऐसी चलती फिरती लड़की नहीं है। लेकिन फिर भी हम लोगों के किये क्या होगा? वह पढ़ लिखकर बी० ए०, एम० ए० हो जायगी और मैं देहाती भुच्च बना रह जाऊँगा तो क्या वह मुझे पसन्द करेगी और यदि वह पसन्द भी करे तो उसके घर वाले? सोचते सोचते उसकी आँखें गीली हो गयीं और वह उठ कर उसी अपने टीले की ओर निकल गया। ठंडी संध्या से भींगी धूल में पैरों को धंसाता टीले की ओर चला जा रहा था।

२०

आसाढ़ आ गया परन्तु आसमान अभी वैसे ही तप रहा था। जलती हुई धूल, लू के झोंकों के साथ उड़-उड़ कर पेड़ों और घर के दरवाजों से टकरा रही थी। जलती हुई दोपहरी में अब भी किसान नाचती हुई छायाओं के समान कुदाली चला रहे थे। बाग-बगीचों के पास से या खेतों, पोखरों से ईंट और खपड़ों के आवों की गन्ध अब तक आ रही थी और दोपहरी को चीर कर उठता हुआ काला-काला धुआँ आसमान की छाती पर काले-काले सापों सा लोट रहा था। आवों के पास से निकलने वालों के मुँह पर कभी-कभी यह धुआँ ऐसा झुक पड़ता कि प्राणों में एक गरम-गरम सी विचित्र गन्ध कसमसा उठती और आँखें व्याकुल हो जातीं।

बावग का समय आ गया, परन्तु हे भगवान् यह क्या कि आसमान में बादल का एक टुकड़ा भी नहीं दिखाई पड़ता। क्या होगा, रबी का अनाज तो अभी से चुकने लगा। खरीफ भी नहीं होगी तो क्या आदमी अपना हाड़ चबायेगा? बावग का समय बीत रहा है।

यों बारिश न होने से लोग आकुल-व्याकुल हैं; परन्तु वे यह भी जानते हैं कि पानी बरसने पर बाढ़ की शत-प्रतिशत आशंका है। बाढ़ तो हर साल ही आती है। हर साल सब कुछ बहा ले जाती है। और आषाढ़ में ही रबी की पूँजी खाकर लोग माघ फागुन तक न जाने कैसे जूझते हैं, दहाड़ते हुए अभावों से।

मगर फिर भी उनके मन के भीतर एक उम्मीद है जो कभी साथ नहीं छोड़ती —शायद अब की कुछ हो जाय। इसीलिए उन्हें पानी चाहिए, बादल चाहिए, जलती हुई धरती में बीज तो पड़ेगा नहीं।

लेकिन इस अवर्षण से कितनों को सन्तोष है—उन लोगों को जो कि हर काम अन्तिम क्षण में करने के अभ्यासी होते हैं यानी कि टालते जाते हैं कि कल देखा जायगा। ऐसे लोग अब जल्दी-जल्दी पशुओं के लिए पलानी डलवा रहे हैं। मन्दिल (भूसा-घर) का टोपा छवा रहे हैं। घर फेरवाने के लिए पोखरी में से मिट्टी डलवा रहे हैं। जल्दी-जल्दी आवाँ में खपड़े पका रहे है और खेत में दूबा गोड़ रहे हैं। कुछ ऐसे दीर्घ-सूत्री हैं, जो अब भी निश्चिन्त हैं। नीरू की माँ रोज भूँकती है कि पलानी छवा लो, खपड़े पकवा लो, भूसा-घर पर का टोपा छवा लो परन्तु सुमेश को तो कोई मजूरा मिलता ही नहीं। और अपने काम करने से रहे। अभी तक खलिहान में खूँटी का पैर पड़ा हुआ है। सब के खलिहान कब के उठ गये; किन्तु सुमेश की खूँटी

तो हर साल ऐसे ही पड़ी रहती है। और गाँव के आवारा पशु आ-आ कर साफ कर जाते हैं। किन्तु सुमेश को कोई मजूर नहीं मिलता है। नीरू की माँ के कहने झगड़ने पर सुमेश यही कहते कि मजूर नहीं मिलते तो क्या अपनी जान दूं ?

'लेकिन तुम तो घर बैठे ही बैठे सब कुछ फैसला कर लेते हो। दुनिया भर को मजूर मिलते हैं, तुम्हीं को नहीं मिलते !'

'हाँ हाँ, नहीं मिलते; ऐसा मेरा आँगछ है।'

और जब बरसात चिरती है और टूटा-फूटा खपरैल झरने लगता है तो पति-पत्नी में खूब कचकच मचती है। सुमेश कुछ देर तक गाल पर हाथ रखे सुनते रहते हैं, फिर बरस पड़ते हैं। और गला फाड़-फाड़ कर चीखते हैं और फिर खपरैल पर चढ़कर यहाँ-वहाँ के खपड़ों का उलट-फेर करते हैं। लड़कों को भी तंग करते हैं। लड़के पानी में भींग-भींग कर भी बड़े उत्साह से काम करते हैं। फिर किसी कमजोर धरन पर, बड़ेर पर थुन्ही लगाते हैं। फिर लम्बा सा बाँस लेकर टूटे-फूटे नाबदान को हंड़होरते हैं जिससे आँगन में बजबजाता हुआ पानी कुछ मात्रा में बाहर बह जाता है।

'मगर भूसे का तो सर्वनाश हो गया। कभी से रट रही थी कि टोपा छवा डालो, टोपा छवा डालो, लेकिन यह मरद तो किसी की कुछ सुनता ही नहीं !'

'मरद क्या करे, ससुरा हरवाहा नहीं आता; तो मरद अपनी जान दे !' इस तर्क से जैसे वह अपने को सन्तुष्ट कर लेते हैं।

कभी-कभी अपनी माँ के साथ ही साथ नीरू अपने प्रबल तर्क से बाप को वेध डालता और निरुत्तर बाप के सामने गला फाड़-फाड़कर चीखने के अलावा कोई चारा नहीं रहता।

'बरखा बन्द होते ही कोई उपाय करूँगा।' नीरू का बाप कहता मगर बरखा बन्द होने पर वह ऐसे निश्चिन्त हो जाते जैसे फिर बरखा होगी ही नहीं। और फिर लडाइयाँ होतीं। फिर तीन-चार बरखा के हो जाने पर किसी तरह मन्दिल का टोपा छाया जाता और सब चीजें वैसे ही चलती रहतीं।

सो अभी तक बारिश नहीं हुई और न होने के कोई लक्षण नजर आते थे। लोग चिन्तातुर आँखें उठाये आसमान को देखते रहते और कुछ पिछड़े लोग अपना-अपना काम पूरा करने के लिए दौड़-धूप कर रहे थे। मगर सुमेश पत्नी-पुत्र के भूंकने पर भी एकदम निश्चिन्त थे।

छोटे-छोटे लड़कों का झुण्ड हल्ला करता हुआ इधर ही आ रहा है। सबके सब नंग-धड़ंग हैं, कीचड़ से लथ-पथ हैं।

'काच कचौटी पीयर धोती मेघा सारे पानी दे।'

गा रहे हैं और दरवाजे-दरवाजे लोट रहे हैं। घर-घर के लोग उनके ऊपर पानी फेंक रहे हैं और लड़के और विह्वल होकर चिल्लाते हैं 'काच-कचौटी पीयर धोती मेघा सारे पानी दे।'

ऐसा विश्वास है कि काच-कचौटी खेलने से पानी बरसता है। किन्तु हाय ! पानी की एक बूँद भी नहीं पड़ी। पानी पड़ना तो दूर, बादल का एक टुकड़ा भी आकाश में नहीं आया।

रात हो गयी है। सब लोग अपने दरवाजों पर लेटे हाँफ रहे हैं। ऊमस जैसे साकार होकर जम गयी है। हवा की सांस जैसे किसी काँटेदार जंगल में फँस गयी है, निकल नहीं पा रही है। यह पीपल का पत्ता भी नहीं डोलता। अँगोछे से, बेने से हवा करते हुए लोग बुदबुदा रहे हैं—बाप रे बाप बड़ी गर्मी है, जान निकली जा रही है। ऊपर से ये मच्छड़ कमबख्त उदबेग नाधे हुए हैं। बैल रह रहकर अपनी पूंछ से अपनी देंह पट्ट-पट्ट पीटते हुए खूंटे के पास नाचने लगते हैं, कुंकुरौंछियाँ उनकी देह से चिपकी हुई हैं।

कि कोई गीत सुनाई पड़ रहा है—

बरखू ए बरखू,
कहवाँ तू जा के लुकइलऽ ए बरखू।

बसवाँ की कोठिया लुकइलऽ ए बरखू।

यह बारिश के लिए दूसरी पुकार है। बारिश कहीं छिप गयी है। वहाँ से निकाले नहीं निकलती। उसे तो मजाक सूझा हुआ है और यहाँ खेती-बारी का नाश हो रहा है। अतः यह औरतों का झुण्ड गाँव के बाहर नग्न होकर हल चला रहा है और बरखा को पुकार रहा है—'बरखू ए बरखू.....।'

इस वक्त कुछ विनोदी लड़कियों और बहुओं को विनोद सूझ रहा है। ठीक ही तो है इन को अपने को स्वच्छन्द रूप में व्यक्त करने का अवसर ही कब मिलता है ! थोड़ा सा भी धार्मिक आवरण पाने पर ये फूट पड़ती हैं। बड़े घर की और छोटे घरों की तमाम औरतें जुटी हुई शोर मचाये हुए हैं। प्रायः हरिजनों के घरों की ही औरतें नग्न हैं। बड़े आदमियों की औरतें उनके साथ हैं, इतना ही क्या कम है !

गेंदा लीडर है आज की, मगर मजा ही क्या जब लीडरी निर्विरोध हो। अतः भाभियों की ओर से मास्टर तोताराम की औरत नेता बन गयी हैं। और भाभी-ननद पक्षों से गालियों का शास्त्रार्थ शुरू हो गया। दोनों नेता जूझ गये और उनके दल वाले खिलखिला-खिलखिला कर वाहवाही देने लगे। दोनों नेता परस्पर अंग-मर्दन करते-करते फिर कमर में हाथ डालकर नाचने लगे और तालियों से ताल देती हुई नाच-नाच कर और स्त्रियाँ भी धूल भरे खेत में नाचने लगीं—

चट्ट चट्ट चट्ट चट्ट
चट्ट चट्ट चट्ट चट्ट
कि आ रे गोरी
कि आ रे गोरी
गोरिया तोरे गाल पर मासा
एक दिन चली गड़ासा ना।

ब्राह्मण मंडली के समानान्तर ही बिंदिया और फेंकू हरिजन की पतोहू बहुरिया के नेतृत्व में रास चलने लगा। बहुत देर तक यह लीला चलती रही।

कि सहसा भूत के शकल की एक आकृति खड़ी हो गयी। एक तो अंधकार, दूसरे नाच की मस्ती, किसी को इस आकृति को देखने का मौका नहीं मिला।

जब उस आकृति ने एकदम पास आकर कहा—'डानता है टुम लोग कि हम कौन हैं।' 'अरे भूत' सब लड़कियाँ एकदम चीख उठीं।

औरतें भागने को ही थीं कि वह आकृति बोली—'ना ना हम भूट नहीं हम टो बादल हैं।'

औरतों का भय फिर भी नहीं गया और वे एक दूसरे के ऊपर गिरती-पड़ती भागने लगीं।

फिर वह आकृति खिलखिला पड़ी और बोली—'अरे ओ हरामजादियो, भागती क्यों हो यह तो मैं हूँ।'

अब आवाज से साफ हो गया कि वह आकृति और कोई नहीं; धीमड़ पांड़े की बेटी चमेली है। चमेली स्वांग के लिए गाँव भर में प्रसिद्ध है। उसे बहुत से सिनेमा के गाने भी याद हैं; क्योंकि उसका ममेरा भाई रास-मंडली में है और उसी से सुन-सुन कर उसे बहुत से गाने याद हैं। वह सिनेमा के गानों के आधार पर नये गाने भी बना लेती है। गेंदा उसकी प्यारी सखी है।

'तो यह चमेली है! अरे चलो-चलो, असली मज़ा तो अब आयेगा, चलो-चलो। और सब औरतें फिर जमा हो गईं।

चमेली ने गेंदा का हाथ पकड़ लिया, गाया—

'मैं बादल हूँ तू धरती है'

गेंदा ने पूरा किया—'मैं धरती हूँ, तू बादल'

मैं बादल हूँ तू धरती।
मैं धरती हूँ तू बादल'

फिर दोनों का अनाड़ी नृत्य शुरू हो गया—

'मैं तेरे लिए पानी लाया'
'मैं तेरी राह देखती थी'
'लो मैं आया'
'लो मैं आयी'
'आओ बाँहें मिलाओ, प्यार करें'
'आओ आओ साजन प्यार करें'

'मैं बादल हूँ, तू धरती'
'मैं धरती हूँ तू बादल'

हँसी का कहकहा छाया रहा, परन्तु न बादल ही आया और न धरती का इन्तजार ही खत्म हुआ। आकाश में तारे ज्यों के त्यों जगमगा रहे थे।

२१

आम की फसल इस साल नहीं आयी थी। फिर भी इक्का-दुक्का आम पेड़ों पर लगे हुए थे। किन्तु बारिश के अभाव में आम पके नहीं। तो भी गर्मी में तप-तप कर कुछ सीपिलें कभी-कभी चू पड़ती थीं और इस लोभ से गाँव के कुछ लड़के-लड़कियाँ बागों चक्कर काटते फिरते थे। इस भयंकर गर्मी में आम के बगीचों में कुछ राहत भी मिलती थी।

दोपहर का वक्त था। गाँव की कुछ युवतियाँ बगीचे में सैर-सपाटे के तौर पर चहल कदमी कर रही थीं। अधिकांश लड़के स्कूल चले गये थे। कुछ छोटे-छोटे चरवाहों के लड़के लाल-काली जामुनें चाटते हुए बाग के इस कोने से उस कोने तक घूम रहे थे।

गेंदा दोहरे बदन की तन्दुरुस्त लड़की थी। उसकी मांसल देह जैसे उसकी सँभाल में नहीं आ रही थी। उसका कद मझोला था। मुँह फूला सा, आँखें छोटी-छोटी और नाक आगे की ओर कुछ चपटी थी। उसका ललाट कुछ अधिक चौड़ा और ऊँचा था तथा उसके लम्बे-लम्बे खुले हुए केश पीछे कमर तक लहरा रहे थे। चलती थी तो उसकी देंह थरथराती थी, चलते-चलते कभी-कभी दाँतों से ओठ काट लेती थी, कभी-कभी बाहें मरोड़ कर एक अंगड़ाई लेती थी, कभी-कभी झूठे जमुहाई लेकर अपनी सखी चमेली के कंधे पर फेंक देती थी और फिर उसे अपनी बाहों में भरकर उसके वक्ष को अपने वक्ष पर जोर से दबा लेती और फिर उसके गले में बाहें डालकर टूटती हुई लहरों की तरह आगे बढ़ती थी। कभी लपक कर आम की किसी डाली को नवा लेती और उसके दो-चार पल्लव तोड़ कर दाँत से उसकी ढेपुनी काट-काट कर फेंकने लगती। कभी किसी ओर देखती तो देखती ही रह जाती और फिर झटके से दूसरी ओर सिर फिरा कर और माथा पीछे की ओर झुका कर अपने खुले बड़े-बड़े बाल लहरा देती। और कभी-कभी आँचल फेंक कर टूटती हुई आवाज में कहती—'सखी ?'

'क्या है रे।' चमेली पूछती।

'कुछ नहीं रे' झटके से मुड़ते हुए गेंदा कहती और खिलखिला कर हँस पड़ती।

चमेली की अवस्था सोलह साल के आसपास थी, किन्तु इन दोनों सखियों में धर्म-साम्य होने के नाते खूब पटती थी। चमेली इकहरे बदन की छरहरी युवती

थी । उसमें उन्माद अभी उभार पर था; इसीलिए गेंदा की तरह उसमें अभी बहक बेलगाम नहीं हुई थी । चमेली गेंदा की तरह अविवाहित थी ।

दूसरी ओर से टहलती हुई कुछ और लड़कियाँ आ गयीं, जिनमें लीला, गनपति पाँड़े की बेटी फूला और बैकुण्ठ पाँड़े की बेटी बसन्ती थीं । इनमें सबसे सयानी वसन्ती थी यानी पन्द्रह साल की । उसके ऊपर सद्यःरंजित चूनरी खिली हुई थी । रंग गोरा, कद मझोला, इकहरी पर भरी-भरी देह, आँखें बड़ी-बड़ी और शरमीली, ओठ पतले-पतले ।

फूला अपने नाम के प्रतिकूल साँवली या काली कहिए, लड़की थी । उस के मुँह पर सौन्दर्य का कोई तेज न था । किन्तु लज्जा का पानी अवश्य था ।

'अरे चलो न, वहाँ उस जामुन के नीचे देख वे दोनों साड़िनें घूम रही हैं । कुछ मजेदार बात करती होंगी सब ।' लीला ने कहा ।

'नहीं जी, उनके पास जाने को मेरा जी नहीं होता । न जाने कैसी लड़कियाँ लगती हैं मुझे ।

मगर फूला ने भी जिद्द की—'अरे चलो न वे क्या ले लेंगी हमारा ? जरा दो घड़ी मजा रहेगा ।' और वह बसन्ती को भी अपने साथ ढकेल ले गयी ।

सबके साथ जामुन के नीचे बैठ गयीं ।

'तेरा बियाह कब हो रहा है रे फूला ?' गेंदा ने धड़ल्ले से मुसकरा कर पूछा ।

'हिश, ऐसे भी कोई पूछता है ।' और फूला के काले मुँह पर एक रक्त आभा लहरा गयी ।

'अरे वाह रे लजाधुर, इसमें लाज की बात क्या है ? यह तो एक न एक दिन होना ही है ।' और उसने बसन्ती की ओर प्यासी आँखों से देखकर एक आह खींच ली ।

बसन्ती ने गेंदा का दर्द पहचान लिया और फिर पूछा—'और तेरा गेंदा ?'

'मेरा क्या, मेरा तो भी सचला-पचाल नहीं है ।'

लड़कियाँ हँस पड़ीं । मगर गेंदा तो चैंपियन ठहरी, शरमायी नहीं, चमेली के गाल पर एक हाथ मार कर बोली—'अरी, हँसती क्या है तू, अपना बता ।' 'अपना क्या बताऊँ जो तेरा सो मेरा ।' झटके से कहकर चमेली कुछ शरमा गयी और दूसरी ओर मुँह फेर लिया ।

बसन्ती और फूला दोनों लाज से मर गयीं—कैसी बेहया दोनों हैं । लीला भी संस्कारवश कुछ लाज अनुभव कर रही थी । परन्तु वह लाज स्वभावज नहीं बन पा रही थी । वह अभी यौवना की भाषा से अज्ञात सी थी । लेकिन ये तीनों की तीनों जोर-जोर से हँसती रहीं ।

'वसन्ती, तुझे घमंड हो गया है ।' गेंदा ने बसन्ती का हँसना देख कर अब कुछ अपमान सा अनुभव किया ।

'काहे का ?' बसन्ती झमक कर बोली ।

'यही कि तेरी शादी हो गयी है ।'

'इसमें घमंड की क्या बात है रे गेंदा ।'

'बात न होती तो घमंड करती काहे को ? बड़ा घमंड हो गया है उस काले कलूटे दुलहे पर । मैं होती तो ऐसे दुलहे को लात मार देती ।'

'खबरदार जो अनाप-सनाप बकी ।' बसन्ती तैश में आ गयी और वहाँ से तेजी से उठ कर चलने लगी—'बेहया कहीं की, लाज-शरम तो छू नहीं गयी है कमवख्त को । बहेल्ला बनी घूमती है ।' बसन्ती बड़बड़ाती रही ।

बाद में चमेली के सहयोग से गेंदा न जाने क्या-क्या गालियाँ बकती रही; मगर वहाँ सुनने को कोई नहीं था ।

२२

नीरू ने थोड़ा सा सत्तू लिया और दो सेर आटा। चल पड़ा शहर की ओर। माँ आँखों में आँसू भरे उसे विदा दे रही थी। उसके ओट होते ही फफक कर रो पड़ी, आँचल में मुँह छिपा कर। लीला और केशव समझ नहीं पा रहे थे कि रहस्य क्या है? सुमेश सिवान तक पहुँचाने आ गये थे। इधर माँ सिसक रही थी। छिः वह क्यों सिसकती है? बेटा तो कमाने जा रहा है, रुपये लायेगा, घर भर जायेगा। किसका बेटा नहीं कमाने बाहर जाता है? मगर कोई क्या करे उस माँ के हृदय का, जो अपने अबोध बालक को दूर जाता हुआ देख कर भर-भर आ रहा है। माँ के हृदय में अनेक स्मृतियाँ डंक मार रही हैं। छोटा-सा बालक, क्या नहीं सहा इसने? कभी भी तो सुख से पाल सकी होती! इसके खेलने-खाने के दिन कठोर चट्टानों से टकराने में बीते। कितना सयाना है मेरा लाल! इतना छोटा होने पर भी घर की चिन्ताओं से बेचैन था। उस दिन कहने लगा—'माँ! मैं चाहूँ तो किसी तरह पढ़ सकता हूँ, लेकिन इस घर का क्या होगा? इस लीला का क्या होगा? केशव का क्या होगा? तब तक तो सब कुछ बिक जायगा माँ! मुखिया की निगाह मेरे घर पर अच्छी नहीं है, वह कभी भी मेरी जायदाद नीलाम करवा सकता है या बचे-खुचे खेत भी हड़प सकता है। कमा कर केशव को खूब पढ़ाऊँगा माँ, और पढ़ने की अपनी साध पूरी कर लूंगा।' कितना ऊँचा सोचता है मेरा लाल।

आह! पता नहीं दोपहर को कहाँ रहेगा? रात को कहाँ ठहरेगा? कभी भी बाहर नहीं गया है। कुछ भी दुनियाँ तो नहीं देखी है। आह, यह धूप कितनी तेज है। हे भगवान्! तू ही मालिक है, रच्छा करना मेरे कलेजे के टुकड़े की।

'क्यों रोती है माँ! भइया तो रुपया कमाने गये हैं।' केशव ने माँ के मुँह से आँचल हटाते हुए कहा। माँ ने केशव को खींच कर गोद में भर लिया और उठ कर दूसरी ओर चली गयी।

सुमेश पाँड़े सिवान तक जाकर लौटने लगे तो भरे हुए गले से बोले—'बेटा! देखना, दुनिया बड़ी खराब है, सँभल कर रहना। बरम बाबा मालिक हैं, तुम्हारी रच्छा करें।'

नीरू ने देखा—बाप की आँखें तरल हो गयी हैं, मानों उनकी तरल आत्मा आँखों में उतरा गयी है। नीरू भी रो पड़ा। 'ना बेटा, यात्रा के समय रोते नहीं हैं।' कहते हुए सुमेश ने अपनी आँखें पोंछ डालीं। जाओ धूप हो जायगी। कह कर नीरू को गोद में भर लिया और आशीर्वाद के दो आँसू नीरू के माथे पर टपक पड़े।

नीरू चला जा रहा था। वास्तव में बाबू का दिल बड़ा कोमल है। परोपकार की भावना से ही ये बहुत से काम करते हैं और गाँव वाले इन्हें बेवकूफ समझते हैं। इनमें जो भी दोष हों, लेकिन इनकी आत्मा बड़ी पवित्र है।

पिता के आँसुओं से पुत्र का मन धुल कर स्वच्छ हो गया था। पिता के प्रति उसके भीतर एक नवीन कोमल भाव उत्पन्न हो गया था। माता-पिता, लीला केशव सभी बारी-बारी से उसे रुला रहे थे। आज उसे किसी के प्रति शिकायत नहीं थी। ममता उमड़-उमड़ कर आँखों से फूट पड़ती थी। गन्दे पुराने अँगोछे में एक ओर सत्तू-पिसान की गठरी बँधी थी, दूसरे छोर पर लोटा बंधा था। इस प्रकार नीरू ने उसे अपने कन्धे पर लटका रखा था। किसी तरह माँ ने एक सस्ती जुलहटी धोती और कमीज का इन्तजाम कर दिया था। सिर पर देहाती धोबी से धुली हुई पुरानी धैंपार गांधी टोपी थी। पाँव नंगे थे।

नीरू कुछ भटकता-भटकता रास्ता खोजता-खाजता चला जा रहा था। गाँव के सयानों ने उसे राह का नकशा बता दिया था और एक बार, केवल एक बार वह मिडिल का इम्तहान देने गोरखपुर गया था। इसलिए थोड़ा बहुत रास्ता याद भी था। वह चला जा रहा था।

धूप तेज होती जा रही थी। नंगे पाँव जलती धूल में छटपटा उठते थे और ऊपर सूरज की तीखी किरणें उसके मुँह पर गिर रही थीं। कभी-कभी जलती धूल का झोंका उसके मुँह और आँख पर थपेड़े मारता हुआ निकल जाता था। जब पैर एकदम छौंछिया जाते तो दौड़ कर किसी गुम आदि के पौधे पर चढ़ बैठता था या अपनी सत्तू पिसान वाली गठरी ही पैरों के नीचे पाँच मिनट के लिए डाल लेता। यों वह सहने की ही अधिक कोशिश करता, क्योंकि अब तक उसने यही सीखा था।

आह यह तो नदी का निचाट है। मीलों रेत फैली है, न कहीं पेड़ हैं न पौधे, न कहीं गाँव न गिराँव। चाँदी की तरह चमचमाती रेत, केवल रेत। हिम्मत न होने पर भी नीरू चला जा रहा था। मुश्किल से एक बबूल का पेड़ दीखा। कांटों और बबुरी भरी छांह में आधा घंटा छहाँया। फिर प्यास लगने लगी जोरों से। गला सूखने लगा। हिम्मत करके गया नदी के पास। नदी के किनारे जाकर उसने बिना कुछ खाए-पिए आठ दस अंजुरी ढकर-ढकर पानी पिया। इच्छा हुई कि लोटे में सत्तू घोल कर खा लें, किन्तु इस धूप और जलती धूल में बैठना मुशकिल था। चलो अगले गाँव पर।

वह सोचता जा रहा था कि अगर मल्लाह खेवा माँगेगा तो क्या देंगे ? भला बुरा कहेगा। फिर भी पार तो उतर ही जायेंगे। परन्तु यहाँ नाव भी नहीं थी। नदी में हलान थी। जांघ भर पानी हल कर पार हो गया। गाँव आया। किससे गगरा माँगे, थाली मांगे ? वह जनम का ही संकोची था। किसी से कुछ माँगने में वह गड़ सा जाता था। वह किसी से बिना कुछ कहे कूएँ के पास चुपचाप बैठा रहा। बरगद की छांह बड़ी सुहावनी लग रही थी, ठंडी हवा बह रही थी। उसे झपकी आ गयी। कुत्तों की चिल्लाहट सुनकर वह उठा तो देखा, उसके सत्तू पिसान वाले अंगोछे को चीरते-फाड़ते दो-तीन कुत्ते आपस में लड़ रहे थे। लपक कर उसने कुत्तों को खदेड़ा। मगर उसका अंगोछा फट चुका था और उसमें से सत्तू-पिसान झर रहे थे। खैर लोटा सही-सलामत मिल गया।

उसे भूख खूब लगी हुई थी। इच्छा हुई कि कुत्ते का जूठा सत्तू ही सानकर खा लें, किन्तु उसके गंवई संस्कार ने यह कबूल नहीं किया। कुछ दूर पर कुछ लोग उसकी ओर देख-देख कर मुसकरा रहे थे। इन्होंने देख लिया है कि कुत्ते ने सत्तू जुठार दिया है, ये लोग भी क्या कहेंगे ? भूख, फटा हुआ अंगोछा, फिर घर की याद, एक ममता, वह धीरे से रो पड़ा। कुछ देर बाद उठ कर एक उबहन में लोटा फँसाकर पानी निकाला। हाथ मुँह धोया और फिर खाली पेट दो तीन लोटा पानी पिया। धीरे-धीरे वहाँ से चल दिया।

शाम ढलते-ढलते वह गोरखपुर पहुँच गया। मगर किसके यहाँ ठहरे ? एक समस्या थी। भूख लग आयी थी। थकावट के मारे देह चूर-चूर हो रही थी। पास न पैसे हैं न आटा। फिर शहर का मामला। किसी के यहाँ तो ठहरना ही होगा। मगर किसी के यहाँ ठहरने में उसे बड़ा संकोच लगता था। पता नहीं, कोई क्या सोचे ? कोई सोचे कि देखो सिर के ऊपर बोझ बन कर आ पहुँचा खाने के लिए। यह कल्पना उसे बहुत सालती थी। यद्यपि उसके गाँव के तीन-तीन आदमी थे मगर किसी के यहाँ जाने की हिम्मत नहीं हो रही थी। पता उसे सबका मालूम था; परन्तु देखा किसी को भी नहीं था।

रमेश तो अपने घर का आदमी है, किन्तु वह दूसरे का आश्रित है। मुझे देख कर डाक्टर साहब यदि आँख-भौं चढ़ा लें तो ! तो मैं तो गड़ जाऊँगा। हो सकता है, डाक्टर साहब बाद में रमेश को डांटें कि क्या गाँव भर के लोगों को जुटाया करते हो। ठीक भी है, इस तरह से आश्रित किसी आदमी के यहाँ जाना उसको सताना है। मलिन्द भाई ? वे बड़े आदमी हैं; पता नहीं कि वे शहर में मुझे पहचानें भी या नहीं। उनके यहाँ बड़े-बड़े लोग आते-जाते होंगे, मुझे इस रूप में पाकर वे अपना अपमान अनुभव करने लगें तो ! उसने ऐसी कई कहानियाँ सुन रखी थीं। हो सकता है वे मेरी ओर बहुत ध्यान न दें तो क्या यह मेरी बेइज्जती नहीं होगी।'

'संध्या का ध्यान हो आया। हाँ वह भी तो साथ होगी। वह तो निश्चय ही मुझे पाकर खुश होगी। परन्तु मालिक तो मलिन्द ही हैं, वह क्या कर सकती है? फिर संध्या से मिलने की लालसा उसके मन में लहर उठी।

और पपीहा काका? वे यहाँ उपरेहिती करते हैं, पता नहीं कहां होंगे? लेकिन छेदी तो होगा ही। वहाँ जाने से उन लोगों को भी बुरा लगा तो। और पपीहा काका को उस दिन भला-बुरा कहा था। यदि वे यह सोच बैठें कि लड़ता भी है और खाने भी चला आता है, तो?

वह यही सोचता-साचता रीठ साहब के धर्मशाले के चौराहे के पास खड़ा था। सवारियाँ पों-पों, झमझम करती हुई निकल जाती थीं और वह चौंक-चौंक जाता था।

आखिर वह धीरे-धीरे बख्शीपुर की ओर बढ़ गया। पूछते-पाछते उसने पपीहा काका का मकान खोज लिया। सेठों के बड़े-बड़े दुमंजिले मकानों के बीच एक तंग गली थी, जिसमें दोनों ओर दुर्गन्धपूर्ण नालियाँ वहती थीं। उसी गली में एक मकान के निचले भाग का खुला हुआ ओसार था और उसी से लगी हुई एक तंग अंधेरी कोठरी। यही है पपीहा पांड़े का निवास स्थान। उसी ओसारे के एक कोने में छेदी चूल्हे पर रोटियाँ सेंक रहा था। लकड़ी जलती नहीं थी, शायद घटिया किस्म की थी। छेदी फूँक पर फूँक मार रहा था और आटा गूंथ कर रोटियाँ भी बना रहा था। हवा निकलने का कोई रास्ता नहीं था, अतः सारा का सारा धुआँ उसकी आँखों में फैल रहा था और छेदी की आँखों से अनवरत आँसू गिर रहे थे। पता नहीं, उन आँसुओं में से कितने धुएँ के वंशज थे और कितने घर के मोह से पैदा हो रहे थे, किन्तु थी दोनों की मिली-जुली प्रतिक्रिया। पपीहा पांड़े कहीं जजमानी में विवाह कराने चले गये थे, देर से लौटेंगे। शायद वहीं खाना-वोना भी खा लें। घर से नये-नये आने के कारण गंवई बालक छेदी को शहर काट खा रहा था। रह-रहकर घर की याद उसके दिल में हूल मार रही थी और अकेले में वह रो-रो पड़ता था। इच्छा होती थी कि यहाँ से भाग जाय और माँ की गोदी में बैठ कर खूब-खूब रोये और माँ कहे कि ना बेटा अब तुझे कहीं नहीं जाने दूँगी।

रोटियाँ उससे नहीं बन पा रही थीं अतः वह एक विचित्र प्रकार की गृह-ममता का अनुभव कर रहा था। तभी नीरू ओसारे में संकोच के साथ दाखिल हुआ। छेदी नीरू को देखते ही उठ खड़ा हुआ—'अरे नीरू तुम?' उसने अपनी आँखें पोंछ डाली और लपक कर उसने नीरू को गोद में भर लिया। उसे ऐसा लगा कि गाँव की सारी ममता नीरू के रूप में सामने खड़ी हो गयी है। लगा—जैसे वह गाँव में ही पहुँच गया है। उसने नीरू के सामने लोटा-बाल्टी रख दी और कोठरी में से गुड़ निकाल लाया। 'लो नीरू भइया, हाथ-मुँह धोओ, पानी पीलो और खटिया पर बैठ जाओ। बहुत थके होगे भाई।'

नीरू को ऐसा लगा जैसे छेदी का हृदय विशाल हो गया है या वह पहले ही से था, वह देख नहीं पा रहा था। उसका सारा संकोच दूर हो गया। हाथ-मुँह धोकर पानी पीकर चारपाई पर बैठ गया। और छेदी चूल्हा फूंकता हुआ रोटियां सेकता हुआ गाँव के तमाम समाचार पूछने लगा। उसे ऐसा लग रहा था कि दस-बारह दिनों में ही गाँव क्या से क्या हो गया होगा। माँ कैसी हैं? बहन कैसी हैं? अमुक कैसे हैं? अमुक कैसे हैं? और किसी की शादी ठीक हुई कि नहीं? किसके किसके वरदेखुआ आये थे? और कोई नया हाल हो तो बताओ। इस प्रकार घंटा भर अनावश्यक प्रश्नों का ताँता बाँधे रहा। एक खुराक और आँटा निकाल कर गूँध लिया।

खाना खाकर दोनों एक तख्ते पर सोये। पपीहा पाँड़े बहुत रात गये आये। लेकिन नीरू थकावट से चूर होने के नाते गहरी नींद में सो गया था और नाली से उठने वाली दुर्गन्ध और मच्छड़ों का डंक और भनभनाहट भी उसकी नींद भंग नहीं कर सकी।

सवेरे उठा तो पपीहा पाँड़े सोये हुए थे। नीरू नहा धोकर तैयार हो गया। छेदी से बोला—भाई चाचा जी कब लौटे?

'आधी रात के बाद।' छेदी बोला।

'भई, चाचा जी से मिल नहीं सका अभी सोये हैं और मुझे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड पहुँचना है मास्टरी के चुनाव में। अच्छा भाई बताओ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड किधर पड़ेगा?'

छेदी ने डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का रास्ता बता कर पूछा—'कब तक लौटोगे?' 'कोई ठीक नहीं है, चुनाव पता नहीं कब तक खत्म हो और खत्म होने के बाद मलिन्द भाई से मिलना चाहता हूँ; मलिन्द भाई किस महल्ले में रहते हैं छेदी?'

'भाई सुना है कि गोलघर में रहते हैं। मुझे उनका ठीक पता नहीं मालूम। गोलघर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के आगे है, वहाँ से सीधे उत्तर बढ़ जाना। किसी से पूछताछ कर पता लगा लेना।'

नीरू पूछते-पाछते ६ बजे पहुँचा तो देखा कि सैकड़ों उम्मीदवार डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के सामने मँड़रा रहे हैं। घुटने तक धोती, गाढ़े का कुर्ता, घोंपार गांधी टोपी, कंधे पर जुलहटी तौलिया, पैर में चमरौधा जूता था। फटे हुए नंगे पांव, उम्मीदवारों का यही नक्शा था।

चुनाव दस बजे शुरू होने वाला था। समय आ गया। सभी उम्मीदवार आने जाने वाली मोटरों को चौंक-चौंक कर देखते थे। बड़ी सरगर्मी थी। आपस में कानाफूसी कर रहे थे। नीरू अकेला था। भकुआ बना चारों ओर ताक रहा था। उसका दिल धक्-धक् कर रहा था।

ग्यारह बज गये। डिपुटी साहब नहीं आये। कुछ साहसी उम्मीदवार क्लर्कों से देरे होने का कारण पूछने लगे या औरों की निगाह में अपना प्रभाव जमाने के लिए बाबुओं से बातें करने लगे और बाबू लोग 'हटिये मेरा सिर मत खाइये' कहते हुए उन्हें कमरे से बाहर निकाल देते थे।

बारह बज गये, डिपुटी साहब नहीं आये। उम्मीदवार भूख से तड़पने लगे। होते हवाते एक बजे डिपुटी साहब आये तो चेयरमैन साहब गायब। ले-देकर दो बजे डोला उठा। उम्मीदवार लाइन मे खड़े कर दिये गये। एक-एक करके उन्हें बुलाया गया। उनसे सवाल पूछे गये। नीरू के आगे का उम्मीदवार अब अंदर गया तो डिपुटी साहब ने कहा आपकी सनद देखें। आपकी सनद तो थर्ड क्लास की है और आपने दरख्वास्त में लिखा है सेकेण्ड क्लास ?

उस उम्मीदवार ने कहा 'अरे अउहे वकील साहब ने बताये हैं कि तुम सेकण्ड क्लास है। ऊहो भले आदमी हैं।'

डिपुटी साहब हँसने लगे और कहा—'आपको अबतक नहीं मालूम कि आप किस डिवीजन मे पास हैं। आप इतने बेवकूफ है तो मास्टरी क्या करेंगे ? जाइए तशरीफ ले जाइए।'

नीरू सुनकर मुसकरा रहा था। कि उसका नाम पुकारा गया। उसकी सनद देखकर डिपुटी साहब बहुत खुश हुए। उसके डीलडौल से भी प्रभावित हुए। नीरू को उम्मीद हो चली कि उसकी नियुक्ति हो ही जायगी।

सभी उम्मीदवार हँसते-चहकते हुए अपने जवाबों की तारीफ करते हुए बिखरने लगे। कोई दो पैसे की ककड़ी खरीद रहा था, कोई भूजा, कोई कुछ, कोई कुछ। नीरू के पास एक भी पैसा नहीं था लोगों को खाते देखा तो उसकी जीभ चुटपुटा उठी। वह मूक भाव से गोलघर की ओर बढ़ने लगा। एक उम्मीदवार सड़क के बाजू में बैठकर पेशाब करने लगा तो भंगी ने पकड़ा और डाँट कर बोला—चलो पुलिस चौकी। जानता नहीं यहाँ पेशाब करना मना है। उस उम्मीदवार ने डरकर दुवन्नी देकर भंगी से अपनी जान छुड़ाई। नीरू शहर के इन तीखे-कड़वे घूँटों को बरबस पी रहा था। आगे बढ़ा, एक से पूछा—'भाई गोलघर कहाँ पड़ेगा ? वह आदमी 'वो रहा' कहकर आगे बढ़ गया। नीरू समझ नहीं सका कि 'वो रहा' का क्या मतलब ? तो भी वह उत्तर दिशा की ओर चलता रहा। कुछ और आगे चलने पर उसने एक कचहरिहा देहाती से पूछा—'भाई गोलघर कहाँ है ?'

'आओ मैं भी वहीं चल रहा हूँ।' नीरू साथ हो लिया।

'यह है गोलघर भइया, किसके यहाँ जाना है ?'

'मेरे गाँव के एक मलिन्द भइया हैं उन्हीं के यहाँ जाना है। मैं जानता नहीं कहाँ रहते हैं ? मैं तो पहली बार शहर आया हूँ।' नीरू बोला।

'अच्छा कोई बात नहीं मैं पूछता हूँ उस पान वाले से । क्यों भाई पान वाले, यहाँ कोई मलिन्द बाबू रहते हैं ?'

उसने पान लगाते हुए और बिना इस आदमी की ओर देखे जवाब दिया—'मुझे नहीं मालूम ।'

'देखा भइया ! अरे ये शहर के आदमी हैं, जानते भी हैं तो नहीं बताते ।' वह देहाती व्यंग्य से बोला ।

नीरू उस देहाती के साथ आगे बढ़ा तब तक नीरू ने देखा कि रेक्शे पर मलिन्द इधर को ही आ रहे हैं । वह खुशी से चिल्ला उठा—'अरे मलिन्द भइया !'

मलिन्द अपने किसी साथी के साथ टेनिस रैकेट लेकर टेनिस खेलने जा रहा था । आवाज सुनकर रेक्शा क्षणभर के लिए रोका ।

देखा फटे हाल नीरू उसकी ओर लपका आ रहा है । 'अरे नीरू तुम कब आये ?' मलिन्द ने एक निर्लिप्त भाव से पूछा ।

'कल शाम को आया, मास्टरी का चुनाव था ।'

'अच्छा अच्छा और सब ठीक है न !

'हाँ ठीक ही है ?'

'गाँव की हालत कैसी है ?'

'ठीक है ।'

'अच्छा तो चलें, देर हो रही है ।'

नीरू हक्का-बक्का रह गया और मलिन्द रेक्शे पर उड़ गया । नीरू के दिल को बड़ा धक्का लगा । देहाती ने पूछा—'क्या है भइया मिल गये, इन्हीं के यहाँ जाना है !'

'हाँ भाई इन्हीं के यहाँ, इन्हीं के यहाँ जाना था मगर इन्होंने तो कोई बात ही नहीं पूछी ।' नीरू ने उदास होकर कहा ।

'अरे भइया अभी शहर में नये आये हो न । ये सब शहरी ऐसे ही होते हैं, अपने बाप को तो पूछते ही नहीं, ह ह ह ह ।'

'अच्छा भाई आप जाइए, आपने मेरे लिये बड़ी तकलीफ की, अब मैं लौट जाऊँगा ।'

'तकलीफ काहे की भाई, यह तो शहरी बोली है । अच्छा जाता हूँ ।'

नीरू सोचने लगा कि क्या करूँ ? इतनी साध से इनके यहाँ आया था मगर इन्होंने तो बात भी नहीं पूछी मुझसे, बात करने में भी जैसे इन्हें अपमान मालूम पड़ा हो । गाँव पर कितनी बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, प्यार जताते हैं, मगर यहाँ एक बार भी घर चलने को नहीं कहा । मैं क्यों जाऊँ इनके घर ? बेहयाई करके जाऊँ भी तो आने पर पता नहीं क्या सोच लें ।

वह उल्टे पाँव चलने को हुआ कि संध्या की याद रास्ता रोक कर खड़ी हो गयी। 'इतने दिनों बाद आये और मुझसे बिना मिले चले जाओगे नीरू!' संध्या का स्वर जैसे उसके अन्तस्तल में तैर गया।

'क्या करूँ संध्या, तुम्हारे भाई ने एक बार भी घर चलने को नहीं कहा, नहीं तो तुम्हारे इतने पास आकर भी बिना मिले चला जाता।' नीरू का दर्द भीतर ही भीतर काँप रहा था। उसने फिर पीछे को पैर बढ़ाया फिर संध्या राह रोक कर खड़ी हो गयी। नीरू भूख-प्यास से लड़खड़ा गया था। सोच नहीं पा रहा था कि वह क्या करे?

'और यदि संध्या भी शहर में आकर भूल गयी हो तो, तो क्या करूँगा? मगर नहीं ऐसा नहीं हो सकता। जो भी हो चलो पपीहा काका के यहाँ लौट चलें कल घर चले जायेंगे। छेदी चाहे जैसा भी हो मगर उसके दिल में गाँव के प्रति कितनी ममता है? फिर इस भूख-प्यास और परेशानी के बीच घर की ममता उमड़ आयी और वह देहाती बालक रो पड़ा फिर तौलिए से आँख पोंछ कर एक आदमी से पूछा—'भाई बख्शीपुर को रास्ता कौन जायगा?'

'यह देखो इस गली को पार करने पर एक सड़क मिलेगी वह सीधे पश्चिम को जायगी। उससे चल कर सीधे बख्शीपुर पहुँच जाओगे।' उस आदमी ने रास्ता बता दिया।

नीरू गली में घुसा और थका-थका-सा खामोश निगाहों से सामने देखता चलने लगा। अँतड़ियों में दर्द हो रहा था। थकावट के मारे नस-नस दुख रही थी। मुँह उतर गया था। ओठ चट-चट बोल रहे थे।

'नीरू' किसी ने पुकारा। अरे कौन है मुझे पुकारने वाला? आवाज तो संध्या जैसी है। नीरू ने आगे-पीछे अगल-बगल झाँक कर देखा, कोई दिखाई नहीं पड़ा। ऊपर से संध्या ने खिलखिला कर कहा—'अरे जरा ऊपर देखो मैं यहाँ हूँ।'

नीरू ने ऊपर देखा—संध्या ही थी। छत की रेलिंग पकड़ कर झुकी हुई थी। नीरू सहम गया।

'आओ आओ अन्दर चले आओ, ठिठक क्यों गये? रुको मैं आती हूँ।' कहकर संध्या धमधम सीढ़ी से नीचे उतर गयी। और उसे अन्दर लिवा गयी। ड्राइंग रूम में बैठाया।

इस अप्रत्याशित मिलन से नीरू बहुत आह्लादित हुआ। उसे संध्या से मिल कर ऐसा लगा कि वह अपने घर आ गया है। ड्राइंग रूम में एक नजर फेरी, खूबसूरत चित्र टँगे थे। टेबुल पर गुलदस्ता सजा था। चार-पाँच सुन्दर कुर्सियाँ लगी हुई थीं। एक ओर आलमारी में सुन्दर जिल्द वाली पुस्तकें सजी हुई थीं। नीचे एक बढ़िया सुन्दर दरी बिछी हुई थी। नीरू ने यह सब देखा। उसका दिल एक नये प्रकार के रोब से अभिभूत हो उठा। उसे अपनी भूख का ख्याल हो आया।

'संध्या ! बड़ी भूख लगी है कुछ खिलाओ न ।'

संध्या नीरू को देखकर इतना आनन्दविभोर हो गयी थी कि खाने-पीने की बात पूछना भूल गयी थी । नीरू की बात सुनकर मुसकरा कर बोली—'मैं तो भूल ही गयी थी, अभी लायी ।'

संध्या अन्दर गयी और एक प्लेट तला हुआ आलू चिप्स लाकर टेबुल पर रख दिया । कहा—'खाओ ।'

नीरू खाने लगा। उसकी आँखें संध्या की प्रसन्न आँखों से खेलती रहीं । कितनी मोहक है संध्या । शहरी शृंगार पाकर यह देहाती स्वस्थ सौन्दर्य कितना खिल गया है । उसमें कितनी शालीनता आ गयी है । देखा—संध्या की आँखें आँसू से तर हो गयी हैं, उसका ध्यान नीरू के फटे कपड़ों और गरीबी से आहत उसके रूखे चेहरे पर टिका था । नीरू की आँखों ने संध्या की आँखों की तरलता को छू लिया । पता नहीं कौन-कौन से दर्द उसकी आँखों में गीले होकर उमड़ पड़े ।

'यों तो तुम्हें आना ही चाहिए, यह तो तुम्हारा घर है मगर क्या किसी खास काम से आये थे ?' संध्या ने पूछा ।

'हाँ, आया था प्राइमरी स्कूल की मास्टरी के चुनाव में ।'

'क्या कहा ?' संध्या ने अचंभे से पूछा ।

'ठीक कह रहा हूँ संध्या । इसमें चौंकने की क्या बात है ? हम जैसे गरीब इसीलिए बने होते हैं ।' उसने सिर झुका लिया ।

'तुमने अपने सारे सपनों को गला घोंट दिया नीरू ! तुम्हारे जैसे होनहार लड़कों पर ही तो देश का भविष्य है । मेरे मन में तुम्हारे भविष्य की पता नहीं कितनी सुन्दर-सुन्दर रंगीन तस्वीरें हैं । ओह नीरू, तुम यह सब क्या कर रहे हो ?'

नीरू थोड़ा मुसकराया । 'उन तसवीरों को फाड़कर फेंक दो संध्या । मजबूरियों में मैं जकड़ गया हूँ । और तुम तो ऐसी बात कर रही हो जैसे कुछ जानती ही नहीं हो । अब तुम्हारा नीरू गरीबी की कब्र में अपने सुन्दर भविष्य को दफनाने जा रहा है ।'

संध्या फफक कर रो पड़ी । उसकी इच्छा हुई कि काश वह नीरू की मदद कर पाती ! उसका वश चलता तो वह उसे अपने पास ही रखती और पढ़ाई का सारा खर्च देती । मगर वह एक धनी घर की बेटी होने पर भी अधिकारों में नीरू से भी अस्सहाय थी । उसके पास क्या है जो नीरू को दे सके ।

संध्या मुझे ऐसा डर लगता है कि हमारे तुम्हारे रास्ते हमेशा के लिए अलग हो रहे हैं जो कभी नहीं मिलेंगे ।'

'ऐसा न कहो नीरू । तुम बड़े कठोर होते जा रहे हो । ऐसा न कहो ।'

'नहीं कहूँगा संध्या, नहीं कहूँगा । तुम्हें तकलीफ होती है तो नहीं कहूँगा । आँसू पोंछ डालो संध्या ।' संध्या आँसू पोंछने लगी, किन्तु वे आँसू नीरू की आँखों में आ गये ।

जूतों की आवाज सुनाई पड़ी। लगा कि मलिन्द आ रहे हैं। संध्या उठ कर अन्दर चली गयी। नीरू ने अपने आँसू पोंछ डाले।

'अरे नीरू तुम, तो तुमने कहा क्यों नहीं कि मैं आपके घर चल रहा हूँ। अरे भले आदमी मकान खोजने में दिक्कत तो हुई होगी। अच्छा, अच्छा किया जो आ गये।' मलिन्द बोला।

नीरू का संकोच कम हुआ। उसने सोचा कि बड़े आदमी हैं जल्दी में रहे होंगे, कुछ खास पूछने का मौका नहीं लगा होगा। नहीं पूछा होगा। इसमें अपमान की कौनसी बात है? इस तर्क से उसका दिल कुछ हलका हुआ, किन्तु जैसे वह स्वयं इससे सन्तुष्ट नहीं हुआ।

'हाँ तो कैसे आये थे नीरू भाई?'

'प्राइमरी स्कूल की मास्टरी के चुनाव में।'

'आ हा, मगर किसी की सिफारिश भिड़ाई है?'

'नहीं तो, मगर उसकी क्या जरूरत है? मेरी सनद तो फर्स्ट क्लास है। लोग मेरे जवाबों से काफी प्रसन्न दिखे।' नीरू ने भोलेपन से उत्तर दिया।

मलिन्द नीरू के भोलेपन पर थोड़ा मुसकराया। 'अच्छा तो ठीक है भगवान् करे तुम आ जाओ। मगर इतनी जल्दी क्या थी नीरू? तुम इतने तेज विद्यार्थी हो, पढ़ाई बन्द कर देना मुझे अच्छा नहीं लगता।'

'अच्छा तो मुझे भी नहीं लगता पर करूँ क्या?'

'हूँ' कह कर मलिन्द चुप हो गया। खा-पीकर सब सोये। नीरू की बड़ी इच्छा थी कि संध्या से बहुत-बहुत सी बातें करें और संध्या को भी; मगर मलिन्द दोनों के बीच पहाड़ बन कर आ गया सो पड़ा रहा। रात धीरे-धीरे सरकती रही।

२३
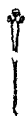
पानी नहीं बरसा, नहीं बरसा, किन्तु किसान कब तक इन्तज़ार करते बादल का। जलती धूल में ही बीज छींटने लगे, क्योंकि बावग का मौसम बीत रहा था। किन्तु आज सुबह से ही मौसम कुछ रंग बदल रहा था। कुछ गीली-गीली पुरवा हवा चलने लगी थी और आसमान भी कुछ श्यामल आभा से रंजित हो रहा था। तिजहर होते-होते बादल घिर आये। सनसना कर हवा लहर गयी और आसमान धरती की जलती छाती पर अपने को निछावर करने लगा। झर-झर-झर फुहारों ने क्षण मात्र में जमीन को भिगो दिया। बादलों की ठंडी-ठंडी तरल परछाइयाँ किसानों की आँखों में तरने लगीं। पशु-पक्षी आनन्द से हूँकने-कूकने लगे। पानी के स्पर्श से उमस से व्याकुल प्राणियों के रोयें खिल गये। झर-झर झर-झर फुहारों ने आसमान को कुहरे के समान ढँक दिया। धरती से सोंधी-सोंधी सुगन्ध फैलने लगी। पानी बरसता रहा, बरसता रहा। पानी की मोटी-मोटी धाराएँ गलियों और नालियों से हरहराती हुई गढ्ढों और पोखरों की ओर दौड़ने लगीं और देखते-देखते ताल भर गये।

नीरू अपनी माँ और पिता के साथ घर के भीगते हुए सामानों को यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ टकसाने में व्यस्त रहा। फिर भी उसके घर में एक-एक बित्ता पानी जमा हो गया। दीवारें भींग गयीं। मगर तो भी क्या ? खेतों के लिए इस पानी की जरूरत तो थी ही इसलिए यह इन्हें अखरा नहीं।

किसान आँखें मूँद कर इन्द्र भगवान् को आशीर्वाद दे रहे थे। दो घंटे बाद पानी थमा। पेड़ों पर एक नयी रंगत खिल गयी थी। बागीचों में एक नयी सघन हरियाली कसमसा उठी और चारों ओर से मेढकों का 'मेको-मेक, मेको-मेक' ध्वनित हो उठा।

दूसरे ही दिन बीजों में अंकुर निकल आये। गाँव से लेकर सिवान तक की धरती रोमांचित सी दीखने लगी। अमराई में झूले पड़ गये, कहीं गाँव में ही बरगद या नीम की डाल पर ही झूले लटक गये और गाँव बालाओं के स्वच्छन्द कंठों से गीत उमड़ पड़े। लम्बे-लम्बे पेंगों के साथ कजली की धुनि ऊँचे नीचे लहराने लगी—

'हरि हरि पिया गये परदेस
खबर ना लीनी ए हरी।'

वही बिछोह का दर्द । मौसम की रंगीनी और बिछोह की तड़प ने वातावरण को एक अजीब दर्द से भर दिया है । अंखुवाए मुसकराते पौदों पर बारी-बारी धूप-छाँह तैर रही है । पेड़ों की गोद में चातक 'पी कहाँ ! पी कहाँ ।' पुकारे जा रहा है । धान, कोदो, बाजरे, सन, मेड़वा, पटुवा, टांगुन, मक्के के खेतों का सौन्दर्य मौजें मार रहा है । फिर भी जैसे एक अभाव, एक आशंका एक बिछोह इन सबके अन्तराल में रेंग रहा है । और जैसे वही गीतों में दर्द बन कर सिहर रहा है—

'एक बेर अवतऽबालू फेरो चलि जइत आरे रामा
धइले चुनरिया मुरझाले ए हरी ।'

पौधे बढ़ रहे हैं । काली घटा आकर बरस जाती है और मानो वही बरसी हुई काली घटा पौधों की आत्मा में समा कर उमड़ने लगती है । सोहनी पड़ गयी है । झुण्ड की झुण्ड मजदूरिनें धानों में कतार से बैठी हैं । हाथ चल रहे हैं । मगर हाथ से तो खेतों का मैल कटता है और गीत से जीवन का मैल । 'अरे गा रे समरजिया । बैठी क्या है ?' सखी उसकी कोख में खोदती है । खिल-खिल खिल-खिल हँसी का फेन बिखर जाता है । 'तो तू ही क्यों नहीं गाती रे सौत ! दूसरों को ही कहने को है ।' अच्छा गा रे साली गा मैं कढ़ाती हूँ ।'

रामा नाहीं पिया अइलें फुहार में
आरे साँवलिया
सब सखियाँ मिल झूला झूलें
हम बैठी अपने ओसार में
आरे साँवलिया ।
रोइ रोइ काटहु बैरी बरखवा
तोर पिया अइहें कुवार में
आरे साँवलिया ।

वर्षा की झड़ी शुरू होती है 'दिड़ दिड़िम दिड़ दिड़िम' बादल गरजने लगते हैं । फुआर तेज हो रही है । मजदूरिनें भागती हैं । 'कहाँ जाती हो रे हरामजादियो ? मजूरी की है कि तमाशा है । लौट आ नहीं तो मजूरी काट लूँगा ।' मालिक गरजता है ।

'अरे मालिक तेज पानी हो गया है । भींग जाने पर घर पर पहनने को नहीं है ।' 'अरे मालिक जड़ाइ पकड़ लेगी, मेरा छोटा-सा बच्चा जाड़ा से तबाह हो जायगा ।'

'बड़ी सुकुमार हो न तुम लोग, क्या कहने ? इतने नखड़े थे तो काहे को काम करने आयी । घर में पलंग पर लेटी रहती । लौटो, लौटो, नहीं तो शाम को खाली-खाली लौटोगी ।'

'अरे चल रे यह नहीं मानेगा बड़ा जालिम है।' सब बुदबुदाती हैं। सबकी आँखों में बंगाल में बसे प्रियतम उतरा जाते हैं।

मेह बरस रहा है, गीत ठंडे हो रहे हैं। देंह गड़गड़-गड़गड़ काँप रही है, ओठ थरथरा रहे हैं। मैली साड़ी और झुल्ले मांसल अंगों में चिपक रहे हैं और छाता लगाये मालिक उनके उठे हुए अंगों पर निगाह धँसाये रह-रहकर बड़बड़ा उठता है, 'सालियों, सोहती क्यों नहीं तुम लोग।'

वर्षा चुक जाती है। मजूरिनें साड़ी का आधा भाग निचोड़ कर सुखाने के लिए सिर पर डाल लेती हैं। और फिर सिमसिमायी साड़ी के आधे भाग को एक-दूसरे की आड़ कर-करके पहन लेती हैं और आधे भाग को निचोड़ कर सिर पर डाल लेती हैं।

ताल का घाट मोथों से भर गया है, क्योंकि खेतों से निकाले गये खर ताल में धोये जा रहे हैं और मजूरिनें भींगी हुई घास सिरों पर सँभाले हुए मालिक के घर लौट रही हैं।

'नाग पंचमी का त्योहार आ रहा है। शाम को गाँव के गोइड़ का खेत चिक्का और कबड्डी खेलने वालों से भर उठता है। बड़े उत्साह से लड़के चिक्का शुरू करते हैं। न खेलने वालों को उत्साही लड़के घसीट लाते हैं और हर शाम चिक्कों का अन्त गाली-दोदी और गाली-गलौज से होता है।

फसलें लहरें मारती हुई उमड़ रही हैं। उमड़े हुए धान दिगन्त तक फैले हुए हवा के झोंको के साथ झूम उठते हैं। दिन प्रतिदिन कंठों के गीत गदराते जा रहे हैं और झीनी-झीनी फुहारें रोज इन्हें सींच जाती हैं।

आँखों में फसलों की घटाएँ सुनहले शरद की तसवीर खींच रही हैं। हे भगवान्! इस बार तो फसल दे दो। रब्बी में हुआ ही क्या? यदि यह फसल भी नहीं हुई तो कैसे लोग जियेंगे?

मगर जो होता है वही होगा। सुनने में आ रहा है कि पहाड़ पर पानी खूब बरस रहा है और यहाँ भी दिनरात पानी बरस रहा है। नेपाल के राजा ने पानी का फाटक खोल दिया है। बाढ़ आ ही रही है।

भयानक झपटी और चौवाई चल रही है। सावन का दिन काली रात की तरह गाढ़ हो रहा है। कई दिनों से सूरज नहीं दिखा। मक्के के खेतों के बीच मचान पड़े हुए हैं। केशव मचान पर लंगोट पहन कर नंगी देह बैठा है। ठंडी-ठंडी झपटी में उसकी देंह के रोंगटे खड़े हो गये हैं। गड़गड़ कांप रहा है। हाथों और पावों को एक में समेट कर कुछ गरम होने की कोशिश कर रहा है; मगर सब बेकार। कोई घर से नहीं आ रहा है और खेत छोड़ना खतरे से खाली नहीं।

चारों ओर शोर हो रहा है, राप्ती बढ़ रही है, गोर्रा बढ़ रहा है, मदना में पानी गिर रहा है, खोजवा नाला भर गया। ताल के खेत में पानी गिर रहा है। शैतनवा नाला में भी पानी आ गया। अब खेत बचना मुशकिल है।

गाँव में डुग्गी बजती है। चलो शैतनवा नाले का बाँध बंधने जा रहा है। सारा गाँव एक हो उठता है। सारे बैर-विरोध भूल कर छोटी-बड़ी जातियों के सभी लोग एकत्र हो गये हैं। सैकड़ों बाहें, सैकड़ों पाँव, सैकड़ों सिर प्रकृति के कोप को मुहतोड़ उत्तर दे रहे है। खपाखप कुदालियाँ बज रही हैं। मिट्टी का ढेर इकट्ठा हो रहा है। मुखिया चिटिर-पिटिर, चित्थू, नीरू, टीसुन, धीमड़, बैजू होड़ लगा कर एक-दूसरे को बढ़ावा दे रहे हैं। देखते-देखते ऊँचा बाँध तैयार हो गया।

हे भगवान्! यह बांध ही गाँव का सहारा है, टूटेगा तो परलय हो जायगा।

शैतनवा नाला उफन उठा है। बाँध की ऊँची सतह एक हाथ और बाकी है। अब फूटा तब फूटा। भाइयो चलो बाँध को और ऊँचा करो। राप्ती नदी शैतनवा नाले के द्वारा परलय का मुंह बाये हुए आ रही है। गोर्रा का पानी दूसरी ओर से नीचे के खेतों में फैल रहा है। लोग लहलहाते खेतों की फसलों को उखाड़-उखाड़ कर अपने बेटे के शव की तरह कंधे पर लाद-लाद कर घर ला रहे हैं।

रात के पिछले पहरों में आँधी की सी हरहराहट गाँव में गरज उठी। आखिर वही हुआ जो होना था। पड़ोसी गाँव के लोगों ने रात को बाँध काट दिया क्योंकि इधर का पानी उधर फैल रहा था।

घुर-घुर घुर-घुर पानी की धारा गड़ही में गिर रही है। गड़ही और खेत देखते-देखते एक हो गये। गाँव के चारों ओर छाती भर पानी बहरा उठा। पानी ही पानी। आदिगंत सफेद-सफेद फेन फैलता जा रहा है।

राप्ती और गोर्रा एक हो गयीं। नदी-नाले, ताल-पोखरे सभी जल की सफेद गहराई में विलीन हो गये।

ह-ह-ह-हास—ह-ह-ह-ह-हास—भेंड़िया उछल रही है। तेज पुरवा हुहुकार रही है। ऊपर से पानी बरस रहा है। और बाढ़ की ऊँची-ऊँची तरंगें हहहास—हहहास गरज रही हैं। किसान नदी नालों को पार कर दूर-दूर के खेतों तक जा रहे हैं और फसलों को उखाड़-उखाड़ कर पशुओं के लिए ला रहे हैं। साँप, पशु पक्षी और मुरदे आदमी बहे जा रहे हैं।

पांड़े लोगों का झुंड खेतों की फसल बांध कर खोजवा नाला पार कर रहा है। रग्घू बाबा ने अपनी कमर में बोझ की रस्सी बाँध ली है। बहाव तेज है। रग्घू बाबा बहकर भेंड़िये में जा पड़ते हैं और ऊपर-नीचे उभ-चुभ होने लगते हैं।

'अरे सब लोग तो पार हो गये मगर रग्घू बाबा कहाँ गये?' नीरू चिल्लाया।

अरे वो देखो किसी का सिर ऊपर नीचे हो रहा है। नीरू ने लपक कर डुबकी लगाई। जाकर हँसिये से रस्सी काट दी और सिर के धक्कों से उन्हें पार लगाया। आँधी का सा शोर चारों ओर चीख रहा है। धारा में दूधनाथ पाड़े असहाय उलट

गये हैं । चिल्लाते हैं परन्तु बोल फूटने के पहले ही हवा में उछलता पानी का थपेड़ा उनके चेहरे को डुबा देता है । साँस अफना उठती है, आँखों में परिवार का मोह उभर आता है । फिर बोलते हैं फिर थपेड़ा । इस अथाह प्लावन में एक शरीर की क्या हस्ती ? तिनके सा वह बहता जा रहा है--बहता जा रहा है अनदेखा, अनसुना । और फिर सब कुछ समाप्त ।

आसपास के नीचे के गाँवों में भी पानी पैठ गया है । गाँव की गलियों में घुटने भर पानी जमा हो गया है । घर गिर रहे हैं । लोग और पशु डूब रहे हैं । ऊँची-ऊँची मचानें डाल कर बाल-बच्चों के साथ लोग उस पर बैठे किसी नाव का इंतजार कर रहे हैं । ऊपर से पानी बरस रहा है, नीचे धारा हाहाकार कर रही है । बीच में हवा हरहरा रही है । मचान हिलने लगती है । लोग कमर भर पानी में कंधों पर छोटे-छोटे बच्चों को लेकर खड़े हैं । उनके चेहरों को मानों निचोड़ लिया गया है । एक पर्त स्याही जमा हो गयी है । आँखें खोह के समान गहरी, शून्य और स्याह हो गयी हैं, जिनके भीतर जड़ता-जड़ता और कुछ भी नहीं । कुछ-कुछ साहसी लोग पेड़ों पर चढ़ गये हैं । कुछ ने पेड़ों पर मचान बनाकर बाल-बच्चों को जमा कर लिया है । आस-पास डालों पर साँप लटक रहे हैं. हताश, भयभीत और जड़ से । बिच्छुओं के झोंझ पत्तों पर रेंग रहे हैं ।

नाव दिखाई पड़ी । लोग एक आशा से सुगबुगा उठे । नाव कुछ दूर से ही दूसरी ओर निकल गयी । कुछ विलायती बाबू कैमरा लेकर बाढ़ की सैर करने आये हैं । हाँ भाई बहुत सुन्दर सीन है, कैमरा संभालो, वह बूढ़ा कैसा आर्टिस्टिक पोज दे रहा है, उस रोते हुए बच्चे की छटपटाहट और उसे कन्धे पर सँभाले हुए उस देहाती जवान की घबराहट कैमरे में पकड़ लो, लाजवाब चीज होगी ।

बाढ़-पीड़ियों की सहायता के लिए सेठ चोंकर मल ने कई नावें छोड़ी हैं । भाई चलो-चलो चावल-दाल मिल रही है, ले आवें । हाँ, हाँ, पकड़िहा के बगीचे के पास नाव ठहरी है । बाढ़ को चीरते हुए एक-एक घर के कई-कई आदमी वहाँ उमड़ पड़ते हैं । पटवारी वहाँ खड़ा है । एक-एक आदमी को दिला रहा है । घर के दूसरे आदमी भी घुस कर लेने की कोशिश करते हैं; मगर पटवारी रोक-रोक देता है और जिनसे अच्छी जान-पहचान है उन्हें दिलवा भी देता है । सुमेश बीमार थे, केशव छोटा, इसलिए नीरू को जाना पड़ा । मन लटकाये गया और आँखें नीची करके अँगोछा पसार दिया । फिर चुपके से वहाँ से सरक कर सबसे अलग आ खड़ा हुआ । उसे ऐसा लग रहा था जैसे उसे हत्यारी लगी हो । उसे लगा जैसे वह चावल दाल नहीं ले रहा है अपनी आत्मा को जमीन में गाड़ दे रहा है । पर लेना तो था ही । गरीबी में स्वाभिमान कब तक सिर उठा सकता था ? उसका काव्यात्मक हृदय एक चोट से आहत होकर छटपटा कर रह गया ।

नीरू घर आया तो देखा उसके घर की दक्खिनी दीवार भी अररा कर गिर चुकी थी। श्रीमान् पिता गाल पर हाथ धरे बैठे थे। माँ की आँखों से आँसू गिर रहे थे। 'आह मैं इस टूटते हुए घर के लिए कुछ भी नहीं कर पा रहा हूँ।' एक हूक नीरू के दिल में उठी और पसर गयी—'कहीं नौकरी मिल जाये तो कितना अच्छा हो। गरीबी की यह दुर्दशा, यह हीनावस्था, यह हाथ पसारना, कब तक चलेगा ? भगवान् ! मुझसे सहा नहीं जाता।'

नाग पंचमी आ गयी। खेत बह गये, घर गिर गये, चारों ओर से पानी गाँव को घेरे हुए है। घर में कुछ खाने को नहीं है और यह नाग पंचमी आ गयी। लड़के मेंहदी रचाने के लिए आफत कर रहे हैं परन्तु मेहदी कोई कहाँ से लाये। बाढ़ ने जीवन की सारी लाली छीन ली है तो मेंहदी ही कैसे बचती ? कोई बात नहीं बिना मेंहदी के भी चलेगा। सारे गाँव में इस त्यौहार ने एक जान डाल दी है। जमी हुई उदासी कुछ छँट गयी है। लड़कों ने गाँव में ही मुखिया की लम्बी-चौड़ी सहन में चिक्का-कबड्डी खेलना शुरू कर दिया है। लड़कियाँ धराऊँ साड़ियाँ पहन कर पुतली फेंक रही हैं और कजली गा रही हैं।

आज रमेश भी कौड़ीराम से नाव पर चढ़ कर बाढ़ मे बहता-बूड़ता गाँव पर आ गया है, जैसे गाँव में बड़ा मजा है चलो लूट लो।

रमेश ने बातचीत के सिलसिले में कहा—'नीरू भइया मास्टरों की लिस्ट में तुम्हारा नाम तो नहीं है।' नीरू के दिल पर जैसे एक वज्र टूट गया। वह उदास-सा गुमसुम बैठ गया। रमेश ने कहा—'अरे भाई, कैसा अन्याय है कि बहुत से थर्ड कलासी लोग लिये गये और फर्स्टक्लास को नहीं लिया गया।'

अब नीरू को मलिन्द की बात का महत्व जान पड़ा—'किसी की सिफारिश ले गये थे कि नहीं ?'

उसकी आँख भर आयी। उधर चिक्के का कोलाहल मचा हुआ था। लड़कियाँ उदास कंठों से गीत गा रही थीं। इधर नीरू सामने उमड़ती हुई बाढ़ को देख रहा था जिसका न कहीं आदि था न अन्त।

१४

धीरे-धीरे बाढ़ खिसक गयी। धरती विधवा के समान यहाँ से वहाँ तक उदास सपाट और भींगी हुई पड़ी थी। यहाँ-वहाँ कीचड़ था मगर रास्ते खुल गये थे। किसानों की पेशानियों पर चिन्ताओं और परेशानियों की मोटी-मोटी लकीरें उभर आयी थीं। कहाँ जायें? क्या करें? क्या खायें? क्या पहनें? खेत में बोने के लिये बीज कहाँ से लायेंगे? ये अनेक सवाल उनके दिमाग में उभर रहे थे। कोई कहीं भाग रहा था कोई कहीं। मगर किसी को भी नौकरी मिलने का निश्चय नहीं था।

नीरू घर की हालत देख-देखकर तड़प रहा था। 'न पढ़ने ही जा सका, न नौकरी ही कर सका। दोनों ओर से जिन्दगी अकारथ जा रही है। क्या करूँ, क्या न करूँ? उपवास पर उपवास हो रहे हैं, गहने और बरतन भाड़े पहले ही बनियों के पेट में जा चुके। उधार कोई देता नहीं। पहले ही कई सौ रुपयों के कर्ज की काली छाया घर को दबोच रखे है। जिसने एक रुपया दिया उसने दस लिख लिये हैं। मुखिया खार खाये बैठा है, कभी भी अपने रुपयों के लिये खुराफात कर सकता है। खेत रेहन पड़े हुए हैं, खेत में कुछ हो या न हो मगर मालगुजारी तो देनी ही पड़ेगी। कई साल की मालगुजारी बाकी है। अबकी कुर्की होकर रहेगी। लीला विवाह लायक हो रही है, केशव की पढ़ाई का सवाल है। मैं घर में सबसे जेठा लड़का हूँ।' यह सब सोचते-सोचते नीरू का दिमाग चक्कर खाने लगता। उसके शरीर का जोड़-जोड़ टूटने लगता।

उसने अपने पिता से कहा कि बाबू हुरदेख राय से तो आपकी जान-पहचान होगी। बड़े आदमी हैं उन्हीं के यहाँ चलें। शायद कुछ काम-वाम दिला दें अपनी लाइन में।'

'हाँ है क्यों नहीं? उनसे तो हमारा पुश्तैनी सम्बन्ध है। मगर तब वे लोग गरीब थे अब अमीर हो गये हैं। पहचानें कि नहीं कौन जानता है? मगर चलो!' सुमेश बोले।

नीरू और सुमेश रामपुर पहुंचे। बाबू हुरदेख राय घर आये हुए थे। पहचान गये। आओ आओ पंडित सुमेश जी। आजकल दिखाई नहीं पड़ते हैं।

'सरकार हम लोग तो पुश्त दर पुश्त के आपके गुलाम हैं। आप ही को अपने काम से फुरसत नहीं मिलती है, हम लोग तो घर पर ही हैं।

सुमेश की यह हीनता नीरू को खल गयी; मगर काम बनाने की बात थी चुप रहा। 'कहिये कोई खास काम से आये हैं या यों ही।' हरदेव राय बोले।

'हाँ सरकार, एक खास काम है। यह मेरा लड़का है। हमारे घर की हालत तो जानते ही हैं। इसे कहीं काम-धाम मिल जाय तो बहुत अच्छा हो। आपके हाथ हैं कहीं से खींच सकते हैं।'

'हूँ' कहकर राय साहब चुप हो गये।' 'क्या नाम है तुम्हारा बेटा!'

'निरंजन'—नीरू का संक्षिप्त-सा उत्तर था।

'हाँ हाँ, तुम तो स्कूल में पढ़ते थे न। पांड़े जी, इस लड़के की तो बड़ी तारीफ सुनी है मैंने मास्टरों से। इसे आगे क्यों नहीं पढ़ाते।'

'सरकार आप भी कहाँ की बातें करते हैं? पढ़ाने के लिए बेंवत तो चाहिए। अरे सरकार, इसे अपने साथ कहीं काम पर लगा दीजिए, बड़ा एहसान होगा सरकार।'

बहुत देर तक चुप होकर विचारने का अभिनय करने के बाद राय साहब ने उत्तर दिया—'अच्छा मैं इन्हें अपने साथ ले जाऊँगा। मैं परसों जाऊँगा कल शाम तक इन्हें मेरे घर भेज दीजिएगा।'

सुमेश पांड़े कृतज्ञ हो उठा। और नीरू भी एक प्रकार के एहसान से लद गया। इस विह्वलता में तनख्वाह आदि की बात पूछने की कोई आवश्यकता ही नहीं रही।

२५

रायसाहब इस समय चौरीचौरा के पास एक सड़क बनवा रहे थे। नीरू उनके साथ था। वर्षा एक दम चुक गयी थी। क्वार का महीना आ गया था। धूप खूब निखर कर बिछ रही थी जिससे तालू चटक उठते थे, जी तिलमिला उठता था। नीरू दौड़-दौड़कर पाँच-छः मील तक मजूरों के काम का निरीक्षण करता था। रायसाहब की हिदायत थी कि खूब डाँट-डपट कर और गालियाँ दे देकर मजूरों से काम लो। नीरू बहुत कोशिश करने पर भी वैसा नहीं कर पाता। जब कभी वह डाँटने की कोशिश करता, लजा जाता। जब कभी देखता कि पेड़ की छाँह में एक गन्दी गुदड़ी पर कोई बच्चा लेटा-लेटा हाँथ-पाव पटक कर चीख रहा है और उसकी माँ कातर दृष्टि से मेठ और उसकी ओर देख रही है तो हृदय दया से भर आता। और जब वह सबकी अनसुनी करके लड़का पिलाने लगती तो मेठ नीरू को प्रसन्न करने के लिए उस माँ को बड़ी भद्दी-भद्दी गालियाँ सुनाता और माँ बच्चे को वहीं छोड़कर फिर चुपके से काम पर डट जाती। नीरू का दिल मेठ की गालियों से तिलमिला जाता। इच्छा होती इस हरामजादे को खून पी जाऊँ।

कुछ लड़कियाँ मेठ से मिसकी मारतीं और मेठ मुसकरा कर उन्हें खुश करता। लड़कियाँ आपस में चिकोटा-चिकोटी करतीं, हँसतीं, लोटती-पोटतीं और कभी-कभी आपस में झगड़ पड़तीं और एक-दूसरे के जीवन की अनेक अनकही, अनसुनी बातों को तिल का ताड़ बनाकर उगलने लगतीं। मेठ रस लेता हुआ और ऊपर से सबको गालियों से रौंदता हुआ सबको चुप कराता। नीरू को इस दृश्य से बड़ी वितृष्णा हो उठती। वह कहाँ से कहाँ आ गया? कैसी गंवारिन हैं सब, असभ्य, बेहूदी। लेकिन वह तब एक विचित्र प्रकार की उदासी से भर जाता और ये कंकड़, ये पत्थर, यह मिसकी, यह गाली गलौज, मानों सबके सब जीवन की चट्टान सी उदासी तोड़ने के साधन हैं। एक रस मन मारकर काम करते रहना भी तो मुमकिन नहीं। मशीन होते तो दूसरी बात होती।

एक अजीब प्रकार की वदबूदार भन्नाहट से नीरू का दिमाग भर आया। राय साहब कहते हैं सख्ती से काम लो। ये सब नमकहराम हैं इन्हें घंटे भर में दस बार प्यास लगती है, वीस बार बच्चा रोता है, चालीस बार कांटा गड़ता है पैरों में। इनकी नस-नस पहचानो और इन हरामजादियों और हरामजादों को एक मिनट की भी छुट्टी न दो। पैसे लेते हैं कोई मजाक थोड़े न है।

मगर नीरू के संवेदनशील हृदय में राय साहब की बात गहरे उतर ही नहीं पाती, उसे गरीबी का अनुभव था, उसने खेतों में काम किये थे, गड़ही से मिट्टी ढोयी थी, खलिहान में धूप में अनाज दांये थे। वह जानता था कि प्यास लगती है, कांटे कंकड़ गड़ते हैं, धूप लगती है, शीत लगती है।

मगर यह मेठ कितना नीच है कि उन्हीं का होकर उन्हीं का दर्द नहीं पहचानता। भद्दी गालियां बकता है, चपत भी जमा देता है, इसकी आँखों का सुरमा, भद्दी सी हँसी, बड़े-बड़े बिखरे बाल इसकी कुत्सित कहानी कह रहे थे और उसके प्रति नीरू के मन में एक घृणा, एक उदास सी फैल गयी थी।

उसकी इच्छा होती कि मेठ को डांट दे; मगर वह राय साहब से शिकायत जो कर देगा कि ये तो मजूरों का पक्ष लेते हैं और मजूर काम नहीं करते। राय साहब भी मजूरों को ही पीसने के पक्ष में हैं। इसलिए वे झट मुझसे असंतुष्ट हो जायेंगे और फिर मुझे बेसहारा बहना पड़ेगा। वह मन मसोस कर रह गया।

२६

नीरू रोज ६—७ मील तक के फैलाव में बनती सड़क पर दौड़ता। यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ जाकर मजदूरों की निगरानी करता। मेठ नीरू को प्रसन्न करने के लिए मजूरों पर भद्दे क़िस्म की सख्ती बरतता और नीरू को एक धक्का लगता।

नीरू को ऐसा महसूस होता कि उसके भीतर का रस कुछ सूख सा रहा है। वह ऊब जाता, मगर करे तो क्या?

उसे कुछ दिनों में बहुत कुछ मालूम हो गया। एक दिन एक मजूर रोते हुए आया। 'क्या बात है भाई।'

'बाबूजी' यह मेठ मुझे काम पर से निकाल रहा है।

'क्यों?'

बाबूजी बात यह है कि यह जिसे काम पर लगाता है उससे महीने में कुछ पैसे वसूल करता है। पैसे तो आप बांट कर चले आते हैं मगर यह मेठ कुछ बंधी बंधाई रकम वसूल करता है। इस बार मेरी बेटी बीमार है। मैंने नहीं दिया तो काम पर ही नहीं आने दे रहा है।

नीरू कमरे में किसी काम से बैठा था रायसाहब को नहीं मालूम हुआ। वे मेठों से भाव ताव कर रहे थे—देखो महीने में इतना रुपया देना हो तो दो नहीं तो अपना रास्ता देखो, मैं दूसरा मेठ खोज लूंगा।

और एक दिन इसी तरह उसने इन्सपेक्टर की बात सुनी।

इन्सपेक्टर कह रहा था—जनाब फलाँ जगह पर चार फीट मिट्टी पड़ने की जगह पर तीन फीट मिट्टी पड़ी है और फलाँ जगह पर मिट्टी की पिटाई ठीक से नहीं हुई है, फलां जगह पर कंकड़ केवल ऊपर-ऊपर पतला सा कूट दिया गया है। आप लोग जनता की जान, माल के साथ खेलवाड़ करते हैं। हम आपको हिरासत में लेंगे।

'हजूर इतना नाराज क्यों हो रहे हैं? आपको नाखुश नहीं करूँगा।'

'नहीं जी यह क्या, मैं नहीं छूता हराम का माल। मैं कोई सटर पट्ट इन्सपेक्टर थोड़े न हूँ।'

'हजूर, इतने खफा क्यों हो रहे हैं यह रहे पाँच सौ रुपये और।'

एक खामोशी सी छायी रही। फिर इन्सपेक्टर बोला—और यह क्या? इतने बड़े अंधेर को केवल पांच सौ रुपयों में पी जाऊं। डेढ़ हजार से कम न लूंगा।'

'डेढ़ हजार हजूर मुझे क्या पड़ेगा? गरीब मर जायेगा।'

'मैं समझता हूँ आप लोगों की गरीबी।' इन्सपेक्टर हँसा।

और बहुत देर तक रकझक हुई और आखिर हजार रुपये पर बात रुकी। फिर दोनों हँसने लगे।

नीरू अवसन्न रह गया। राय साहब धीरे-धीरे नीरू को पाठ पढ़ाने लगे। 'बेटा, जिन्दगी में कुछ तरक्की करनी है तो आँखें खोलो, दिमाग से कुछ काम लो। पैसा बड़ी चीज है। जब तुम अधिक से अधिक आमदनी मुझे कराओगे तो तुम्हें भी उसमें हिस्सा मिलेगा।'

मगर नीरू के चलते राय साहब को एक भी पैसे का लाभ नहीं हुआ। राय साहब उससे खिन्न होते गये। दो महीने बीत गये। नीरू की माँ बीमार पड़ी। नीरू ने छुट्टी के साथ-साथ कुछ पैसे मांगे। राय साहब ने दो महीनों के अटूट परिश्रम का पुरस्कार उसके हाथ पर रख दिया। नीरू ने देखा दस रुपये का एक नोट। नीरू ने आश्चर्य से राय साहब को देखा। राय साहब ने उसके भाव की उपेक्षा करके कहा—'हाँ, हाँ जाओ, जल्दी आना।'

२७

दो महीने की दस रुपये तनख्वाह पाकर नीरू का दिल बैठ गया। उसे राय साहब के यहाँ काम करने का उत्साह ही जाता रहा।

सुमेश भी उदास होकर रह गया। माँ ने सोचा—बेटा देंह पेर-पेर कर काम करे और महीने में पांच रुपया तनख्वाह मिले। किस काम का ?

नीरू के दिमाग में राय साहब का विकृत चित्र घूम गया। चूसना, चूसना और चूसना ही इन लोगों का काम है। इसीलिए जवार के बड़े आदमी बने हुए हैं। इतना काम किया और इस बदमाश ने दस रुपया देकर विदा कर दिया। हमसे अच्छे तो वे मजूर हैं जो छ आना रोज कमा लेते हैं। माँ की बीमारी का समाचार न मिलता तो शायद यह भी नहीं देता। इतना भी बड़े अहसान के साथ दिया है।

माँ अच्छी हो गयी लेकिन अपने इलाज में उसने उन दस रुपयों में से एक पैसा भी नहीं छूने दिया। वह अब भी कमजोर थी और एक झिलँगी चारपाई पर पड़ी पड़ी गुदड़ी ओढ़े हुए घर का सारा प्रबन्ध करती रहती थी। कभी-कभी घुटनों पर हाथ रखकर कँहरती हुई उठती और अधूरे काम को पूरा करने की कोशिश करती।

खेत बोये जा चुके थे। इस बार मुखिया ने सुमेश को बेंग नहीं दिया। सुमेश ने सुमेस्सर बनिया से कहा। सुमेस्सर बनिया भी बेंग दिया करता था। राजी हो गया।

खेत बोये गये, मगर—वक्त से पिछड़ कर। एक बैल कैसे हल चलाये। हलवाहा भी अपना नहीं। सो सुमेश ने मलिन्द के पिता घनश्याम से कहा। घनश्याम का भी एक बैल इस समय कुछ घाही होकर बेकार पड़ा था। भांज हो गया। दो दिन घनश्याम का खेत और एक दिन सुमेश का।

खेत की बोवाई काफी पिछड़ गयी। नीरू की मां भूंकती रही कि भांज का इन्तजाम कहीं कर लो, कहीं कर लो। मगर सुमेश निश्चिन्त भाव से एक न एक बहाना अपनी अकर्मण्यता का ढूंढ़ कर झल्ला उठता। 'खोज तो रहा हूँ कहीं नहीं मिलता तो क्या करूँ ?' और बीमार पत्नी और सुमेश में रोज झकाझकी मचती। आखिरी क्षण सुमेश ने खोज-खाज शुरू की और भांज मिल गया।

इसलिए बोवाई पिछड़ गई। पता नहीं बात क्या है कि डीभी अच्छी नहीं उगी।

है राम, खरीफ की फसल भी गयी, रब्बी की भी कोई उम्मीद नहीं। बाढ़ का पानी टाइम से खेतों से हटता ही नहीं है कि ठीक से जोताई हो सके। खेतों में बालू भर गया, उस पर भी महाजन लोग जो बीया देते हैं उसमें भी कुछ जादू टोना कर देते हैं। सुमेरसर बनिया और मुखिया के दिये हुए बीज बांझ मालूम पड़ते हैं। जिन लोगों ने बाजार से बीज खरीदा है उनके खेत तो अच्छे उगे हैं मगर गाँव वाले ही इस कदर गला काटने लगे। लेकिन मजदूर लोगों का रोष ही कितना? अगर कुछ कहें तो पर साल से बेंग देना जो बन्द कर देंगे तो फिर कहाँ-कहाँ हाथ पसारेंगे।

सुमेश के खेत तो बहुत बीड़र जमे हैं। पत्नी ने सुना कि एक भी खेत अच्छा नहीं उगा है तो बहुत झल्लाई। मगर सुमेश चीखने लगा कि मैं क्या करूँ? मेरा आंगछ ही ऐसा है कि सब कुछ खराब हो जाता है। क्या मैं बीया खा जाता हूँ?

पत्नी ने उसकी ओर इस कदर देखा जैसे कह रही हो कि हाँ खा नहीं जाते तो क्या करते हो?' पर कुहराम मचने के भय से चुप ही रही।

नीरू ने देखा खेत रो रहे हैं। उसका दिल भी रो उठा। नौकरी-नौकरी-नौकरी उसके दिमाग को चाट रही थी फिर भी कहीं नौकरी नहीं। हुरदेख राय की नौकरी—दो महीने में दस रुपये—दगाबाजी चोरी. . .मजूरों का गला काटना . . .यह सब नहीं हो सकता मुझसे। इधर 'भुखमरी, केशवकी पढ़ाई, लीला का का विवाह, आह! कुछ नहीं होने को। पढ़ाई भी छूटी। और संध्या!' एक विचित्र घुटन से नीरू माथा थाम कर बैठ गया।

सरैया का मिल चालू हो गया था। नीरू ने सोचा कि एक बार उसी मिल में चल कर नौकरी के लिए आजमाइश करूँ परन्तु एक तो कोई पहुँच नहीं है वहाँ, दूसरे अब तो देर भी हो गयी है। वह सोचने लगा कि आज इतवार है शायद पड़ोसी गाँव का रामनारायन कोइरी आया हो, वह वहाँ काम करता है, पढ़ा-लिखा है, सुना है उसकी बड़ी धाक है वहाँ।

नीरू रामनारायन के घर पहुँचा। वह सचमुच छुट्टियों में आया था उससे मालूम हुआ कि हाँ अभी अभी एक जगह खाली हुई है, जिस आदमी की नियुक्ति वहाँ हुई थी वह टी० बी० से मर गया। आप कल मेरे साथ चलिए कोशिश करूँगा।

नीरू की नियुक्ति वहाँ हो गयी फागुन तक के लिए। आठ आना रोज।

पूस की रात ढल रही थी । घने कुहरे में जैसे धरती जम कर जड़ और सफेद हो गयी थी । खेत बाग पानी से नहा उठे थे । टप टप पानी चू रहा था । सर्द हवा के झोंको से पीपल का पेड़ फड़फड़ा उठता था तो रात और गहन हो उठती थी और ओसारे में दुबक कर सोया हुआ कुत्ता अपने घुटनों को पेट में धँसा कर कूं कूं कर उठता था ।

केशव, लीला सुमेश और मां एक कमरे में जमीन पर फटी पुरानी गुदड़ी बिछा कर सोये हुए थे । गुदड़ी के नीचे पुवाल की हलकी पर्त थी जिसे सुमेश कहीं बांगर पर से मांग कर ले आया था । ओढ़ने के लिए भी दो एक फटी फटी गुदड़ियां थीं जिनके नीचे सारा परिवार पड़ा हुआ था । अधिक जाड़ा लगने पर लीला मां को गोद में और केशव सुमेश की गोद में जा चिपटता ।

'सुमेश भाई हो । अरे उठोगे कि सोते ही रहोगे । पानी चलाने का वक्त हो गया ।' बाहर से गनपति पांड़े चिल्लाया ।

'अरे उठो जी, नेताजी पानी चलाने के लिए चिल्ला रहे हैं । उठो जी उठो' पत्नी ने सुमेश को झकझोरा ।

'ऊँह सोने दो अभी बड़ी रात है ।'

'अरे सुमेश भाई हो'

'उठो जी उठो सवेरा हो गया है ।'

'ई ससुरा और सवेरे सवेरे सवार रहता है । आतताई कहीं का ।'

'सुमेश भाई हो ।'

सुमेश उठ बैठा । 'अरे आता हूँ भाई काहे को घिघिया रहे हो' कहता हुआ बाहर निकला तो नेता गनपति खिलखिला कर हँस पड़ा । अरे भाई सब लोगों ने काम शुरू कर दिया ।

गड़ही से आवाज आ रही थी—

छपा-छप्प. . .छपा-छप्पा—, छपा-छप्प । सुमेश ने कहा—अच्छा चलो ।

मां ने उठकर चौका वर्तन किया । गोबर काढ़ कर पाथ लिया फिर भी अभी अंधेरा बाकी था । कुछ कंडे जलाये । आग की गरमी से सर्दी से जड़ी देह में कुछ जान पड़ी । अकेली बैठी-बैठी गुनगुनाने लगी—

ए भरत वीर लवटि चल
घर के तू
ए भरत वीर
माता-पिता क सेवा करिहऽ
सेवा करिहऽ भइया
सेवा करिहऽ.......

केशव सोया सोया सपना देख रहा था। मां का गीत जाड़े की इस भीगी भीगी सुबह में करुणा से काँप रहा था। वह कंपन केशव के सपने में तैर रही थी। वह सपना देख रहा था कि जैसे टीसुन मर गया है और उसकी मां मुरदा के आगे बैठी हुई रो रही है। मानो उसे जिलाने के लिए बरम बाबा से विनती कर रही थी।

'केसो, ओ केसो।' बाहर से कुछ लड़के चिल्लाये।

मां ने लड़कों को अन्दर बुला लिया। सब लड़के पतली पतली गन्दी फितुही लपेटे थर-थर काँप रहे थे। सब लड़के आग के पास बैठ गये। कहने लगे—अरे काकी चलना है पत्ता बटोरने न। केसो को जगा दो। तीन कोस जाना है। जल्दी चलें नहीं तो और लोग बटोर लेंगे।

बच्चों के ओठ गड़ गड़ कांप रहे थे ठीक से बोल नहीं फूट रहा था।

मां ने केशव को जगाया। वह करवट पटक पटक कर जगा और आग के पास बैठगया।

लड़के घर में से निकले तो हवा के सर्द झोंके ने उन्हें काट लिया, लगा जैसे अंग कट कर गिर जायेंगे। लगा जैसे कोई तीखी ठंडी चीज सहसा छाती चीर कर अन्दर घुस गयी। 'अरे माई रे लड़के चिल्ला कर एक कदम पीछे हट गये। फिर हिम्मत करके बाहर निकल पड़े।

एक घड़ी रात अब भी शेष थी—मगर घना कुहरा अब भी आर पार छाया हुआ था। जमीन भींग कर लथपथ हो गयी थी। लड़कों के पावों में जूते नहीं थे। अंगुलियों में बिच्छू के डंक लगने लगे। नस नस झनझना रही थी। खेतों के मेड़ों से गुजरने पर मटर की झपसी हुई लताएँ पावों में जांघ तक लिपट जातीं और पानी से सराबोर कर देतीं। लड़कों के रोंगटे खड़े हो गये थे। अपने में गुड्डी मुड्डी होकर वे ढेले से लुढ़कते हुए सी सी करते हुए आगे बढ़ रहे थे जैसे सफेद चादर पर काले दाग धीरे-धीरे सरक रहे हों। कुहरा उनके खुले हुए सफाचट्ट सिरों पर जम रहा था।

ठंडे-ठंडे बालू की छौंक पैरों को लगी तो मालूम पड़ा कि नदी समीप आ गयी है। कुहरा कुछ-कुछ छँट गया था। गोर्रा के पास का पीपल धुंधला धुंधला सा

दिखाई पड़ने लगा। कौओं की काँव कांव से बसवारी गूंज गयी। मल्लाह उस पार अपनी झोंपड़ी में आग सुलगाये गा रहा था—

उड़ि जा हंसा अमरलोक के
इहाँ केहू ना तुहार

आग की पतली धार लपलपा रही थी और मल्लाह गाये जा रहा था। उस पार पछुवा हवा के झोंके में बँधी नाव तल तल करके खामोशी काट रही थी।

लड़के नदी के किनारे आ गये। पाँव सुन्न हो गये थे। नदी के गरम-गरम पानी में पाँव धोया तो कुछ राहत मालूम पड़ी।

लड़के नदी के इस किनारे खड़े होकर नाव का इन्तजार करने लगे लेकिन मल्लाह का हंसा तो अभी उड़ रहा था आये कैसे ?

लड़कों ने पुकारा भी किन्तु मल्लाह का हंसा किनारे पर नहीं उतरा। उस पार से गन्ने काटने की ध्वनि आ रही थी सपा-सप्प-सपा-सप्प। पत्ते खड़खड़ा उठते थे।

लड़कों ने दातून कुल्ला कर लिया और कुछ मटर के दाने निकाल कर पुड़ुर पुड़ुर पुड़रा लिया।

उस पार के गाँव के जमींदार ने जब गाली देकर बुलाया तो मल्लाह का हंसा जमीन पर उतर आया। वह दौड़ा हुआ आया। नाव इस पार आयी तो लड़के नाव पर कूद कर चढ़ गये।

'खेवा दो।' मल्लाह ने कहा।

लड़के सकुचा कर एक दूसरे की ओर ताकने लगे और फिर नीचे की ओर देखने लगे।

'खेवा दो।' मल्लाह ने कहा

लड़के सकुचा कर एक दूसरे की ओर ताकने लगे और फिर नीचे की ओर देखने लगे।

'ताकते क्या हो ? खेवा दो तो नाव खोलूं।'

एक ने कहा—हमारा घर पांड़ेपुरवा है।'

'पाड़ेपुरवा है तो मैं क्या करूँ। कुछ मिलता है पांड़े पुरवा के बाबा लोगों से ? और नहीं तो हम लोगों के खेत ही उखाड़ ले जाते हैं।' मल्लाह झल्लाया। मगर वह जानता था कि पैसे नहीं मिलेंगे इसलिए बकता झकता भी नाव पार ले गया।

उजास फूट चुका था। फिर भी सफेद कुहरा हलका हलका बिछा हुआ था। नदी के तट के दोनों ओर कास के सफेद वन फूले हुए थे जिनमें कुहरा मिल कर एकाकार हो रहा था। सारस की जोड़ी दूर वहाँ गीली रेत पर धुंधलके में खड़ी थी।

बच्चों का दल आगे बढ़ता गया। बांगर शुरू हो गया था। ईख के कटे अनकटे खेत रास्ते में पड़ने लगे। मजूरे खेत काट रहे थे और उनके गन्दे-गन्दे लड़के खेत के एक कोने में बैठे हुए गन्ने चूस रहे थे। लड़कों का मुंह भर आया। यदि एक गन्ना मिल जाता तो। मगर मांगे कौन? चलो आगे कहीं तोड़ लेंगे। पेड़ के नीचे गुड़ पक रहा था। कैसी सोंधी सोंधी गन्ध आ रही थी। कई लोग घेर कर बैठे हुए थे। लड़कों की जबान में पानी भर आया। थोड़ा सा मिल जाता तो खा लेते। लड़के जाते जाते पेड़ के पास कोल्हुवाड़े खड़े हो गये।

'यहाँ क्या खड़े हो गये चोर की तरह, जाओ अपना रास्ता देखो।' एक आदमी घुड़का। बच्चे सब भयभीत होकर पकते हुए गुड़ को घूरते हुए आगे बढ़ गये।

दिन निकल आया था। कुहरा छँट गया था। लड़के बढ़ते जा रहे थे। उन्होंने देखा कि वे अकेले नहीं हैं। कछार के अनेकों आदमी अनेक रास्तों से बांगर की ओर लपके जा रहे थे। कोई पेड़ पर चढ़ कर पत्ता तोड़ रहा था, कोई जंगल की ओर भागा जा रहा था। यह बरगद का पेड़ है, यह पीपल है। अरे यह तो ठूठ हो गया है। लोगों ने इसके पत्ते तोड़ लिये हैं। यह जंगल आ गया। अरे भाई देखना कहीं कोई जानवर न मिल जाय। जानवर तो नहीं मगर आदमी साखू के पेड़ों पर गादुरों की तरह लटके हुए हैं पत्ते तोड़ रहे हैं पट. . .पट. . .पट।

भाई पत्ते तो बैल बड़े मजे से खाते हैं मगर हम लोगों को चढ़ने आता ही नहीं। चलो हम लोग अरहर के पत्ते ही ले चलेंगे। सुना है पचरुखा के पास अच्छी अरहर है।

लड़के थक गये थे तीन कोस चलते चलते। मगर पत्ता तो बटोरना ही है, नहीं तो बैल खायेंगे क्या?

अनजान जगह, सघन अरहर के खेत, और भयभीत करने वाली अनेक सुनी सुनाई कहानियों के संस्कार। लड़कों का दिल किसी भी तरह की आहट पर कांप उठता था——शायद कोई धरकोसवा आ गया, शायद कोई बगचितवा है, शायद कोई भूत है, शायद कोई चोर है। अरे यह तो कोई नहीं आदमी है।

'कौन हो तुम लोग? क्यों खेत में घुसे पड़े हो? निकलो यहाँ से।'

'बाबूजी गिरे हुए सूखे पत्ते ही तो बटोर रहे हैं कोई हरे पत्ते तो नहीं तोड़ रहे हैं।

'तुम लोग बड़े उचक्के होते हो, देख-दाख कर हरे पत्ते भी तोड़ लोगे। निकलो निकलो यहाँ से।'

गरीब सूरत बच्चे दूसरे खेत में पहुँचे। बटोरते बटोरते हाथ दुख गये मगर बोझ पूरा नहीं हुआ। लड़के आपस में तमाम सुनी सुनाई अजीबो गरीब कहानियाँ कहते रहे और स्वयं सिहर उठते रहे। गाँव के अजीब अजीब लोगों की कहा-

नियाँ कहते थे और हँसते हँसते लोट-पोट हो जाते थे । उनकी नकल करते और गाने गाते । इस तरह वे अपने जमे हुए समय को काट रहे थे ।

तिजहर हो गयी । लड़के लौट रहे हैं । गाँव के पास आ गये हैं । सूनी-सूनी उदास-उदास सी, फीकी-फीकी धूप, बुझी-बुझी सी पेड़ों की शिखाएँ, दिग-दिगन्तों तक पसरी हुई एक ठहरी ठहरी सी पीली आभा, लगता है दिन अभी डूब जायेगा । सारी प्रकृति की नसों में जैसे रक्त जमकर ठहर गया है । आँखों में विधवा सी हरियाली एक भय की रेखा खींच दे रही है । लगता है जैसे अभी अभी कोई स्यार फेंकर कर चुप हो गया है और उसकी आवाज धीरे-धीरे समस्त वातावरण में कांप रही है । हवा रह रहकर सिहर उठती है ।

'वह कौन जा रहा है ?'

लम्बी लम्बी देह, जैसे हड्डियों का ढाँचा, जैसे कोई ढेंकुल हो, सिर पर सरसों का बोझ, है, चलता है तो लगता है कि जैसे कोई ऊँट हो, उसकी गरदन ऊपर नीचे, नीचे ऊपर, आगे पीछे झोल मार रही है ।

'अरे बेनी काका हैं देखो चिट्टिर पिट्टिर अंगुलियां बज रही हैं । हाँ जरूर यह किसी के खेत में से सरसों उखाड़े होगा । इधर इसके खेत कहाँ हैं । इसके पास तो डेढ़ बीघा जमीन है वह भी गाँव के पास ।'

'बेनी काका पालागी ।'

'जियो जियो बचवा जियो कौने कौन हवऽरे ।' बेनी काका ने बोझ से दबी अपनी कमजोर गरदन को मोड़ने की कोशिश करते हुए कहा ।

'ई तो हम हैं काका, ई तो हम हैं काका ।'

'हाँ, कहाँ गये थे बचवा, अच्छा पत्ता बटोरने गये थे । ठीक किया ।'

'हाँ काका आप इधर कहाँ आये थे । लगता है कि किसी की आफत आयी है आज ।'

'चुप सरऊ लोगन, क्या हम चोर हईं रे ? अरे ई तो हम मुंशी दीनानाथ से मिले आये थे सो उन्होंने कहा कि पंडित जी लेहना का तो बड़ा अकाल होइहें, हमारे खेत में सरसों बहुत सघन जमे हैं, कुछ निकाल लें ।

चिट्टिर पिट्टिर, चिट्टिर पिट्टिर, लड़के उनके पीछे पीछे उनकी नकले करते हुए चलने लगे और हंसते रहे ।'

बेनी काका बीच- बीच में पूछते रहे —'क्या है रे ।'

'कुछ नहीं काका ।'

बेनी काका से चला नहीं जा रहा था । आँखें धंस गयी थीं, मुंह की हड्डियाँ उतरा गयी थीं । लगता था बहुत दिनों से बीमार थे ।

बच्चे घर लौटे । केशव सोच रहा था कि आज माँ ने शायद पेट भर कुछ रोटी या भात खाने को रखा होगा । इतना काम किया । गाँव में पैठे—लगा

जैसे सारा गाँव पांडु रोग से पियरा कर अलसाया हुआ है। उस छान पर एक फटी गन्दी गुदड़ी सूख रही है। उस दीवार से सट कर धूप में नंगी देह बैठा हुआ धीमड़ चीलर मार रहा है, उसकी मोटी थुल-थुल देह में नहों की अनेक खरोचें लगी हुई हैं, चमड़े झूल रहे हैं। जाड़ा-बुखार से झुलसा हुआ धिरेन्दर अपनी नंगी देह धूप में सुखा रहा है, नस-नस उतरा गयी है हाथ में कपड़े की एक गन्दी-सी ताबीज बांधे हैं। और वह रही गेंदा की माँ 'खों-खों खों-खों' किये जा रही है और गेंदा उसके पास बैठ कर उसके माथे का ढील निकाल कर चिट्ट से मार दे रही है। गेंदा की भरी-भरी देह को जैसे किसी ने सोख लिया हो पहचान में नहीं आती। वह लड़का कटोरा लिए हुए अपनी माँ का अँचरा पकड़ कर हुन्न-हुन्न कर रहा है। शायद मार भी खूब खायी है गाल लाल हो रहे हैं, आँखें सूज गयी हैं।

'माँ बड़ी भूख लगी है। जल्दी कुछ खिलाओ।' बोझ पटकते हुए केशव ने कहा।

'आ बचवा, मेरा तो कलेजा छौंछिया रहा था।' कहते हुए माँ ने गंजी से भरी हुई थाली उसके सामने रख दी। केशव बिना हाथ मुंह धोये ही उस पर झपट पड़ा लेकिन थोड़ी सी खाने के बाद उसे लगा कि गंजी की थाल उठा कर फेंक दे। गंजी, गंजी, रोज गंजी, इतनी दूर से बोझ ढोकर लाये और गंजी। न चावल, न रोटी, न खिचड़ी, बस गंजी। उसे रोना आ गया। गुस्से में थाली हटाकर मुंह सिकोड़ कर झल्लाया—'हटाओ थाली मैं नहीं खांऊँगा।'

'क्यों मेरे लाल खाते क्यों नहीं?'

'खाते क्यों नहीं; बड़ी लाड़ जताने आयी हैं। छः कोस से बोझा ढोकर शाम को घर आया तो सामने घास-पात रख दिया और ऊपर से लाड़ जता रही हैं कि मेरे लाल खाते क्यों नहीं, बड़ी आयीं लाड़ जताने वाली, कहते-कहते केशव की आँखें भर आयीं।'

माँ केशव को गोदी में खींचने लगी किन्तु केशव छटक कर अलग हो गया। माँ रो पड़ी—'बेटा घर में खाने को होता तो मैं देती नहीं। क्या तुम लोगों से भी प्यारी चीज कोई दुनिया में हो सकती है। गरीबी जो न कराये बेटा! देखो तुम्हारा भइया कमाने गया है। तुम्हीं लोगों के लिए न मेरा लाल इस कच्ची उम्र में काले पानी की सजा भुगत रहा है। वह भरभरा कर रोने लगी और केशव धीरे से थाली खींच कर गंजी खाने लगा।

लीला धीरे-धीरे बरतन मल रही थी, कभी माँ को देखती, कभी केशव को। बरतन मल कर अपनी बड़ी डलिया उठाई और धीरे से सरक गयी बथुआ खोंटने को।

२९

शाम को बथुवे और सरसों का साग भर पेट खाकर सुमेश-परिवार आग ताप रहा था । केवल केशव के लिए थोड़े कोदो के चावल का इन्तजाम हो गया था । टीसुन की माँ आयी । रिरिया कर बोली 'दीदी छोटा लड़का बीसुन का ज्वर आज कई दिनों पर उतरा है । उसके पथ्य के लिए कुछ भी नहीं है । मैं तो कई दिनों से बिना खाये-पिये जी रही हूँ बथुवे का साग सहारा हो गया है । लेकिन लड़के को तो कुछ देना ही होगा । गाँव भर घूम आयी किसी के मुँह से हाँ नहीं निकला और सबका तो यही हाल है दीदी ।'

'मेरा भी वही हाल समझो टीसुन की माँ । गाँव भर में आग लगी है, सभी जल रहे हैं कौन किसको बुझाये ?

टीसुन की माँ की रही सही उम्मीद टूट कर बिखर गयी । उसका चेहरा लटक आया ।

फिर कुछ रुक कर केशव की माँ ने कहा—अरे टीसुन से और मुखिया से तो खूब पटती है वहीं से कुछ क्यों नहीं मांग लेती ।

टीसुन की माँ को इसमें व्यंग्य की बू आयी । फिर भी वह निर्विकार भाव से बोली—दीदी वहाँ भी गयी थी मगर मुखिया कहने लगे कि अभी तो तुमने पिछला उधार ही नहीं चुकाया फिर कैसे लेने चली आयी ? शरम भी नहीं आती है तुम लोगों को ?' दीदी मुखिया अच्छा आदमी नहीं है, मैं तो टीसुन को मना करती हूँ लेकिन वह मालूम नहीं क्या मजा पाता है कि उनके पीछे पीछे घूमा करता है । दोस्ती का फल यही है न !

थोड़ी देर तक रुक कर फिर कहने लगी—सुमेस्सर बनिया के यहाँ अब किस बूते पर जाऊँ जब लोटा, थाली, गगरा सब बिक गये हैं । जीजी, घनश्याम बाबू के यहाँ से तुम्हारे घर से पटती है वहाँ से कुछ मंगा दो न । हमारे घर से वे लोग बहुत चिढ़ते हैं टिसुनवा के कारन ।

केशव की माँ थोड़ी देर तो चुप रही, उनकी आँखों के आगे अपने घर के सब बरतन फिर गये—गगरा की जगह पर मिट्टी का एक घड़ा, पूरे परिवार के बीच थाली की जगह दो डोंकिया और जस्ते की दो तीन गिलासें । सोचा कि उसी की स्थिति टीसुन की स्थिति से कौन अच्छी है ? लेकिन वह किसी के सामने जलील

होने नहीं गयी । बोली—ना टीमुन की माँ, मैं तो खुद इतनी विपत्ति में हूँ मगर उनके यहाँ कभी कुछ मांगने नही गयी । वे इस गाँव के रिश्तेदार होते हैं उनसे मैं अपनी छोटाई नहीं कह सकती ।

टीमुन की माँ मुंह लटका कर चली गयी । माँ-बेटा-बेटी कौड़े की बुझती राख को कुरेदती हुई बैठी रहीं । आज शनीचर है शायद नीरू आये । दस बज गये मगर नीरू नहीं आया । सरैया चार कोस ही तो है आना होता तो अब तक आ गया होता । चलो सोयें । नीरू के हिस्से का बचा-खुचा खाना खाकर सब सोने चले गये ।

रात के दस बजे रहे होंगे । जाड़े की रात भींग कर लथपथ हो गयी थी । अंधेरी रात बूंद-बूंद बन कर जमीन पर बिछ रही थी । नीरू घर आ रहा था । कल मिल की छुट्टी है आज शाम को उसे बेगार में काम करना पड़ गया, देर से छुट्टी मिली । मगर घर तो जाना ही है अठवाड़े की तनखाह जो मिली है । नहीं पहुँचने पर घर वाले भूखों मर जायेंगे । सो वह वेग से शीत में नहाई फसलों को रौंदता भीगता भागता घर भागा आ रहा था । गाँव के पास डीह पर आया तो कुछ सहम सा गया । तीन चार काली-काली आकृतियाँ पास के खेतों में डोलती नजर आयीं । भय से उसकी घिग्घी बंध गयी । वे सब के सब जल्दी-जल्दी मटर की फसल उखाड़ रहे थे । उसने सोचा कि क्या करे ? चल चले । लेकिन अपने ही खेत को वह उखड़ता कैसे देख सकता था ।

चोरों ने समझा कोई राही है चलो इसके पास जो कुछ है छीन लो । वे आपस में बुदबुदाते हुए इसकी ओर बढ़े । जब पास आ गये तो नीरू ने हिम्मत करके कहा—कौन हो तुम लोग ? चोरों ने जब नीरू की आवाज पहचानी तो भड़भड़ा कर भग गये । नीरू ने ललकारा—पकड़ो-पकड़ो चोर-चोर । उस अंधेरी रात के फैले हुए अगाध सन्नाटे में उसकी आवाज भटक-भटक कर कांपती रही । जाड़े की सर्द भारी रात के कन्दरे में खोये हुए गाँव वाले उसकी आवाज सुन नहीं सके । हाँ कुछ आसपास के खेतों में झोपड़ी डालकर खेत रखाने वालों ने आवाज सुनकर पुकार लगाई—चोर-चोर-चोर । और वे अंधेरे में टटोलते नीरू के खेत के पास पहुँच गये । अब सबकी सम्मिलित आवाज से गाँव वाले भी इक्का-दुक्का पहुँचने लगे । गाँव में जागरण सा हो गया और सब लोग चिल्ला-चिल्ला कर पड़ोसियों से पूछने लगे अरे भाई क्या बात है ? क्या बात है ?

सुमेरु ने जब खबर सुनी कि उसी का खेत उखाड़ा गया है तो दौड़ा-दौड़ा खेत में आया और जोर-जोर से चीखने लगा । नीरू ने डांटा—अब इस तरह जोर-जोर चीखने से क्या होगा यह तो होगा नहीं कि जरा शाम को एकाध चक्कर खेत का लगा लें । और बाप बेटे में वहीं कहा-सुनी होने लगी । उखड़े हुए डांठ बांध कर घर लाये गये । लोगों ने पूछा कि कौन-कौन थे तुमने पहचाना ? 'हाँ पहचाना तो जरूर लेकिन कहने से क्या फायदा ? सब लोग जानते हैं कि कौन

खेत उखाड़ता है, कौन घर फूंकता है कौन झगड़े लगाता है, और गाँव में सभी लोग बारी-बारी से भोगते हैं यह आफत। मैं ही नाक कटा कर क्यों नक्कू बनूं ? मुझे कहने में किसी का डर नहीं मगर क्यों कहूँ ? मौका आयेगा तो देख लूंगा।' नीरू एक साँस में कह गया।

मुखिया के दरवाजे पर कुछ लोग बैठ गये और कुछ देर तक चर्चा करते रहे। बड़ा अंधेर मचा रखा है पकड़िहा के अहिरों ने। खेत उखाड़ेंगें भी, मवेशियों से चरा भी देंगे और कहने पर लाठी लेकर झगड़ा करने को तैयार हो जायेंगे।

नीरू घर आया तो माँ को पूछने की हिम्मत नहीं हुई कि खाना वोना खाया है कि नहीं क्योंकि उसके हिस्से का खाना तो रूपा और केशव को खिला चुकी थी। फिर भी माँ का दिल कैसे मानता ? पूछा---क्यों बेटा कुछ खाया-वोया है। नीरू इस सवाल का मतलब समझ गया। बोला---माँ भूख नहीं है। आज दिन को वहुत देर से खाया था इसलिए कोई बात नहीं। अपने साथ कुछ राब लाया हूँ पानी पी लूंगा।'

माँ मन ही मन रो पड़ी। अगर नीरू बालक की तरह मुझसे खाना मांगता, मचलता, रोता तो शायद मुझे इतनी तकलीफ न होती मगर यह तो इतनी ही छोटी उमर में बूढ़ों का सा मन मारकर मेरे कलेजे में चोट मारता है और हाय री मेरी बेबसी कि इसे बर्दाश्त कर लेती हूँ।

नीरू ने राब की गठरी खोली। खुद खाया और सबको दिया। भाई का आना जानकर बच्चे भी जग गये थे। बहुत देर तक गुपचुप बातें होती रहीं बच्चे सो गये तो नीरू ने कहा---यह मुखिया बड़ी उस्तादी चल रहा है। अगर तक़दीर लोटी तो इसका भी इलाज करूँगा। कमबख्तों को मैंने पहचान लिया है---बैजू था, धिरेन्दर था, छबीले था और था मुखिया का नौकर। नीरू ने कटी हुई फसल की ओर गीले नेत्रों से देखा फिर उसकी आँखें दहक उठीं किन्तु आग अपनी बेबसी में ही मुरझा कर सो गयी। सबेरा होते-होते हल्ला हो गया कि आज रात को ही सुमेश्वर बनिया के घर में सेंध पड़ गयी है। सहुवाइन राग कढ़ा-कढ़ा कर रो रही थीं। पचास साल के साहू गन्दा रुइभर्रा पहने अपने ओसारे में मुंह लटकाये बैठे थे। उनका मुँह काला पड़ गया था। उनके लड़के आने जाने वालों को सेंध की जगह दिखा रहे थे और लोग तरह-तरह के अनुमान कर रहे थे। चोर ऐसे आया होगा, ऐसे गया होगा। चोर अकेले ही थोड़े न आता है। लगता है जो चोर रात को खेत उखाड़ रहे थे वे ही सेंध भी मार गये।

'कितने का सामान गया होगा साहू।' मुखिया ने बड़े इतमिनान से पूछा जैसे अभी सारा रुपया ये चुका ही तो देंगे।

सुमेस्सर साहु ने लटके हुए मुंह को थोड़ा सा सीधा करके भारी आवाज में कहा---'सरबस ले गया मालिक। कुछ नहीं छोड़ा। रात को नीरू बाबू की खेत कटाई का हल्ला-गुल्ला हुआ उसी में देर तक जागते रह गये हम लोग।

करनिनिया में इस तरह नींद आ गयी कि कुछ पता ही नहीं चला। सब ले गया मालिक सब ले गया। जिनगी भर पीठ पर बोझा लाद लाद कर कमाया सब उठा ले गया।' साहू 'ई ई' करके रोने लगा।

रास्ते में किसी ने कहा कि बेचारे का सरबस चला गया। मुखिया उसकी नादानी पर मुसकराते हुए बोले—'अजी तुम क्या समझो ये सब बड़े काइयाँ होते हैं। सारा रुपया गाड़ कर रखते हैं। दुनिया भर की बेईमानी करके पैसा इकट्ठा करते हैं तो जायेगा नहीं। हराम का माल हराम में जाता है।

३०

इतवार का दिन था, नीरू घर पर ही था। बैल को कुछ खिला-पिला कर खेत की ओर निकल गया। दिन के दस बजे थे फिर भी ऐसा लग रहा था जैसे दिन अभी-अभी फूटा हो। कुहरे की हलकी छायाएँ राहों पर अब भी तैर रही थीं। खेतों में की शीत अब भी चुकी नहीं थी। नीरू जाकर अपने प्रिय टीले पर बैठ गया। वह टीला कई गाँवों के बीच में पड़ता है। उसी के पास कुछ बन खण्ड हैं और एक मनोरम सा पोखरा है और उस पोखरे के पास एक सेमल का वृक्ष। नीरू के भावुक हृदय को यह टीला बचपन से ही प्रिय था। उसकी और संध्या की सम्मिलित पगध्वनियाँ वहाँ बोलने लगती थीं। यहाँ से मीलों फैले हुए खेतों की शोभा देखते ही बनती थी। नीरू की आँखें दिग्-दिगन्त तक उमड़ते सरसों के फूलों में बह रही थीं। मटर में लाल-पीले-नीले फूल लदे हुए थे। तीसी के फूल बीच-बीच में नीले बूटे के समान लग रहे थे और सरसों अपनी लम्बी-लम्बी काया में फूलों के गुच्छे उठाये सारे आकाश को पीली-पीली आभा से रंग रहे थे। सूरज की उदास-उदास-सी धूप पीताभा से रंजित होकर और भी शिथिल सी लग रही थी। तितलियाँ अपने पंखों में फूलों की धूल लेकर फुदक रही थीं। खेतों की गलियों से निकलती हुई लड़कियाँ मानों जल परियाँ हों जो पानी की लहरों को चीरती हुई क्रीड़ा कर रही हों। फूलों की आभाएँ उनके चेहरों को रंग दे रही थीं। खेतों में घास उखाड़ते हुए ये मटमैले किसान सागर के बीच छोटे-छोटे टापुओं से लगते थे। आह! संध्या, तुम्हें देखे बहुत दिन हो गये। हम तुम इन्हीं खेतों में तैरते फिरते थे। सारे अभाव, और दर्द घुल जाते थे। मानों आज भी हम लोगों की धड़कने इन पत्तों पर, हमारी किलकारियों की प्रत्येक लहर तालाब को इन लहरों पर और हमारी आँख मिचौनी की पगध्वनियाँ इन खेतों में मचल रही हैं। नीरू कल्पना के आकाश में उड़ता जा रहा था, सौन्दर्य की एक मायावी दुनियाँ उसे अपने जाल में समेट रही थी। उसकी आँखें अधमुदी हो गयी थीं। बहते बहते बारह बज गये। उस बहाव में एक आकर्षक सौन्दर्य उसके चारों ओर चाँद की तरह तिरता हुआ चक्कर काट रहा था और नीरू उसे पकड़ने के लिए हंस-हंस कर दौड़ रहा था। वह संध्या थी।

'भइया, घर नहीं चलोगे क्या? दुपहर हो गयी है, खाने का वक्त हो गया।'

नीरू ने देखा—लीला खड़ी थी। उसकी कल्पना टूट गयी। लीला अपनी दो चार सहेलियों के साथ डलिया में सरसों और बथुवे का साग भरे खड़ी थी। नीरू यथार्थ की भूमि पर गिर पड़ा। ये जलपरियाँ नहीं, उसकी बहनें हैं जो शाम को पेट को पाटने के लिए ढेर से साग का इंतजाम कर रही थीं।

मर्माहत सा नीरू उठा। शाम तक उसे सरैया पहुँचना है। सात बजे सुबह से ही ड्यूटी होनी है।

नीरू ने आज सुबह ही सुबह माँ के हाथों पर हफ्ते भर की तनख्वाह रख दी थी इसलिए खाने-पीने का इन्तजाम हो गया था। नीरू ने खाना खाते समय जब कपड़ा निकाला तो माँ स्तब्ध रह गयी। हड्डियाँ निकल आयी थीं, नसें उभर गयी थीं। माँ ने एक बार हफ्ते भर की तनख्वाह का हिसाब लगाया, फिर नीरू की हड्डियों को गिना। कुछ कह नहीं पा रही थी।

'नीरू तुम्हें कितनी तनख्वाह मिलती है।' माँ का स्वर था।

'आठ आने रोज माँ!'

'तीन रुपये तो तुमने घर पर दे दिये। आठ आने में एक हफ्ता कैसे काम चला होगा।' गीले स्वर में माँ ने पूछा।

'चल जाता है माँ, चल जाता है। तुम काहे को चिन्ता करती हो। मिल में सामान सस्ते मिल जाते हैं।'

माँ ने नंगी वास्तविकता के अधिक अनावृत्त होने के भय से बात अधिक नहीं बढ़ाई। नीरू खा पीकर उठ गया। माँ उसकी हड्डियों को देखती रह गयी।

चार बजे नीरू सरैया के लिए चल पड़ा। रास्ते में कछार के तमाम लोग सिर पर बड़े-बड़े कनस्टर और घड़े लादे हुए सरैया से लौट रहे थे। गरीबी की हद, उफ। मिल का गन्धक भरा खराब चोटा जो मिल की नालियों में बह कर आस-पास के वातावरण को बदबू से भर देता है, वही लोगों की भूख को तृप्त कर रहा है। सरैया मिल में वही चोटा एक पैसे का एक घड़ा मिल रहा है। कछार के लोग ढो-ढोकर उसे घर लाते हैं, अपना पेट जुड़ाते हैं।

मटर में छीमियाँ लग रही हैं। एक लड़का भूख से तड़प कर एक छीमी तोड़ लेता है, कहीं से खेत का मालिक आ पड़ता है। चट-चट-चटाक-चाँटे बरस पड़ते हैं। 'चोर साला।' वह लड़का आहत आँखों से मालिक की ओर देखता उसके खूंखार पंजों में जकड़ा हुआ घिसटता जा रहा है।

नीरू यह सब देखता है। उसकी आत्मा पर अनुभूतियों के स्तर-स्तर जमते जा रहे हैं। यही जिन्दगी है, यही दुनियाँ है। उसके पाँव मिल की ओर बढ़ रहे हैं।

शाम हो आयी है। एक उदासी, एक निराशा जैसे सजल अंधकार हो कर आँखों के आगे धीरे-धीरे फैल गयी हो। इस अंधकार में मानो हजारों कटे हुए सिर आकाश में लटके हुए हैं। हजारों उदास आँखें अंधकार में से घूर रही हैं,

हजारों आवाजें मानों पास फैले बनखण्डों में छटपटा रही हैं। हजारों, लाखों, करोड़ों उँगलियाँ सहारे के लिए आकाश की काली गहराइयों में रेंग रही हैं।

यह तरकुलही के थान का परेन नाला है, बनखण्डों से घिरा हुआ। सारा पानी मिल की गन्दगी से काला पड़ गया है और बदबू कर रहा है। ऊपर-ऊपर काइयाँ जमी हुई हैं। देवी तरकुलही का यह थान है। बड़ी यशस्वी देवी हैं मइया। लेकिन ये भयानक बनखण्ड, यह जमकातरों से भरा परेन नाला, ये ऊँची-नीची पगडंडियाँ और खून और कत्ल की अनेक सुनी-सुनाई कहानियाँ। यह सब क्या है? इतनी प्रतापी मइया के थान पर इतना भय और इतना उत्पात क्यों? इतनी चोरियाँ, डकैतियाँ, क्या मइया कुछ नहीं कर पातीं? सोचते-सोचते नीरू उलझन में पड़ गया। उसे भय सा लगने लगा। चारों ओर सन्नाटा था। कभी-कभी इक्के-दुक्के आदमी सरदार नगर स्टेशन से घर की ओर जाते हुए दिखाई पड़ जाते थे और कभी-कभी बन्दरों का चीं-चीं का स्वर थोड़ी देर के लिए मुखर हो उठता था।

एक जंगली पक्षी जोर से चीत्कार कर उठा लगा जैसे कोई डाइन चिचिया रही है। नीरू डर कर जल्दी-जल्दी भागने लगा। देवी के थान के पास से किसी स्त्री के रोने की आवाज आयी—'बचाओ-बचाओ ये गुण्डे ये गुण्डे...आगे वह कुछ नहीं कह पाई, शायद उसका मुंह हाथों से जकड़ दिया गया। नीरू का खून ठंडा हो गया। वह उस अभयदायिनी के थान से लुढ़कियाँ भागने लगा। उसकी मानवता भय से पथरा गयी और एक मील दूर जाने पर रुक सका। जाड़े के महीने में उसे पसीना आ गया था। 'बाप रे बाप। जमाना क्या हो गया है?'

नीरू अपने क्वाटर पर पहुँच गया। क्वाटर क्या था टिन से घेरे हुए कुछ छोटे-छोटे गन्दे-गन्दे कमरे थे। एक-एक में दो-दो तीन-तीन आदमी कसे हुए थे।

भूख लग आयी थी। मगर खाये क्या? तब एक मिट्टी के बरतन में झांका, कुछ चने शेष थे। निकाल कर अंगोछे पर डाल लिया। बड़ी देर तक पुटुर-पुटुर करता रहा फिर उसने एक हांड़ी में से थोड़ा सा राब निकाला (जिसे उसने मिल के राब में से निकाल लिया था) और एक लोटा शर्बत घोर कर चढ़ा लिया।

पूस की रात, टिन की दीवारें और शर्बत का असर और ओढ़ने बिछौने के नाम पर कुछ मिल के चट्ट और एक सूती चादर. . . .रात भर कूं-कूं करता रहा। साढ़े छ: का भोंपा बजा तो उठ बैठा। जल्दी जल्दी मुँह साफ कर कुछ राव मुंह में डाल लिया और ड्यूटी पर चला गया।

गाँव के सारे चमार कातिक में ही चम्पारन चले गये थे, धान काटने के लिए। केवल बैजू के कारण बिंदिया नहीं गयी थी। वह बैजू के खेतों में काम करती और बैजू दूसरे के खेतों में रात को काम करता। बैजू की माँ दमे के मरज से निढाल होकर विस्तरे पर पड़ी थी और खाने-पीने के अभाव में उसका स्वास्थ्य और भी गिरता जा रहा था।

गेंदा की शादी हो गयी थी। हाँ शादी ही कहिए। बैजू ने एक बूढ़े शुकुल के हाथ गेंदा को डाल दिया था। गेंदा की ठांठें मारती हुई जवानी बूढ़े के हाथ क्यों सौंप दी गयी? बैजू जाने। एक ही महीने बाद गेंदा के विधवा होने का समाचार आ गिरा। गेंदा की माँ खूब रोयी चिल्लायी। बैजू को कस-कस कर गालियाँ दीं। लेकिन गेंदा न रोयी, न चिल्लायी, सखियों से कहा—रोऊँ क्यों? क्या उसका मैं कुछ जानती हूँ? गाँव में कुछ दिनों तक गेंदा की इस बेशरमी की बड़ी चर्चा रही। लेकिन बैजू की बेशरमी और पापों की ओर किसी का ध्यान नहीं गया।

अगहन होते-होते गेंदा का देवर उसे लिवा ले गया। जाते वक्त गेंदा खूब रोई चिल्लाई, माँ का और सखियों का गला दबोच दबोच कर रोई अब शायद उसे अभाव का ज्ञान तीव्रता से हो रहा था। डोली में चढ़कर चली गयी। माँ रात तक रोती रही, सारी राहें, सारा घर, सारी दिशाएँ जैसे गेंदा के बिना सूनी हो गयी थीं। डोली में से गेंदा की आँसू भरी भींगती आँखें हर ओर झांक रही थीं। और उसका विधवात्व, विधवात्व, विधवात्व चारो ओर अट्टहास कर रहा था। माँ का दिल जख्मी हो गया और उसके दमे का मर्ज और भी जोर पकड़ गया।

सूने-सूने घर को संभालने के लिए बिंदिया ही सहारा थी। बैलों को सानी पानी करती, घास उखाड़ती, छाँटती,, खेतों की देख-भाल रखती और बैजू के जीवन के सूने पन को भरती। बैजू को तो और और कामों से ही फुरसत नहीं थी।

बिंदिया को मुखिया ने अपनी जमीन में से निकाल दिया था। इसलिए बैजू मुखिया के प्रति खिंच अवश्य गया लेकिन उसके उपकारों को याद कर खिंचावट कम कर देता। और मुखिया ने तो बाद में कहा था कि बैजू मैंने तो तुम्हारी इज्जत के लिए नाटक खेला था। मैंने यह साबित करना चाहा था कि कसूरमन्द बिंदिया है न कि बैजू। और उस समय इस चीज की बड़ी जरूरत थी, तुम्हें ज्ञात

पात में मिलाना था। अब तुम बिंदिया को लेकर पड़े रहो। जब तक कोई दूसरी घटना नहीं घटती और हाँ बीच में मेरा नाम मत डालना।

इसलिए मुखिया के प्रति का बैजू का मन-मुटाव धुल गया। हाँ मुखिया की जमीन में से निकल कर बिंदिया घनश्याम की जमीन में बस गयी थी इसलिए बैजू को घनश्याम-परिवार की ओर सहानुभूति हो चली थी। बिंदिया बार-बार उन लोगों की तारीफ करती और कहती मालिक, घनश्याम बाबू का कभी कुछ मत छूना। इसलिए मुखिया के बहकाने पर भी भी बैजू घनश्याम का कुछ नुकसान नहीं करता।

सारा गाँव बैजू और बिंदिया के इस मिलन को देखता किन्तु किसकी शामत आयी थी जो इन्हें छेड़े। गाँव के छोकरे बिंदिया को भौजी-भौजी अवश्य कहते तो वह बड़ी खुश होती और भौजी के नाते कुछ मजाक करके आँखें मार कर, छाती उचका कर और कभी-कभी अंगूठा दिखाकर चली जाती।

एक दिन शाम को गेंदा सरदार नगर स्टेशन से अकेले दस मील पैदल चलकर घर आ पहुँची। और सारे गाँव में हो हल्ला हो गया कि वह ससुराल से झगड़ा करके भाग आयी। कुछ ने कहा कि उसकी सास ने उसे झाड़ू मार-मार कर निकाल दिया है।

बेचारी गेंदा कितनी दुखी है, घरवाला ही न रहा तो फिर घर में कैसे गुजारा हो। घर वालों ने मार कर निकाल दिया होगा। मगर बेचारी गेंदा, विधवा गेंदा तो और मोटी होकर आयी है। यद्यपि उसके सिर के बाल मुड़े हुए हैं मगर उसके गाल और भर गये हैं, उसकी छाती और भी निकल आयी है, नितम्ब और भी मांसल हो गये हैं और उसकी बाँहें और भी सुडौल हो गयी हैं। उसके चेहरे पर पति के मरने का कोई गम ही लक्षित नहीं होता।

गाँव की कुछ और लड़कियाँ गेंदा की ससुराल वाले गाँव में ब्याही हुई थीं। उन्होंने इशारों इशारों में बताया कि गेंदा का देवर गेंदा को बहुत मानता है। जब से गेंदा गयी है तबसे उसने अपनी औरत को मायके में खदेड़ रखा है। खाने पीने की कमी नहीं है। खाती-पीती है बेफिक्र होकर और देवर है ही, कमी काहे की।

मोटा कर चकुना पड़ गयी है। कुछ लाज शरम है इसे या मरद के मरने का कोई गम?

मालूम हुआ कि उसकी देवरानी एक दिन आ धमकी और गेंदा को ताने मारने लगी। देवर उस दिन कहीं गया था। रात के वक्त बात-बात में गेंदा और उसकी देवरानी में कहासुनी हो गयी और बूढ़ी सास भी देवरानी की ओर मिल गयी। गेंदा दोनों को मारने लगी। देवरानी बेचारी सयानी थी। उसकी अवस्था ने उसे कमजोर कर दिया था, तिस पर कई बच्चों की मां बन चुकी थी। गेंदा अभी जवानी के नशे में चूर एक विधवा थी। अपने मरे हुए सन्तान हीन पति की नयी बहू। पति ने बुढ़ापे में संतान के ही लिए तो शादी की थी, मगर भाग्य को क्या कहा जाय?

सा गेंदा ने उन दोनों को पीटा और बहुत सबेरे वहाँ से सरक पड़ी मायके के लिये।

गेंदा के आने पर बिदिया की मलिकई छिन गयी। बिंदिया मालकिनि से एक सम्मानित नौकरानी बन गयी। गेंदा बात बात में बिंदिया को झिड़क देती। यह करो, वह करो, यह नहीं किया, वह नहीं किया। घास काफी नहीं आयी, छांटी ठीक से नहीं छंटी, बैल का पेट नहीं भरा। गरजे कि बिंदिया का अपने घर खाना पीना गेंदा नहीं देख सकती थी। मां ने रो-रो कर अपने दुख की कहानी गेंदा से कही—

'बैजू मेरी परवाह नहीं करता। दिन रात पड़ी-पड़ी मरती रहती हूं और वह तो इस रांड़ के पीछे पागल है। बेटी तू आ गयी, अच्छा किया यह बैजू बेटा नहीं राक्षस है तुझे भी खा गया, मुझे भी खा रहा है।'

'घबड़ाओ मत मां, मैं इस रांड़ का बाल-बाल नोच लूंगी और लात से धक्के मार कर घर में से निकाल दूंगी।'

और गेंदा और बिंदिया से रार ठन गयी। बिंदिया अपने हक पर आघात देख कर आहत नागिनि की तरह फुफकार कर रह गयी। उसने एक दिन बैजू से कहा—अब मैं कहीं और चली जाऊँगी मेरा अब इस घर में निवाह नहीं है।

'क्यों क्या बात है?' बैजू ने पूछा।

'बात तो क्या है? मैं गेंदा बीवी की आँखों में किरकिरी बन गयी हूँ। जब से वे आयी ह, मुझे डांटती हैं, गालियाँ देती हैं, बात-बात पर ताने मारती हैं।' कह कर बिंदिया रोने लगी। बैजू ने उसे चुप कराया। 'घबड़ाओ मत, मैं सबठीक कर दूंगा।'

गेंदा विधवा हो गयी तो बैजू क्या करे? उसका उसमें क्या दोष है? लोग कहते हैं कि मैंने बूढ़े के साथ उसकी शादी कर दी। बेवकूफ हैं ऐसा कहने वाले। सब लोग अपनी अपनी किस्मत साथ लेकर आते हैं, कोई किसी की किस्मत बदल सकता है? गेंदा ने जैसा किया था वैसा भोगा। अब इसको भाग भाग कर मेरे घर आने की क्या जरूरत? अब तो भला या बुरा पतिका घर ही उसका घर है। लेकिन निबहे कैसे? जनम से ही तो लड़ाकू है। सबसे लड़ती होगी। और जब वहाँ निवाह नहीं हुआ तो मेरे घर लड़ने चली आयी। घर जैसे इसके बापका है? बिंदिया रहती है मेरी मरजी से, मैं कमाता हूँ खिलाता हूँ, आखिर यह कौन होती है उसे कुछ कहने वाली। अगर बिंदिया कहीं चली जाये तो मेरा क्या होगा? क्या होगा? अकेले मैं कैसे अपनी जिन्दगी गुजारूँगा? सोचते सोचते बैजू को

गुस्सा चढ़ आया । मां के खांसने की आवाज सुनी तो उसे और भी वितृष्णा हो गयी । मरती भी नहीं यह डायन । इसी ने बहकाया होगा गेंदा को । खाट पर सड़ी हुई पड़ी है लेकिन इसकी आदत नहीं गयी । पता नहीं कब जायेगी कि घर साफ होगी । बैजू की इच्छा हुई कि अभी जाकर मां बेटी से समझे लेकिन कुछ सोच कर रुक गया । अच्छा फिर देखूंगा ।

३२

गेंदा का यौवन संभाले नहीं संभलता था। उसे न पति के मरने का गम था, न विधवा होने की उदासी, न दुनिया की नजरों से भय और संकोच और न धर्म-कर्म की बेड़ी, वह स्वच्छन्द खेतों, खलिहानों, बाग-बगीचों और गाँव की गलियों-गुरसालों तथा बनियों की दूकानों पर चक्कर काटती फिरती। गाँव वाले उसकी इस स्पर्द्धा पर जलते-भुनते, आपस में कानाफूसी करते और उसे तरह-तरह की गालियाँ देकर आत्म-संतोष कर लेते।

मगर गेंदा थी कि वह किसी की भी परवाह किए बिना फागुन की मस्त हवा की तरह हरहराती, सबकी छातियों को रौंदती, आँखोंमें धूल झोंकती चली जाती और लोग आँख मलते रह जाते। अगर कोई लड़की उसे कुछ कहती तो उसके सात पुश्त की खबर लेती और अगर बात आगे बढ़ती तो उसका झोंटा पकड़ कर उसे आसमान और पाताल तका देती।

लोग गेंदा की इस अहमन्यता से त्रस्त हो गये थे। जब कहीं किसी यात्रा पर जाओ तो रास्ते में गेंदा जरूर मिल जाती। राम-राम विधवा का मुंह देख कर जाना ठीक नहीं। लोग झल्ला कर लौट आते। कोई शुभ मुहुर्त करने को निकलो तो गेंदा छूंछा घड़ा लिए धीरे-धीरे कुएँ की ओर आती हुई अवश्य दिखाई पड़ जाती और कुएँ पर आकर वह अन्यमनस्क भाव से पता नहीं क्या देखा करती? कभी कुएँ में घड़ा डाल कर कुएँ में ही देखती रह जाती या सामने के बबूल की कंटीली डालियों में अपनी आँखें उलझा कर छोड़ देती और फिर होश आने पर बालों को एक झटका देकर जल्दी जल्दी अपने घड़े को कुएँ में से खींच लेती। लोग अपनी शुभ साइत लिये दिए उसे देखते रहते कि यह कमबख्त जल्दी हटे तो हम अपने रास्ते जायें। यदि उसे कोई कहने जाय कि भाई जरा रास्ता छोड़ो हम अपने रास्ते जायँ तो कहेगी जाओ न हम तुम्हें रोके हुए हैं? और बात बढ़ने पर साइत के कुसाइत होने का भय था। बिंदिया रोज बैजू से अपनी करुणा कहानी कहने लगी और परोक्ष रूप से उसे गेंदा के खिलाफ उभाड़ने लगी। आज बैजू कहीं शुभ काम पर जा रहा था—अपने शुभ काम पर गाँव से कुछ दूर। कई सौ रुपये का वारा-न्यारा था। आज रात को जवार के बड़े आदमी के बैल पर हाथ साफ करना था। तिजहर का वक्त था। वह ज्योंही घर से निकला कि गेंदा खेतों की ओर से घूमती घामती चटकती मटकती आ गयी। बैजू के दिल का सारा संचित क्रोध फूट पड़ा

और घर लौट आया। घर आते ही उसने गेंदा की ओर लपक कर उसका गला पकड़ लिया और एक धक्के से उसे जमीन पर पटक कर चार लात जमा दिये। मां 'हाँ हाँ' करती रह गयी। 'अरे क्यों कसाई की तरह पीटते हो ? कौन तुम्हारी सम्पदा खा रही है।'

'चुप रहो नहीं तो तुम्हारी भी मरम्मत कर दूंगा। सिर चढ़ा रखा है इन राँड़ को। चुप से कहीं बैठती ही नहीं। जहाँ कहीं शुभ साइत पर निकलो कि रास्ता छेंक कर खड़ी हैं गेंदा महारानी। आज मैं कितने बड़े काम से जा रहा था लेकिन इस रांड ने असगुन कर दिया।'

'गेंदा आहत नागिनि की तरह उठ खड़ी हुई और बेतहाशा गालियाँ उगलने लगी—'बैजुआ की औरत मांग धोवे, बैजुवा निरबंसी हो जा....' यद्यपि न बैंजू की औरत थी और न संतान मगर वह गाली सुन-सुन कर बौखला रहा था। अत देख माई, गाली बक रही है, इसका मुँह तोड़ दूंगा। रांड़ हो गयी, इसको लाज शरम नहीं है, गाँव भर में सान मटक्का मारती घूमती है। इसने घर की नाक कटा दी है।'

गेंदा गरगरा रही थी–'वाह रे नाक रखने वाले ! अपने तो चमाइन रख ली है, और पता नहीं क्या क्या कुकरम करता फिरता है और मुझको उपदेस दे रहा है। फुलसुंघी रानी ने तुम्हें बहकाया है मैं जानती हूँ। जाओ लेकर राज्य करो अपने को क्या ?'

बैजू तड़प रहा था—'म इसका खून पी जाऊँगा नहीं तो चुप कर इसे। मां गेंदा को डांट डपट कर समझा बुझा रही थी।

आज गेंदा को पहली बार ज्ञात हुआ कि वह रांड़ है, असहाय है। रात को अकेले में बैठ कर वह देर तक रोती रही। 'मैं रांड़ हूँ, लोग मेरा मुँह देखना पाप समझते हैं। शायद इसीलिए लोग कहीं जाते वक्त मुझसे बचने की कोशिश करते हैं और यदि संयोग से दिखाई पड़ गयी तो लोग लौट जाते हैं। और तो और अपना ही भाई (जिसे मैं सहारा समझे थी) मेरा मुंह नहीं देखना चाहता। एक चमाइन से भी मेरी हालत गयी गुज़री है। दुनिया में सहारा कौन हो सकता है ? ससुराल में देवर है वह अपना है, मुझे चाहता है प्यार करता है किन्तु वह भी मुंह देखे की बात। नहीं तो अब तक मेरी खोज खबर लेने नहीं आया होता। और देवरानी तो मेरी शकल भी नहीं देखना चाहती। और आखिर देवर है तो उसी का। सास भी मुझे डायन कहती है। कहती है कि मेरे विवाह के ही कारण उसका लड़का मर गया। उंह, सास की कौन वह तो किनारे का पेड़ है अब गिरे तब गिरे। तो मैं अभागिनी हूँ, डायन हूँ, आदमी खाती हूँ और तो और मैं अपना ही मरद खा गयी। मेरा मुंह देखना भी पाप है। मैं रांड़ हूँ....रांड़ हूँ....राड़ हूँ... रांड़ हूँ...ओह दुनिया में मेरा कोई भी नहीं, कोई भी नहीं, यहाँ तक कि मेरी यह

भरी-भरी जवानी, मेरी हंसी, मेरे गीत भी अपने नहीं हैं, वे होकर भी नहीं हैं। उन्हें पति के साथ मर जाना चाहिए था। लेकिन किसी तरह मैं इन्हें नहीं मार सकी तो ये सब मुझे बेशरम कहते हैं क्या क्या कहते हैं। खुद अपना भाई मेरे दर्द को नहीं जान सका तो औरों की क्या कहूँ' ?

और आज उसे ऐसा मालूम हुआ कि वह विधवा है। उसके ऊपर साया के रूप में एक पति था सो उठ गया है। उसे मालूम हुआ कि उस बूढ़े पति का भी अस्तित्व कितना मूल्यवान था। आज वह होता तो अपयश की छायाएँ मेरा पीछा नहीं करतीं। उसकी आड़ में चाहे जो भी कर सकती थी। अब मैं क्या करूँ? क्या करूँ ? क्या करूँ अपनी इस भरी भरी जवानी का ? इसे कहाँ उतार फेंकूं ? मैं अपना चेहरा कहाँ काट कर रख दूं ? मैं अपना अस्तित्व कैसे भुला दूं ? कैसे भुला दूं ?'

गेंदा गीली आँखों में अनेक सवाल, अनेक उलझनें भर कर सो गयी बिना खाये-पिये।

३३

गेंदा के स्वच्छन्द यौवन पर एक बोझिल धुंध-सी छा गयी। वास्तविकता के बोध ने उसकी उन्मुक्त पांखों को बांध कर धरती पर झुका दिया। अब वह कुछ उदास उदास-सी रहने लगी। उसकी स्वच्छन्द बहने वाली मस्ती पर बोझिल गांभीर्य का एक काला साया छा गया। गाँव की लड़कियों ने देखा तो अचंभे में आ गयीं। आखिर बात क्या है कि सूरज पच्छिम उग पड़ा है। उसकी प्यारी सखी चमेली उसे बार बार खोदती और छेड़ती मगर गेंदा के आगे से उसका काला काला भविष्य हटता ही नहीं था। अब वह क्या करेगी ? दुनिया में कौन उसका सहारा है ? उसने गाँव की कुछ विधवाओं को सर्दी की स्तब्ध रात की तरह शोक से हिमधवल और जड़ित होते देखा था और दुनिया की नजरों से अपने को बचा कर पत्थर के देवता के आगे जीवन विसर्जित करते देखा था। तो क्या वह भी यही करे ? उसने कई वार अपने अंतर से इस प्रश्न का जबाव मांगा किन्तु कहीं कोई उत्तर न था।

उसे अब किसी से क्या लेना देना ? किन्तु जब वह बिंदिया को मुसकराते हुए बैजू के साथ देखती तो उसकी उदासी एक क्षण के लिए दहक उठती और इच्छा होती कि इस चमाइन का झोंटा पकड़ कर लात मार कर इसे निकाल दे इस घर से ? किन्तु वह घर तो इसका नहीं है फिर किसी को क्यों निकाल दे ? उसका भाई तो उसी को इस घर से निकाल रहा है। उसका घर तो पति का घर है जहाँ दुर्भाग्य के अतिरिक्त अपना अब कोई नहीं है। देवर ! एक मात्र आशा-ज्योति। मगर वह भी तो नहीं आया बुलाने के लिए। जाऊँ तो किस मुंह से वहाँ। और अब तो देवरानी आ गयी है, बिना बात का झगड़ा। वहाँ भी वीरान जिन्दगी के अलावा और है क्या ? खाना कपड़ा तो किसी तरह मिल जायगा। उंह ! खाना कपड़ा दिल में जलती हुई आग को कैसे रोकेगा ? इस जलती हुई आग को लिए दिए कहाँ-कहाँ फिरूँ ?

'तो कहाँ जायें ? कोई नहीं, कोई नहीं।

मां ने कहा—'बेटी अब तुम्हारा मालिक भगवान ही है, उसी की शरण जा। कुछ पूजा-पाठ किया कर। मुझे भी तुम्हारे जनम के बाद भगवान ने अनाथ कर दिया था किन्तु मैं तुम्हारी तरह एकदम अनाथ नहीं थी बेटी। बैजू और तुम्हारी देख-भाल करने में ही मेरे दिन कट जाने लगे। पूजा-पाठ करने की इच्छा तो हुई

लेकिन तुम लोगों ने मेरा मन अपने में बझा रखा था। लेकिन तुम बेटी एकदम अकेली हो। भाई का हाल देखती ही हो, मैं किनारे पर का पेड़ हो रही हूँ। तुम्हारी सारी जिनगी समुन्दर सी सामने लोट रही है। पूजा-पाठ भजन भाव में अपना मन लगाओ। मेरे मरने के बाद तुम अपनी ससुराल चली जाना। कुछ भी हो वही तुम्हारा घर है, मरना जीना वहीं अच्छा लगता है।'

समझाते-समझाते मां की आँखों में पानी भर आया। गेंदा फफक कर रो पड़ी। उसे लगा कि उसके दिल में एक अज्ञात कंपकंपी हो रही है जैसे वह बहुत ऊँचाई से गिरकर नीचे आ रही हो। सारी दिशाएँ चट्टानों की तरह आकाश में अटकी हुई मालूम पड़ने लगी अब टूट जायँ तब टूट जायँ छाती पर। लगा कि सामने की सारी दुनिया जम कर जड़ हो गयी है।

गेंदा ने उसी वक्त स्नान किया, सफेद साड़ी पहनी, हाथ में लोटा उठाया, कनेर के दो चार पीले फूल तोड़े और चल पड़ी महादेव जी के थान की ओर। माता ने बेटी को इस रूप में देखकर आंचल से अपना मुंह ढक लिया।

महादेव जी के थान पर पूजा करती हुई विधवाओं को उसने देखा था। वह उसी तरह महादेव जी पर फूल और अक्षत डाल कर, पानी बरसा कर, हाथ जोड़ कर बैठ गयी। वह महादेव जी से क्या कहे कुछ समझ नहीं पा रही थी। आंख मूंद कर ध्यान लगाया कुछ भी ध्यान में नहीं आया।

आज उसकी निगाह में पिछली शिवरात्रियाँ बरस पड़ीं। वह रंग-बिरंगी साड़ियों में लिपटी हुई सखियों के साथ यहाँ आती थी और चौताल गा गाकर महादेव जी की पूजा करती थी। सब आपस में चुहुल करती थीं—'अरी मांग ले रे मांग ले, बमभोले से अच्छा सा दुलहा। औढर दानी हैं महादेव जी, जो मन चित्त लगाकर इन्हें पूजती है उसे ये जरूर रंगीला सा दुलहा देते हैं।' और सभी लड़कियाँ बेल-पत्र, अक्षत और फूल इन पर डालकर मन ही मन दुलहा और अहिवात मांगती थीं। उसके भी मन में एक सुन्दर सा चित्र उभर उठता था—एक सुन्दर, हट्टा-कट्टा रंगीला सा जवान।

और वह आज भी तो उसी महादेव को पूजने आयी है। ध्यान लगाने पर कहीं कोई तसवीर उभरती ही नहीं। महादेव जी कतई नहीं आते हैं, दुलहा भी नहीं आ पाता। मन विचल बिचल जाता है।

३४

फा फागुन लग गया। फगुनहट जी तोड़ तोड़ कर बहने लगी। एक रसमय रूखापन चारों ओर धुंध की तरह छाने लगा। उड़ती हुई धुंधों की शिखाओं के पार के किसी स्वप्निल देश की कल्पना मन को एक मन्द उन्माद में तपाने लगी। पेड़ों के पत्ते डालों से झड़ झड़ कर हवा में चक्कर काटते हुए जमीन पर बिछ आने लगे। यहाँ से वहाँ तक पेड़ों की स्फीत नंगी डालियाँ अपनी सूनी टह-नियों की अंगुलियों से आसमान में कुछ रेखायें खींचती सी नजर आने लगीं।

फिर फाग उड़ने लगा। रास्तों पर चलते हुए मुसाफिरों के ओठों से फाग की मस्त कड़ियाँ अपने आप फूटने लगीं। जिसे देखो, वही लाल। मटर की फसल पक चुकी। मजूरनें उन्हें उखाड़ने लगीं। राह चलते मुसाफिरों से छेड़खानी करके कुछ अपने क्वारेपन को राहत देतीं और कुछ अपने परदेशीकी याद से महँक उठतीं।

कलकत्ता, अहमदाबाद, बम्बई आदि नगरों की ओर विरहिनियों की आँखें लग गयीं। चिट्ठियाँ आने लगीं कि होली पर घर आ रहे हैं। 'अरे देख तो वह कौन आ रहा है? मालूम पड़ता है हमारे गाँव का कोई परदेशी है।' 'ना रे वह तो उधर चला गया, कहीं और का होगा।'

फसल अच्छी नहीं है, मटर को पाला मार गया। गेहूँ जौ की फसल पिछड़ कर बोई गयी, ठीक से सिंचाई नहीं हुई, फसल मुरमुरा कर रही गयी फिर भी औसतन ठीक है। फागुन के उल्लास के महाघट में जैसे कहीं कोई छेद हो गया हो। जैसे इन गीतों, इन हँसियों, इन रंगों की उमड़-घुमड़ में एक काला काला साया लिपट गया हो।

शिवरात्रि का दिन आ गया। नीरू छुट्टी पर घर आया था। नीरू ने देखा लड़कियों के झुण्ड को, वे महादेव की पूजा कर रही हैं। वह महादेव की पूजा का मर्म समझता है—मगर आज वे दो आँखें तो नहीं हैं जिन्होंने पर साल महादेव जी की पूजा करने के बाद कुएँ पर खड़े नीरू की ओर मुसकरा कर देखा था—मानों कहा था कि समझे इस पूजा में मैंने क्या मांगा है?

'आह संध्या! तुम मेरे जीवन की कितनी बड़ी साध हो। आज तुम पता नहीं कहाँ होगी? महादेव की पूजा करने के बाद हंसकर तुम्हारी आँखों ने पता

नहीं किसे देखा होगा ? ओ भोली भाली बालिका मुझे तुम पर अविश्वास नहीं है लेकिन शहर...शहर...शहर इस कमबख्त पर मुझे विश्वास नहीं ।

इतने दिन हो गये देखा नहीं । छुट्टियों में घर आयेगी तो मुलाकात होगी । मगर इस एक साल में ही क्या वह बदल नहीं गयी होगी । गोरखपुर...गोरखपुर कोई दूर तो नहीं, जा सकता हूं मगर नहीं मेरा वहाँ जाना ठीक नहीं । छुट्टी भी तो नहीं मिलती । हफ्ते में एक दिन की छुट्टी मिलती है सो हफ्ते भर की तनख्वाह लेकर भागे भागे घर आना पड़ता है । न आऊँ तो घर उपास होने लगे । आह ये मासूम-मासूम सात-आठ आँखें मुझे जैसे बेवसी से पुकारती रहती हैं । उधर अनुराग से तरल दो मोहक आँखें । नहीं बेबस आँखों को मैं नहीं छोड़ सकता हूं नहीं छोड़ूंगा । छुट्टियों में तो संध्या आयेगी ही.....।

होली के दिन तो नौकरी छूट जा रही है । फिर वही दर दर की ठोकर । हे राम ! क्या होगा ? मुखिया का कर्ज तो जैसे चट्टान बनकर छाती पर पड़ा हुआ है, उसे तोड़ना ही होगा, तोड़ना ही होगा, अपमान की यह जहरीली घूंट कब तक गले के नीचे उतारूँ ? केशव को पढ़ाना ही होगा, लीला का अच्छा विवाह करना होगा, मकान बनवाना होगा, खेत खरीदने होंगे और...और संध्या... लेकिन गांठ में तो कुछ भी नहीं है । एक उकताहट, अफनाहट जालों में जकड़ कर मन को ममल रही है । छटपटाहट के सिवा कुछ हाथ नहीं लगता । एक गांठ सी दिल के भीतर पड़ती जा रही है ।

सामने वाले दरवाजे पर सुमेश गाँव वालों के साथ मस्त होकर चौताल गा रहा था, केशव पोखरी के पास का झरेबर पीट कर बेर चबा रहा था, लीला गाँव की सहेलियों के साथ शंकर की पूजा कर रही थी और नीरू...नीरू...।

३५

नीरू की नौकरी छूट गयी। होली तक ही मिल का सीजन चलता है। दो-चार बीघे खेत में अन्न होगा ही कितना? उसमें भी चोरों की कृपा हो गयी थी। मुश्किल से दो तीन महीने यह अन्न चलेगा—फिर क्या होगा? इसी उधेड़-बुन में बेकार नीरू के दिन बीतने लगे। सोचा कि एक बार फिर शहर जाऊँ, मलिन्द भाई से मिलूं और देखूं। शायद कोई प्रबन्ध हो जाय।

शाम होते-होते मलिन्द के डेरे पर पहुँचा। मलिन्द अपने एक सहपाठी के साथ बैठा चाय पी रहा था। सोफा सेट पर मलिन्द के साथ उसका दोस्त खूब सजा बजा सा बैठा हुआ चाय पीने के साथ ही जोर से हँस रहा था और संध्या सामने थी और एक कुर्सी पर बैठी हुई उनकी बातचीत में रस लेने की कोशिश कर रही थी।

नीरू ने पुकारा—'मलिन्द भइया'

'कौन है? मलिन्द ने भीतर बैठे ही बैठे पूछा।

संध्या उठकर बाहर आ गयी।

'अरे तुम हो। आओ आओ।'

संध्या लपक कर अन्दर गयी।

उछलते हुए कहा—'भइया। नीरू आया है।'

मलिन्द ने चाय की एक घूंट कड़वाहट से गले के नीचे उतारते हुए कहा—हूं।

इस कड़वाहट को संध्या ने और अन्दर प्रविष्ट होते हुए नीरू ने भी लक्ष्य किया।

नीरू को देखते ही मलिन्द ने कहा—'अरे रे नीरू तुम! कब आये भाई!

'आ ही तो रहा हूँ कहता हुआ नीरू पास की एक कुरसी पर धम्म से बैठ गया।

गन्दा फटा कुरता, मामूली सी धोती, चमरौधा जूता, हाथ में एक पुराने किस्म का झोला, धूल धक्कड़ से भरे हुए पांव मलिन्द की आखों में झुंझलाहट भर उठे।

'संध्या नीरू को ले जाओ उस कमरे में, हाथ-मुंह धुलाओ।

'चलो नीरू।' संध्या ले गयी।

'कौन है यह? दोस्त बोला!'

'ऐसे ही कोई खास नहीं, हमारे गाँव का एक लड़का है आया होगा नौकरी चौकरी की तलाश में !' नीरू ने सुना, उसने संध्या को देखा। संध्या ने उसे देखा। दोनों आँखों ने आपस आपस में कुछ कहा सुना और चुप हो गयीं।

हाँथ मुंह धोने के बाद संध्या ने उसी कमरे में उसे जलपान कराया। फिर दोनों चुपचाप एक दूसरे को देखते रहे। नीरू संकोच से झुका जा रहा था मानो कहना चाहता हो कि संध्या मैं अपने को तुम्हारे योग्य प्रमाणित न कर सका। बेबसी तुम्हें मुझसे छीन रही है। संध्या नीरू को देखते ही एक अज्ञात थरथराहट से कांप रही थी जैसे उसका कुछ खोने वाला हो।

'संध्या' मलिन्द ने पुकारा—'सुनील जा रहा है।'

'आयी' कहकर संध्या कमरे से बाहर निकल आयी। पीछे पीछे नीरू भी आकर खड़ा हो गया।

सुनील कुर्सी से उठ खड़ा हुआ—'बहुत देर हो गयी संध्या बहन। तुम तो कभी मेरे यहाँ आतीही नहीं। कभी कभी मलिन्द के साथ आया करो।

'मुझे फुरसत जो नहीं मिलती। स्कूल में पढ़ना और फिर घर आकर घर का काम संभालना।'

'अरे नौकरानी तो है न वह तो सब कुछ कर सकती है।'

'जी नहीं मैं अपना काम स्वयं करना पसन्द करती हूँ। खाना बनाने का मुझे बड़ा शौक है। नौकरों के हाथ का खाना मुझे रुचता भी नहीं और लड़कियाँ इतना भी न कर सकें तो किस काम की।'

'गुड।' सुनील ने बड़ी अदा से सिगरेट फूँकते हुए कहा। उसकी आँखें कुछ अजीब ढंग से छोटी बड़ी तिरछी होकर संध्या पर पड़ रही थीं। वह मुसकराया, यह समझ कर कि अभी देहात से आयी है बाद में तो तितली बन सकती है।

'अच्छा चलूं नमस्ते बहन !'

'नमस्ते।' बड़ी शालीनता से निर्लिप्त भाव से संध्या ने उत्तर दिया।

'नमस्ते भाई साहब !' नीरू का स्वर था।

और बिना नीरू के नमस्ते का उत्तर दिये सुनील मलिन्द के साथ बाहर हो गया।

नीरू को सुनील का रंगढंग अच्छा नहीं लगा। वह वहीं खड़ा-खड़ा जम सा गया। सुनील की मादक आँखें, संध्या के ऊपर उनका टिकना, नमस्ते का उत्तर न देना, ये सारी बातें नीरू के भीतर अटक रही थीं।

'खड़े क्यों हो गये ? चलो ।' संध्या ने कहा।

'अरे हाँ।' अचकचा कर नीरू कह उठा।

संध्या नीरू को आंगन में ले गयी। 'यहाँ बैठो खाट पर—बातें भी करेंगे और खाना भी पकता रहेगा।

'हाँ हाँ तुम चावल दाल साफ करो, मैं तरकारी काट दूँ, चलो लाओ।'

संध्या खिलखिलाकर हँस पड़ी। 'रहे बुद्धू के बुद्धू।'

नीरू इसी उन्मुक्त हँसी के लिए बहुत दिनों से तड़प रहा था। यहाँ आने पर भी कुछ अजीब-अजीब सा बनावटी वातावरण देखकर उसके दिल पर जैसे एक पहाड़ लद गया था। संध्या की खिलखिलाहट ने अपनी धारा से उस पहाड़ को काट कर बहा दिया। जैसे हलकी हलकी स्वच्छ हवा वह उठी हो और आसमान का धुंध-भरा बोझिलपन कट गया हो।

मुस्करा कर नीरू ने कहा—क्या ?

'अरे क्या क्या ? तुम्हें आयेगा भी ? और नहीं तो हाथ काट लोगे ?'

'क्यों संध्या आयेगा क्यों नहीं। जब इतनी बडी गरीबी और अभाव को काट सकता हूँ तो तरकारी काटने में क्या रखा है ?'.

'तुम्हारी आदत गयी नहीं तड़पाने की।'

संध्या तुनक कर बोली

'अच्छा तो छोड़ो मैंने अपनी बात वापस ली। और यों समझो कि काटने का काम स्त्रियाँ अपने ही हाथ में रखना चाहती हैं, दिल काटना हो तो, तरकारी काटनी हो तो...'

'बस बस कवी महाराज।'

'तुम मुझे कवि क्यों कहती हो ? दिल में एक उमंग थी, तुकवन्दियाँ जोड़ा करता था किन्तु अब तो वर्षों से उसका पीछा छोड़ चुका हूँ। अब तो बस नौकरी चाकरी के चक्कर में अपना सब कुछ भूल गया हूं।'

'हूँ।' कहकर संध्या चावल बीनने लगी।

'तुम्हें शहर कैसा लगा संध्या ?'

'जब मैं आयी तो काट खाता था लेकिन अब तो धीरे धीरे अच्छा लगने लगा।'

'क्यों गाँव की याद नहीं आती!'

'आती क्यों नहीं ? पहले तो मैं रात-रात को, अकेले में बैठ-बैठ कर रोया करती थी गाँव की याद कर करके। गाँव के सारे लोग, सारी जगहें मेरी आँखों में तसवीर की तरह घूमती रहती थीं किन्तु धीरे धीरे शहर की चहल-पहल, स्कूल की दोस्तों और नयी-नयी रौनकों ने मेरे आँसू पोंछ दिये। और अब तो गाँव जाना न जाना मेरे लिए बराबर होगा।'

'हूँ' एक मर्म-भरी गंभीरता से नीरू ने कहा।

'गाँव में क्या रखा है नीरू! देखो न सखियों के नाम पर गेंदा चमेली जैसी आवारा छोकरियाँ हैं। गाँव के लौंडे हैं जो बिंदिया चमाइन के पीछे पड़े रहते हैं और गाँव की लड़कियों पर बुरी निगाह गड़ाये फिरते हैं। गाँव के लोग चोरी करते हैं, खेत उखाड़ते हैं, घर फूंकते हैं, चुगली करते हैं—ऐसे गाँव में क्या रखा है ? और तो और दिल बहलाने के लिए कोई तरीका नहीं। किसी

से बात करो तो वह दूसरों की शिकायत करता है । औरतें हैं तो उन्हें एक दूसरे के घर की पोल खोलने में ही मजा आता है ।

'इसीलिए तुम साल भर तक गाँव नहीं गयी । क्यों ?'

'नहीं ऐसी कोई बात नहीं है । जब मैं शहर आयी तो मेरा मन बरबस गाँव की ओर खिंच जाता, इच्छा होती कि गाँव भाग चलूं । परन्तु बरसात के दिनों में वहाँ पर आना कितना संभव हो सकता है तुम जानते ही हो । बाढ़ हटने पर क्वार के महीने में दशहरे की छुट्टी में भी मेरी इच्छा आने की हुई लेकिन सुना कि अभी रास्ता साफ नहीं है, कोई सवारी नहीं आ जा सकती । और फिर तो मेरा मन शहर में रमने लगा । और यदि गाँव जाने की इच्छा भी करूँ तो स्टेशन से दस बारह मील पैदल चल पाना मेरे लिए बड़ा मुश्किल होगा और बार-बार सवारी मंगाना ठीक नहीं जंचता । अब गर्मी की छुट्टियों में चलूंगी ।

'मैं नहीं समझता था कि तुम गाँव को शहर के आगे इतना जल्दी भूल जाओगी ।' कहकर नीरू ने हँसने का प्रयास किया किन्तु मालूम हुआ कि उसकी यह हंसी किसी बड़ी व्यथा से जबरदस्ती फूट कर बाहर निकल रही है ।

संध्या ने भी लक्ष्य किया कि नीरू की बात में कहीं कोई व्यंग्य है लेकिन वह समझ नहीं सकी । बोली तुम हमेशा के पाजी हो—उल्टी-पुल्टी बातें किया करते हो ।

नीरू के मन में सुनील की परछाईं घूम गयी, फिर संध्या का गाँव के प्रति विरक्ति और शहर के प्रति आकर्षण । लेकिन संध्या के ये मेरे प्रति साधिकार शब्द पाजी ? नहीं संध्या भोली भाली बालिका है, इसके दिल के भीतर कहीं कोई परदा नहीं है, कहीं कोई गूढ़ अभिप्राय नहीं है । पर सुनील वह शहरी जादूगर . .लेकिन संध्या गाँव की निश्छल आत्मा । सुनील की आँखों में संध्या के लिए बहुत कुछ था परन्तु संध्या की आँखों में सुनील के लिए कहीं कुछ तो दिखाई नहीं पड़ रहा था ।

लेकिन उसे लगा कि जिस संध्या के लिए वह इतने दिनों से तड़प रहा था आज उसके व्यवहार में पहले जैसी तन्मयता नहीं है । उसे बार बार संध्या से कुछ पूछने की इच्छा हुई मगर पता नहीं किस अज्ञात आशंका से उसकी इच्छा जबान तक आ आ कर रुक गयी ।

'संध्या मैं तुम्हें बहुत याद करता था ।'

'इसीलिए तो साल भर में देखने के लिए कई बार आये ।' संध्या ने मान के स्वर में कहा और थोड़ा सा मुसकरा दिया ।

'संध्या, काश तुम मेरी मजबूरियाँ समझ पाती । मैं किस तरह अपने परिवार को मौत के मुंह में से उबारने के लिए संघर्षकर रहा हूँ, अपने जीवन के सारे सुन्दर सपने अपने ही हाथों तोड़ रहा हूँ लेकिन क्या करूँ संध्या ! परिवार की मौत आँखों से देखी नहीं जाती । दिन रात. . . .'

संध्या ने दौड़कर नीरू का मुंह पकड़ लिया और कांपते हुए कंठ से कहा चुप रहो, भगवान के लिए चुप रहो मैं सब जानती हूँ, मुझसे अधिक तुम्हें और कौन समझेगा ? तड़पाओ मत पापी !

लेकिन नीरू ने संध्या का हाथ हटाकर कहा—'नहीं कहने दो संध्या, जो सत्य है उसे कहने दो. . .संध्या मैं जानता हूँ कि अब मैं बड़ा आदमी नहीं हो सकता, परिवार को जिला सकने के लिये रोजी कमाने वाला एक मामूली आदमी बनकर रह गया हूँ और तुम बी० ए० करोगी, एम० ए० करोगी, हो सकता है किसी बड़े पद पर चली जाओ। बचपन के किये गये वादों को कोई हत्यारा सुन रहा है, प्यारे भोले भाले निश्छल प्रेम-सम्बन्धों को देखकर कोई शैतान मुसकरा रहा है, हमें क्या मालूम था ? बचपन में हमने जो घरौंदे बनाये थे उसे तोड़ना होगा ही, जवानी के हाथों संध्या ! अब मैं तुम्हारे जीवन के फूलते-फलते रास्ते में विघ्न बनकर नहीं आऊँगा संध्या ! मैं अपनी सीमाएं पहचानता हूँ। बस जीवन भर तुम्हारे प्रेम की याद और दर्द ही क्या कम है ?

'अरे पापी भगवान के लिए चुप रह।' कहकर अहकती हुई संध्या नीरू से लिपट गयी, उसके कंधे पर सिर रखकर हबस-हबस कर रोती रही।

नीरू की आँखों से आँसू झर झर कर उसके बालों को भिगोते रहे।

'संध्या उठो क्या पागलपन करती हो मलिन्द भाई आ जायें तो।'

संध्या भी इस आशंका से जागरूक हो गयी। उसने अपनी आँसू भरी आँखें नीरू की आँखों में डालकर कहा 'वादा करो अब ऐसी बुरी बुरी बातें नहीं कहोगे।'

'नीरू क्या कहे ?' कुछ सोच नहीं पा रहा था। उसका सारा यथार्थ-बोध भावुकता में बह गया। 'नहीं कहूँगा संध्या नहीं कहूँगा।'

आँसू पोछकर संध्या बाथरूम गयी, हाथ मुँह धोया। नीरू ने भी आँखें धो लीं। दोनों की आँखें आँसू से भींग कर कुछ सूज तो अवश्य आयी थीं लेकिन दोनों को कुछ ताजगी महसूस हो रही थी।

'मलिन्द भाई कहाँ गये, कबतक आयेंगे ?'

'कुछ पता नहीं, कहीं निकल गये होंगे। कब आयेंगे कुछ ठीक नहीं है।'

'मैं नौकरी की तलाश में फिर आया हूँ संध्या। मिलकी नौकरी खत्म हो गयी।'

संध्या ने आँखें उठाकर नीरू को देखा भर। फिर अपने काम में लग गयी !

'अब तो जी इतना ऊब गया है कि कहीं परदेश भाग जाऊँ जहाँ कुछ कमा धमा कर परिवार का गुजारा कर सकूँ।'

'जो तुम्हारी इच्छा हो करो, मुझे क्या सुना रहे हो ?' भारी स्वर में संध्या बोली।

'तब किसे सुनाऊँ संध्या ! सबसे तो अपना दर्द कह भी नहीं सकता । तुम्हारी आत्मीयता में इस दर्द को धोकर हल्का करना चाहता हूँ । और तुम हो कि. . .'

जूते की आवाज से दोनों सावधान हो गये । मलिन्द आया और बेपरवाही से कपड़े उतार पुतार कर कुर्सी खींच कर बैठ गया ।

'और कहो निरंजन भाई क्या हाल है ?'

'ठीक है सब, मुसीबत भोग रहा हूँ ।'

'मुसीबत, कैसी मुसीबत ?' कहते हुए मलिन्द ने संध्या से कहा एक गिलास पानी ।

'मुसीबत यही कि नौकरी कहीं लगती नहीं है दर-दर भटक रहा हूँ ।

मैंने तुमसे पहले ही कहा था कि शहर में आकर पढ़ाई लिखाई करो ।'

'मगर यह भी तो मुमकिन नहीं था, पैसे कहाँ से आते और परिवार के लोगों की हालत तो देखी नहीं जाती ।'

'अरे भाई सब चलता रहता है, घबड़ाने से कोई काम नहीं होता ।' कहकर गिलास का पानी गटक गया ।

'मैं नौकरी की तलाश में आया हूँ । आपकी निगाह में कोई नौकरी हो तो ध्यान रखें ।'

बहुत देर तक बातें होती रहीं । मलिन्द ने बहुत से आश्वासन दिये । सुबह सुबह नीरू घर लौट आया ।

३६

....

चैत लग गया था । फसलें पक चुकी थीं । कटिया पड़ गयी थी । लेकिन मुसीबत यह थी कि पाँड़ेपुर में अधिकांश बस्ती ब्राह्मणों की है, नान्ह जाति कम हैं । इसलिए कटिया के लिए मजूरों की बड़ी छीना-झपटी मच गयी थी । भिनसहरा होते होते पांड़े लोग चमारों, गड़ेरियों आदि के यहाँ लट्ठ लिए पहुँच जाते । इस साल इस गाँव के चमार चौपारन में बहुत मर गये थे । इसलिए मजूरों का और भी अकाल पड़ गया था ।

सुबह के चार बजे रहे होंगे । रघू बाबा के नाती धिरेन्दर दिनई हरिजन के यहाँ लट्ठ लेकर पहुँच गये । पुकार लगाई—अरे दनई हो, सोते ही रहोगे कि जागोगे भी ।

दिनई अँगड़ाई लेकर उठ बैठा—'क्या है मालिक ?'

'आज अपनी बेटियों को हमारे यहाँ कटिया पर भेजो ।'

'मालिक पुनिया को तो बुखार आ रहा है और लवंगी तो जायेगी धीमड़ बाबू के यहाँ ।'

'और मेरे यहाँ क्यों नहीं आयेगी ?'

'मालिक उन्होंने कल ही कहा था ।'

'और मैंने तो कई दिन पहले कहा था ।'

'कई दिन पहले की बात कैसे याद रहेगी जब यहाँ रोज छीना-झपटी होती है ।'

'पुनिया को भेजो ।'

'बाबू उसकी तबियत ठीक नहीं है ।'

'हूँ अच्छा देखूंगा ।' कहकर धिरेन्दर ने छान पर एक लट्ठ जमाया और वहाँ से चल पड़ा । धीमड़ पांड़े तो थे गरीब आदमी परन्तु उनकी देह पर ईश्वर की विशेष कृपा थी । वे चाहे खायें चाहे उपवास करें, उनकी देह का कुछ बनता बिगड़ता नहीं था ।वह एक भाव से थलथलाती हुई धीमड़ की भागती फिरती गति का साथ देती । धीमड़ पांड़े गोंइड़ का अपना जौ काट रहे थे, तीन चार मजूरे भी साथ थे ।

धिरेन्दर का खेत धीमड़ के खेत की बगल में ही था । धिरेन्दर को कोई मजूरा नहीं मिला । इसलिए वह अकेले ही खेत काटने चल पड़ा । पहुँचा तो देखा धीमड़ के खेत में लवंगी तो काम कर ही रही है पुनिया भी आ धमकी है । धिरेन्दर को आग लग गयी । यह दिनई साला झूठ बोलता है मुझसे । समझूंगा उसे । लेकिन

धिरेन्दर का गुस्सा भविष्य की प्रतीक्षा करने में असमर्थ हो रहा था। इसलिए वह आगे बढ़ा––

'क्यों री हरामजादी मेरे खेत में बढ़कर क्यों काट रही है।' कहते हुए धिरेन्दर ने पुनिया को पीछे से एक लात जमा दिया। वह इस अप्रत्याशित हमले को संभाल न सकी और एक ओर लुढ़क गयी। दंतिहा हंसुआ उसकी अंगुली को खर्र से चीर गया। वह तो यों ही आज अस्वस्थ थी, बाप के बहुत मना करने पर भी मजूरी करने चली आयी थी। फिर धिरेन्दर का प्रतिशोध भरा पदाघात। वह तिलमिला गयी।

छोटी बहन लवंगी बगल में ही थी। हंसुवा तान कर खड़ी हो गयी––क्यों रे दहिजरा तेरे बाप की कमाई खाते हैं। मेरी बहन को तूने काहे मारा। इसी हंसुवे से करेजा चीर दूंगी, परान खींच लूंगी।' और एक मजूरिन पुनिया को आश्वस्त करने में लगी थी और लवंगी लाल लाल आँख किये खड़ी होकर धिरेन्दर का नेवछावर उतार रही थी।

'बड़ा बहादुर बनता है तो तेरा बाप बैठा हुआ है (धीमड़ की ओर संकेत किया) खेत उसी का है न! उसीने तो हम लोगों को खेत काटने का हुकुम दिया है उससे क्यों नहीं बोलता?'

धिरेन्दर बाभन का लड़का है। यह तो उसका जन्म सिद्ध अधिकार है कि वह चमाइनों को गाली दे, मारे, उनका जैसा चाहे उपभोग करे (भले ही गांठ से एक भी पैसा खर्च न हो) किन्तु चमार की छोकरी उसे गालियां दे, ताव दिखाये, यह वह कैसे बर्दाश्त कर सकता है? वह लाठी का हूरा तान कर बोला––बक बक करेगी तो इसे देखती है न...

धीमड़ इस अप्रत्याशित घटना से अवाक हो आँखें लाल-लाल किये बैठा था। लेकिन जब धिरेन्दर लाठी का हूरा तान कर भद्दी भद्दी गालियां उगलता हुआ दूसरे आक्रमण की तैयारी में दिखाई पड़ा तो धीड़म उठकर अपनी थुलथुल बाँहें झटकारता हुआ बोला––खबरदार रघू के नाती अब बुरा हो जायगा। खून की नदी बह जायेगी अगर हाथ छोड़ा तो।

'अरे जा बड़ा आया है खून की नदी बहाने वाला। बढ़कर खेत काट रहा है और चमाइनों की ओर से लड़ने आया है भिखमंगा कहीं का। बड़ बड़ करोगे तो फिर दिखा दूंगा।'

'अरे तो तू कहाँ का धन्ना सेठ है रे धिरेनरा। तुझे शरम नहीं आती है यह कहते। साल भर दूसरों का खेत उखाड़ उखाड़ कर अपना और बैलों का पेट जिलाता है, गाँव की लड़कियों के पीछे पीछे चक्कर लगाता घूमता है और मुझको भिखमंगा कहता है। कहाँ तेरा खेत काटा है बढ़ कर मैंने? मेड़ तो यह है, देख ले, वहाँ पत्थर गड़ा है, वहाँ खूटा गड़ा है।'

'देखा है, देखा है उसकी सीध में यह आता है और साले मार कर सिर गंजा कर दूँगा। हमें घटिहा-चोर बनाता है अपनी बेटी चमेली को नहीं देखता जो...।

'अतऽ कहि देत हुईं धिरेन्दर, खून हो जाई। लड़की पर उतरे कि ठीक नहीं होगा।' कहते कहते धीमड़ आगे बढ़ गया। धिरेन्दर ने उसकी बढ़ी हुई बाँह को झटक कर कहा—'खून से कहाँ डरता हूँ। मार कर ढेर कर दूंगा।'

आसपास के लोग यह होल-हल्ला सुनकर वहाँ आने लगे थे और इधर हाथा पाई शुरू हो गयी।

धिरेन्दर ने लाठी तानकर धीमड़ की धमधूसर पीठ पर दे मारी। चमाइनें भयभीत होकर चीखने लगीं। धीमड़ इस प्रहार से ऐंठ गया लेकिन अपनी लाठी उठा ली और कहा आ जाओ साले रखुवा क नाती।' और तड़ातड़ लाठियां बजने लगीं। धीमड़ उम्र में चालीस के आसपास था, देंह थुलथुल, इसलिए नवयुवक फुर्तीबाज और खूब खेलने वाले धिरेन्दर का जोड़ नहीं दे पा रहा था फिर भी लाठी बरसाये जा रहा था।

धीमड़ पुराना खेलाड़ी था यद्यपि उसमें यौवन का वह ओज नहीं था। धिरेन्दर नवसिखुआ था यद्यपि वह अभी जवानी के खून से गरम था। धीमड़ ने दांव बदल कर एक लाठी धिरेन्दर के हाथपर ऐसी मारी कि उसकी उंगली चिर गयी और खून की धारा फूट पड़ी, लाठी छूटकर दूर गिर गयी।

अब तक लोग या तो तमाशा देख रहे थे या जबानी ढंग से छुड़ा रहे थे। लेकिन धिरेन्दर का पतन देख कर धिरेन्दर की पट्टी के लोग उबल पड़े। धीमड़ दूसरी लाठी तानकर धिरेन्दर को मारने ही वाला था कि बैजू लपक कर सामने आ गया और लाठी तानकर बोला—'अतऽखून हो जाई धीमड़।' और उसने धीमड़ को अपने हाथ से पीछे ढकेल दिया। धीमड़ भदाक से गिर पड़ा।

धीमड़ धूल झाड़ता हुआ उठ खड़ा हुआ और बकने लगा—अतऽहे तुलसी क बेटा अब तुम आये हो उपरवाँती लड़ने।

बैजू ने गुस्से में कहा—बाप बखानोगे तो मुंह तोड़ कर रख दूंगा। तब तक धिरेन्दर ने संभल कर एक लाठी धीमड़ के सिर मर जमा दिया और खून का फौवारा फूट चला। धीमड़ अरे बाप कहता हुआ गिर गया और लोग त्रस्त और क्रुद्ध होकर बाग-युद्ध करने लगे। पट्टीदारी का भाव उमड़ आया। बेनी काका का लड़ाका छबीले लाठी लेकर छरक उठा और अपने भाई-बन्धुओं को ललकारा—'अब ताकते क्या हो उत्तर टोला वालों ने धीमड़ काका को मार कर गिरा दिया, निकाल लो लाठी और बजड़ जाय।'

उत्तर टोला और दक्खिन टोला में लाठियाँ बजड़ उठीं। रग्घू बाबा ने सुना कि उनके लड़के से धीमड़ से मार हो गयी है तो वे चित्थू चित्थू करते हुए दौड़े आये। उनकी धोती का एक छोर एँड़ी छू रहा था दूसरा घूटने तक टँगा हुआ था। रास्ते में बकते हुए जा रहे थे—'जे बा से के ससुर हमरे नाती से रार ठनलसि हवे, हम मारि

के कपार उधिया देब। जे बासे, धीमड़ ससुर दलिद्दर अदमी-बढ़िकें खेतो कटा लीहें आ मारिओ करिहें। जे बासे आजु हम सबके देखि लेबें।'[1] रग्घू बाबा ने देखा—मार खूब जोम पर है। दोनों टोला के लोग कड़ाकड़ लाठियां चला रहे हैं। आते ही रग्घू बाबा ने लाठी तानी। लाठी पीछे एँड़ी के पास आकर धोती में उलझ गयी, निकले ही न। दक्खिन टोले के एक आदमी ने उन्हें खदेड़ा और वे भागते हुए धोती में उलझ कर गिर पड़े। गाँव के लड़के हो हो करके हंसने लगे।

बेनी काका ढेंकुल की तरह लफते हुए चिट्टिर-पिट्टिर चिट्टिर-पिट्टिर करते हुए जल्दी-जल्दी आये—'तनि देखिलऽ ये ससुरे मारपीट कर रहे हैं, ताकते क्या हो मारो उत्तर टोला वालों को। तनि देखिलऽई सब बड़े बदमाश हैं।' और बेनी काका ने उत्तर टोले के एक आदमी पर लाठी तानी कि बैकुण्ठ पाँड़े ने लपक कर उनकी लाठी पर एक लाठी जड़ दी और उनकी लाठी ठनक कर दूर जा गिरी। फिर अपने पिता पर वार देखकर छबीले लपका और वैकुंठ पांड़े से उससे ठन गयी। सुमेश उत्तर पट्टी का था। वह कहीं से भागा भागा आया। घर आकर कहा—'अरे पट्टीदारी में मार हो गयी लाठी निकालो।' नीरू ने समझाया—'बाबू मैं तो नहीं जाता, ये बदमाश बात-बात में लाठी निकाल लेते हैं। मैं तो नहीं जाऊँगा, आप भी मत जाइए।'

'अरे नहीं रे क्या बात करता है नपुंसकों की सी? पट्टीदारी से मार हो और हम घर पर रहें। निकाल लाठी और वह लाठी लेकर सरपट निकल गया। नीरू तिलमिला कर रह गया—'पट्टीदारी, पट्टीदारी-पट्टीदारी ने मेरा घर फूंका, पट्टीदारी ने मेरा खेत काटा, पट्टीदारी ने मेरे खेत रख लिए हैं, पट्टीदारी का अगुवा मुखिया मेरे परिवार की जिन्दगी के साथ खेलवाड़ खेलना चाहता है, अभी पट्टी-दारी लगी हुई है। ये बेवकूफ अपनी बेवकूफी से लड़ाई शुरू कर देंगे और पट्टीदारी का जोश उभाड़कर पूरे गाँव को आग में झोंक देंगे।'

गाँव के गोंइड़ कोलाहल हो रहा था, औरतें भी पहुँच गयी थीं और पुरुषों के समानान्तर औरतों ने भी वाग् युद्ध छेड़ रखा था। औरते हाथ मटका मटका कर अंगुलियों से चमका चमका कर, एक दूसरे की नकल उतार उतार कर, कमर हिला हिला कर, एक दूसरे के खानदानी रहस्यों को उधेड़ उधेड़ कर हुंकार कर रही थीं। चमेली जैसी कुछ साहसी लड़कियाँ ईंट और ढेले भी पुरुषों की ओर फेंक रही थीं। कुछ आपस में झोंटा-झोंटौवल कर रही थीं। कुछ के लट बिखर कर उन्हें भूतनी का रूप दे रहे थे।

मुखिया सिवान के खेत पर गेहूँ कटा रहे थे। उन्हें मालूम हुआ तो कहा—'कटने मरने दो सालों को।' असल बात यह थी कि उन्होंने दोनों पट्टी के लोगों को

---

१. किस ससुर ने मेरे नाती से रार ठानी है। मैं मार कर सिर अधिया दूँगा। धीमड़ ससुर ने बढ़ कर खेत भी कटा लिया और मार भी कर रहे हैं। मैं आज सबको समझ लूँगा।

अपने में मिला रखा था। दोनों पट्टी के लोग उन्हें अपना अगुवा मानते थे। इसलिए वह इस झगड़े में कैसे पड़ते ? सो वे वहीं रह गये ।

पपीहा पाड़े भी गोरखपुर से जजिमानी से लौटे थे खेत काटने के लिए, और टीसुन भी तराई की जजिमानी से लौट आया था अपना झोला और करताल छिपा कर। सो दोनों में बजड़ गयी । खिट्ट-खांय, खिट्ट-खांय करते करते दोनों पुरोहित लड़ रहे थे और दोनों एक दूसरे के वार से घायल होकर मैदान छोड़कर भाग निकले ।

नेता गनपति भी खेत कटा रहे थे । वे भागे भागे आये । यद्यपि वे थे तो उत्तर टोला के लेकिन उनकी नेतागिरी का मान पूरे गाँव में था और पूरे गाँव के वालंटियर उनके सुराजी दल में सम्मिलित थे । वे दौड़े दौड़े फेंकू, हरिजन, निरबल तेली भीखन गड़ेरी और दधिबल यादव के यहाँ गये । 'अरे भाइयो, तुम लोग यहाँ बैठे हो और पूरे गाँव में आग लग गयी है ।'

इन सभी सुराजियों ने कहा कि नेता जी, हम लोग ठहरे नान्ह जाति के । पाँड़े लोगों के मामले में पड़ें, या देखने भी जायें तो अपने लोग अलग होकर हम्हीं लोगों को फंसा देंगे । होने दीजिए मार-झगड़ा, हम लोग नहीं जायेंगे ।

'अरे भाई तुम लोग कैसे हो ? गान्हीं जी का आडर है कि सुराज लेने के लिए हमें एक होना पड़ेगा । जब हम लोग अपने ही गाँव में मेल नहीं करा पायेंगे तो सुराज कैसे मिलेगा ? चलो चलो तिरंगा झंडा उठा लो और हम लोग गान्हीं जी की अहिंसा का उन्हें उपदेश दें । गान्हीं जी का कहना है कि सुराज प्रेम और अहिंसा से मिलेगा और हमें मार खाकर भी अपने रास्ते से नहीं हटना चाहिए । चलो चलो ।,

नेता जी ने खद्दर की मैली कुचैली कुर्त्ता-धोती पहन रखी थी और सिर पर टोपी लगा रखी थी । ताड़ की सिल्ली की तरह नेता गनपति हाथ में तिरंगा उठाये आगे आगे गान्हीं जी की जय बोलते चल रहे थे और पीछे पीछे और उपनेता लोग ।

झगड़े के पास जाकर गनपति ने हाथ उठाकर कहा—'सान्त भाइयो—सान्त, गान्हीं जी का कहना है कि हिंसा बहुत बड़ा पाप है, सुराज आपस में मेल रखने से होगा । आप लोग लड़ाई बन्द करें और सान्ती से अपने अपने घर जायें ।' उपनेताओं ने नेता जी की हाँ में हाँ मिलाई और एक बार जोर की आवाज लगाई—'भारत माता की जय, गान्हीं जी की जय, जवाहर लाल नेहरू की जय ।'

बैजू ने गुस्से में कहा—यह देखो गनपतिया का, यहाँ पट्टीदारी में मार हो रही है और यह हिजड़ा अपनी पट्टी की ओर से न लड़कर उपदेश दे रहा है ।'

'अरे भाइयो, गान्हीं जी का कहना है कि आपस-अपस में भेद नहीं रखना चाहिए । पट्टीदारी, जाति-पाँति और मजहब को भूल कर एक हो जाओ । सभी लोग भारत माता की सन्तान हैं । लड़ाई झगड़ा बन्द करो, अहिंसा करो, अहिंसा करो । अहिंसा करो । अहिंसा की जय ।

लड़के हँसने लगे। कितने लड़ाकुओं को भी इस विषम स्थिति में हँसी आ गयी। लेकिन झगड़ा चलता रहा। नेता गनपति बार-बार हाथ जोड़ कर, गान्ही जी का नाम ले लेकर उन्हें मनाते रहे; लड़के हंसते रहे।

'अरे बाप मरा' चिल्लाता हुआ दक्खिन टोले का शामधारी गिर पड़ा। उसका सिर फट गया था। खून के फौवारे निकल रहे थे। लाठी बैजू की लगी थी।

सारे के सारे लोग स्तब्ध रह गये और कुछ घर की ओर खून-खून चिल्लाते हुए भागे। कुछ लोग गिरे हुए आदमी को घेर कर खड़े हो गये।

औरतें भी डर कर घर की ओर भाग गयीं।

लोग शामधारी को उठाकर घर ले गये। शामधारी बेहोश था। नेता गनपति ने लोगों को भला बुरा कहते हुए शामधारी की मरहम-पट्टी शुरू की। दूसरे गाँव के एक वैद्य बुला कर लाये गये। उन्होंने कहा—'यह तो मेरे मान का नहीं है, इसे गोरखपुर ले जाओ।'

शामधारी के घर और कोई नहीं था। वह था, उसकी एक सत्तर साल की अंधी मां थी और नयी-नयी पत्नी। दोनों छाती पीट कर रो रही थीं। मां की अंधी आँखों से गंगा-जमुना बह रही थीं!

गोरखपुर अस्पताल में ले जाओ भाई! देर करने से कोई फायदा नहीं, सभी लोग बक रहे थे। किन्तु कौन ले जाये, यह कोई नहीं कह पा रहा था। पट्टीदारी के लोग खामोश थे। गोरखपुर यहाँ से बीस मील दूर। मोटर रेल तो जाती नहीं, बैलगाड़ी का ही आसरा। लेकिन बैलगाड़ी जब तक पहुँचेगी तबतक तो पता नहीं क्या से क्या हो जायेगा? फिर भी चारा ही क्या है? बैलगाड़ी ही सही। लेकिन बैलगाड़ी दे कौन? उत्तर टोला के लोग तो दुश्मन ही ठहरे। अपनी पट्टीदारी के लोगों की भी गाड़ियाँ खाली नहीं। किसी की बैलगाड़ी चना लादने गयी है, किसी की गेहूँ लादने, किसी की गाड़ी की धुरी टूटी है, किसी का पहिया खराब है, किसी का बैल बीमार है, किसी का एक बैल कहीं तुड़ा कर भाग गया है।

शामधारी की बूढ़ी मां चिल्ला रही थी कि नहीं नहीं मेरा लाल कहीं नहीं जायेगा, मेरी आँखों के सामने रहेगा। शामधारी की नयी-नयी पत्नी घर के भीतर बैठी कलेजा फाड़-फाड़ कर चीख रही थी।

नेता गनपति ने घबरा कर कहा—'अरे भाइयो, इतने बड़े गाँव में कोई बैलगाड़ी नहीं दे रहा है। कैसी शरम की बात है कि एक आदमी मर रहा है और कोई गाड़ी नहीं दे रहा है। पट्टीदारी का जोश ठंडा हो गया। फेंकू भाई, चलो। डोलीबँसवा तैयार करो, एक ओर तुम कंधा लगाओ, एक ओर मैं।'

तब तक एक बैलगाड़ी द्वार पर आकर लगी। 'किसकी है भाई?' 'घनश्याम बाबा ने भेजी है शामधारी बाबू को अस्पताल भेजने के लिए।'

शामधारी अचेत पड़ा हुआ था यद्यपि कपड़े आदि लपेट देने से खून का बहाव बन्द हो गया था।

लोगों ने शामधारी की मां और बहू को जबरदस्ती रोक कर शामधारी को गाड़ी पर लिटाया। गाड़ी गोरखपुर के लिए चल दी। पट्टीदारी का टीसुन, नेता गनपति और फेंकू हरिजन गाड़ी के साथ गये और किसी को अपनी खेती गृहस्थी से फ़ुरसत ही नहीं मिली।

३७

गाड़ी ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर हचके खाती हुई आगे बढ़ने लगी । दुपहर हो गयी थी । चैत की तीखी दोपहर से बचने के लिए गाड़ी पर कपड़े का एक मामूली सा तनाव तान दिया गया था । फिर भी हवा के गर्म-गर्म धूल-भरे झोंके गाड़ी के कलेजे को फाड़ते हुए आरपार निकल जाते थे ।

शामधारी बेहोशी में आह-आह कर रहा था । गरम हवा । ऊँची नीची जगहों पर गाड़ी के गिरने से जख्म में एक झटका सा लगता तो वह और जोर से तड़प उठता ।

'बढ़ा ले चल भाई गाड़ीवान, गाड़ी को ।' नेता गनपति बार बार ललकारता ।

'पानी ।' शामधारी रह रह कर कराह उठता ।

गनपति ने लोटे में पानी रख लिया था और पानी मांगने पर कपड़े में पानी भिगो कर उसके मुंह में चुवाता ।

पांड़ेपुर से गोरखपुर तक कोई भी सड़क नहीं थी । कच्चे रास्तों, कटे हुए खेतों और अनगिन ताल-पोखरों, नदी-नालों को पार करती हुई गाड़ी धीरे-धीरे जा रही थी । कहीं कहीं नाले में गाड़ी को धक्के देने पड़ते । कहीं-कहीं घुटने भर रेत में गाड़ी फँस जाती तो गाड़ी को ढकेलना पड़ता । चार पांच मील जाने पर गोर्रा नदी की विकट चढ़ाई पड़ी । गाड़ी का एक पहिया दो हाथ ऊँचे उठ गया और दूसरा एक हाथ नीचे धंस गया । शामधारी के घाव पर एक जोर का झटका लगा और घाव खुल गया । उसकी पूरी देंह रक्त से सराबोर हो गयी ।

नेता गनपति संभल कर बैठ गया ।

'भाई' शामधारी ने पुकारा

'भाई शामधारी' चुपचाप लेटे रहो ।

'माई वो कहाँ है ? बुला दे ।'

गनपति का माथा ठनका ।

'बु...ला...दे...।

'शामधारी' गनपति ने पुकारा

शामधारी एक दम शान्त हो गया था । उसकी आँख एक दम बन्द थी, गनपति ने जल्दी से उसकी देंह छुई, ठंडी थी । नाड़ी पकड़ी, बन्द थी ।

'गाड़ी घुमा दो घर की ओर' गनपति ने भर्राये हुए गले से कहा ।

'क्या ?' एक ही साथ टीसुन, फेंकू और गाड़ीवान ने कहा ।

'अब गोरखपुर जाने की कोई जरूरत नहीं ।'

सभी फफक कर रो पड़े । गनपति का चेहरा एक दम स्तब्ध और काला पड़ गया ।

गाड़ी धीरे-धीरे गाँव को वापस होने लगी । सब चुप थे । गनपति ने मौन भंग किया—

'फेंकू जी, जानते हैं आप कि शामधारी को किसने मारा है ?'

'हाँ नेता जी, सब कोई कहते हैं कि बैजू पांड़े की लाठी लगी है ।'

नेता गनपति ने फेंकू की ओर एक रहस्यभरी दृष्टि से देखा—जैसे वे कह रहे हों कि तुम नहीं जानते ।

'बैजू ने नहीं मारा फेंकू जी, अंगरेजी सरकार ने मारा है ।'

सभी लोग नेता गनपति की इस उलट-बांसी पर हैरान रह गये और जिज्ञासा भरी दृष्टि से नेता जी को देखने लगे ।

'हाँ, हाँ अंगरेजी सरकार ने मारा है । अंगरेजी सरकार ने ही भाई-भाई के बीच फूट डाल रखा है, यह जमीदार-असामी का फर्क बना रखा है । अगर अंग्रेजी सरकार हट जाय, कांग्रेसी सरकार हो जाय तो भाई-भाई आपस में लड़ें ही नहीं ।

नेताजी चुप हो गये और शेष तीनों आदमी सहमति-सूचक सिर हिलाने लगे ।

नेताजी ने बात आगे बढ़ाई—इतना ही नहीं, इस अंगरेजी सरकार ने हमारी जिन्दगी पायमाल कर दी है । देखो इतना बड़ा कछार है, यहाँ कोई अस्पताल नहीं है । अगर अस्पताल होता तो क्या शामधारी मरने पाता ?

नेता जी फिर चुप हो गये, फिर कुछ क्षणों बाद बोले—यहाँ से गोरखपुर तक कोई सड़क नहीं है, रेल नहीं है, आज सड़क या रेल होती तो झट मोटर या रेलगाड़ी पर लादकर शामधारी को गोरखपुर अस्पताल में पहुँचा दिया गया होता । क्या यह बालू और नदी-नालों के चक्करों में फंस कर मरने पाता ? भगवान जाने कब कांग्रेसी राज होगा कि इस देश का और इस कछार का भाग जागेगा ?

दो घड़ी रात होते-होते गाड़ी लौट आयी । गाँव में तो सनसनी पहले से ही फैली हुई थी, गाड़ी के लौट आने पर पूरे गाँव में तहलका मच गया—शामधारी मर गया, शामधारी मर गया ।

शामधारी की अंधी मां छाती पीट पीट कर शामधारी की लाश को छाती में चिपटा-चिपटा कर रो रही थी । वह कभी धीमड़ को, कभी धिरेन्दर को, कभी बैजू को गालियाँ बकती हुई बुरी तरह डहक रही थी ।

उसकी नवागता पत्नी सारा लोक-लाज भूल कर घर में से दौड़ी हुई आयी और कटे हुए वृक्ष की तरह लाश पर धड़ाम से गिर पड़ी और बेहोश हो गयी ।

होश आने पर वह कारन कर कर रोने लगी—

आरे ए मोर रजवा
रजवा हमके विसारि
कहवाँ गइले रे रजवा !

चारो ओरियाँ चितई लें
तुँहके रे रजवा।
कहूँ नाहीं तोके
देखत बाटीं रे रजवा।

यह दर्दनाक चीख चैत की फूली-फूली रात को दूर-दूर तक चीरती रही। उसकी सहानुभूति में मुवाख रिरिया उठी मुर्‌ओ, मुर्‌ओ। सियार हुआँ उठे.... उऊँ...उऊँ...।

३८

पट्टीदारी के लोग उकसाने लगे कि मुकदमा दायर करना चाहिए उत्तर पट्टी के लोगों पर। किन्तु शामधारी की माँ समझ नहीं पा रही थी कि वह मुकदमा दायर करके क्या करेगी। उसका खोया हुआ पूत क्या मुकदमें से वापस लौट आयगा ? और मुकदमा लड़ेगा कौन ? खर्च कौन देगा ? इसी उधेड़ बुन में सात दिन बीत गये। शामधारी की माँ की तबीयत खराब होती जा रही थी, उसने खाना पीना छोड़ दिया था।

गाँव में सनसनी मची हुई थी कि दारोगा साहब आने वाले हैं तहकीकात के लिए। बैजू फरार हो गया था, धिरेन्दर भी कहीं गायब हो गया था, धीमड़ लापता था।

दारोगा साहब आ गये। वह देखो लाल घोड़ा दिखाई दे रहा है। गाँव के लोग भय से कांपने लगे। माताओं ने लड़कों को मना कर दिया, पत्नियों ने पतियों को मना कर दिया, जवान बेटों ने बूढ़े बापों को मना कर दिया कि दारोगा के पास मत जाना। पता नहीं, वह क्या पूछ बैठे ? और अपने को ही फंसा दे।

दारोगा आ गया। वह उस जवार में बहुत ही जाबिल और खौफनाक दारोगा माना जाता था। सात फीट ऊँचा, खूब मोटा चौड़ा पठान था। उसकी रोबीली दाढ़ी उसके फूले हुए तनावदार चेहरे की भयंकरता और बढ़ाती थी। उसके फूले हुए गालों के ऊपर छोटी छोटी तेज आँखें चमकती रहती थीं। उसकी गरदन तेली के कोल्हू की तरह मोटी और काली थी। जब वह फौजी जूता पट, पट करता हुआ चलता तो लोगों के कलेजे भय से कांप उठते।

पठान दरोगा आकर मुखिया के द्वार पर उतरा। उसके साथ आठ दस सिपाही थे, लाल-लाल पगड़ी बाँधे हुए। मुखिया ने खाट बिछा दी। एक आदमी को पानी वोनी पिलाने के लिए आदेश दे दिया।

वे दारोगा के पास आकर अदब से खड़े हो गये और हाथ जोड़ कर बोले—'हुजूर ने आने में बहुत देर की।'

दारोगा ने एक बार कड़ी निगाह से मुखिया को देखा, मुखिया भय से सिहर गया।

फिर कड़क कर बोला—'ये भी साला कोई इलाका है ? साला चारो तरफ दरयाव है, खाई है, खंदक है, चोर हैं, चाई हैं, उचक्के हैं ; न सड़कें हैं, न ठीक रास्ते

और यहाँ के आदमी साले इतने दरिन्दे हैं कि रोज खून करते हैं। इन हैवानों के दरम्यान मेरी जान आफत में पड़ गयी है।'

'हाँ हजूर, तनी देखिल, इस इलाका पर सरकार निगाह नहीं फेरती, यहाँ के आदमियों की हालत जानवरों से भी खराब हो गयी है।' हाथ जोड़ कर बेनी काका ने कहा।

'साला बाभन बगावत की बात करता है। सरकार क्या करे जब तुम शैतान के बच्चों आपस में कटते मरते हो।' दारोगा ने अपनी दाढ़ी मलते हुए कहा।

मुखिया ने बेनी काका को आँख मारी कि चुप रहो।

बेनी काका अपनी ऊँट सी लम्बी गरदन मटका कर, स्तब्ध होकर रह गये।

मौका देखकर रग्घू बाबा ने ललकारा—

'आ जे वा से, ई गँवार मनई हाकिमन के मुँहे लगल करे लें। मुँह के बढ़ले जवने होई अण्ट सण्ट बोलि दीहैं। हजूर ई जिन्दगी भर घासि उखारत रहि गइलें, कब्बो बड़आदमिन क साथ त भइल नाहीं जे वा से...?[१]

'चुप रह ऐ बुढ्ढा, बक-बक मत कर। यह बताओ कि साले रामधरिया की लाश कहाँ है?

सब लोग इस बेहूदे सवाल से अवाक रह गये, किसी का बोल नहीं फूटा डर के मारे।

मुखिया ने हाथ जोड़ कर कहा—'माई बाप, लाश तो फूँक दी गयी। आज सात दिन हो गये, सात दिन तक लाश कैसे पड़ी रह सकती थी?'

'सात दिन नहीं सात महीने लाश रखनी चाहिए थी, यह कत्ल का मामला है, लाश की निगरानी करनी पड़ती है।'

मुखिया ने बात न बढ़ानी ही बुद्धिमानी समझी क्योंकि वह अफसरों के झक्की स्वभाव से परिचित था।

'हजूर माई बाप हैं' वाजिब कह रहे हैं लेकिन गाँव के गँवार लोगों को इतना कानून कहाँ मालूम? हजूर माफी दें और आगे की कारवाई करें।'

'हूँ' कह कर दारोगा ने मुखिया की ओर रहस्यभरी दृष्टि से देखा। फिर कड़क कर बोला—'किसने मारा रामधरिया को?'

सब लोग भय से सर्द हो गये। सभी खामोश हो रहे। 'अरे काफिरो, बोलते क्यों नहीं, खड़े खड़े अपने बाप का मुँह क्यों देखते हो? बोलो नहीं एक-एक को कैद की हवा खिलाऊँगा।'

फिर कोई नहीं बोला, सब एक दूसरे का मुंह ताकने लगे।

---

१ यह गँवार आदमी हमेशा हाकिमों के मुँह लगा करता है, मुँहबढ़ होकर अंट संट बका करता है। हजूर! जिन्दगी भर घास उखाड़ी है बड़े आदमियों का साथ कभी नहीं हुआ इससे।

दारोगा ने बेनी काका की ओर इशारा करके पूछा—'ऐ ऊँट तू बता, चार हाथ की गरदन क्यों हिला रहा है ?

'हजूर ! लोग कहते हैं तनि देखिलऽ—कि बैजू की लाठी शामधारी को लगी थी ।'

'अबे शुतुर्मुर्ग का बच्चा तनि देखिलऽ क्या कहता है, साफ-साफ क्यों नहीं कहता?'

'हजूर माई बाप, हमने देखा नहीं है, काहे को किसी को गाय बधें इस बुढ़ौती में । लोग कहते हैं हजूर ! हम तो थे भी नहीं ।' बेनी काका गिड़गिड़ाये ।

'हूँ' जलती हुई आँखों से दारोगा ने देखा । बेनी काका काँप गये ।

'ऐ बूढ़ा तू बता किसने मारा है शमधरिया साले को ।' दारोगा ने रग्घू बाबा को लक्ष्य करके कहा ।

'आ हजूर जे बा से हम त रहलीं नाहीं । गाँव वाले कहत रहलें कि छबीले क लाठी लगल हवे ।'[1]

'छबीले साला कौन है ?' दारोगा कड़का ।

मुखिया कभी से रग्घू बाबा को आँख से संकेत करके कह रहे थे कि कुछ कहो मत लेकिन रग्घू बाबा अपनी धुन में मस्त थे । बोले—'हजूर आ जे बा से छबीले एही बेनी क बेटा हवें ।'[2]

'कहाँ है छबिलवा साला पकड़ लाओ ?'

बेनी काका हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ाने लगे—'दोहाई है सरकार की । ई रग्घू हमसे खार खाये बैठे हैं, झूठ बोलते हैं । तनि देखिलऽ सरकार हमारा बेटा तो महीने भर से कलकत्ता कमाने गया है ।'

'सिपाही ।' दारोगा कड़का—'इन सब सालों को कतार में खड़ा कर दो और बारी-बारी से सबको जूते लगाओ ।

सब लोग काँप कर एक दूसरे का मुंह देखने लगे—'गया आज सारा धरम करम । चमार जूते लगायेगा ।'

सिपाही गरजा—'खड़े हो जाइए—आप लोग । वह अपने जूते संभालने लगा ।

दूसरे सिपाही से कहा—बुला लाओ शमधरिया की माँ को ।

मुखिया ने बात संभाली—'हुजूर गुस्ताखी माफ करें । बात असल यह है हजूर, मारपीट बड़े जोरों से हो रही थी । किसकी लाठी किसको लगी किसको नहीं, यह कहना बड़ा मुश्किल है । ये दोनों आदमी बेवकूफ हैं, इन्हें यह भी नहीं मालूम कि हाकिमों के सामने कैसे बात करनी चाहिए । किसी ने देखा नहीं उस भीड़ में कि किसने शामधारी को मारा ।

---

१. हजूर मैं तो रहा नहीं, लोग कहते हैं कि छबीले की लाठी लगी है ।

२. हजूर, छबीले इसी बेनी का लड़का है ।

'हाँ माई बाप, हमने सरकार के डर से ई बात कही है, हमने तो पहले ही कहा कि देखा नहीं है।' बेनी काका गिड़गिड़ाये।

नाटे ठिगने कद का टीसुन घुटने तक दो काछ धोती पहने, आधी बांह वाली गाढ़े की बनयाइन पहने और पगड़ी बांधे खड़ा था। उसकी हथेलियाँ पसीज रही थीं और उसकी पतली नाक की नोक पर दो चार काले-काले बाल थे जो पसीने से भीग रहे थे। गालों के दोनों ओर काली-काली झाइयाँ पड़ी हुई थीं। बोला—'ए बेनी काका साफ-साफ कहते काहे नहीं कि बैजू ने मारा है। डर किस बात का है? हजूर तो माई बाप हैं।

दारोगा ने अब जाकर इस उपेक्षित व्यक्ति की ओर देखा—'कौन है यह?'

'हजूर यह शामधारी का भतीजा लगता है पद में। है उसी खानदान का।' कहकर मुखिया ने जलती आँखों से टीसुन को इस भाव से देखा कि यह साला बना बनाया काम बिगाड़ रहा है।

'तो बताओ पठ्ठे तुम्हीं सही-सही बताओ। बड़े बहादुर मालूम पड़ते हो किसने मारा शमधरिया को?' दारोगा ने टीसुन को शाबाशी दी।

'हजूर सभी लोग जानते हैं कि बैजू ने मारा है लेकिन कहता कोई नहीं।'

'शाबाश टीसुन, तुम भी मार-पीट में थे।'

'नहीं हजूर मैं तो नहीं था।'

'नहीं थे तो तुम्हें कैसे मालूम कि बैजू ने शमधरिया को मारा है।'

'हजूर, हजूर, माई, माई बाप, गाँव भर के लोग कहते हैं।'

'और गाँव भर के लोग ये भी कहते हैं कि मार-पीट में कोई शामिल नहीं था लेकिन खून हो गया। अरे काफिरो सही-सही क्यों नहीं बोलते?'

कुछ देर चुप रहने के बाद दारोगा फिर डपटा—'टिसनवा बोल, मार-पीट में कौन-कौन था?'

टीसुन की घिग्घी बंध गयी, उसकी नाक का पसीना और गाढ़ा हो गया, गाल की झांई और गहरी हो गयी। वह अपने ही बनाये हुए जाल में फंस गया।

'हजूर मैं नहीं जानता।'

दारोगा को गुस्सा आ गया था। दाढ़ी खुजला कर उठा, और टीसुन को अपनी दोनों हथेलियों में जकड़ लिया और दो हाथ ऊपर उठाकर धड़ाम से पटक दिया और फिर उसे गेंद की तरह उठा कर पाँव से मारा। वह लुढ़कता हुआ बैल के खूंटे से जा टकराया और खूंटे से बंधा हुआ बैल खड़खड़ा कर पगहा तुड़ा कर भाग निकला।

टीसुन खून पोंछता हुआ उठ खड़ा हुआ।

दारोगा बड़बड़ाया—'साले काफिरों के जानवर भी बदमाश होते हैं?

टीसुन की मार से सब लोग स्तब्ध रह गये, सबके खून सर्द हो गये।

शामधारी की माँ विलाप करती हुई आयी।

'क्यों बुड्ढी तेरे लड़के को किसने मारा है ?'

'आरे ए हजूर हमके का मालूम के मरलसि हमरे ललवा के। पूरा गाँव मिलि के खा गइल हमरे करेजवा के। फिर वह रोने लगी—आरे ए हमार ललवा..., आरे ए मोर करेजवा......'[1]

'अरे यह तो एक तोहमत आ गयी। यह बुड्ढी को कयामत बरपा कर रही है। अरे ओ बुड्ढी—बोल किसने तेरे लड़के को मारा है, मैं उसे फांसी पर चढ़ाऊँगा।'

'आरे ए थानेदार साहब, केहू मरले होखे, अब हमार ललवा नाहीं न लौटि के आई...आरे हमार ललवा।'[2]

'हटाओ भाई, हटाओ इस बुड्ढी को। यह बुड्ढी नहीं है कयामत है।'

'दारोगा ने आजिज आकर कहा—'अरे यह गाँव है कि शैतानों का अड्डा। अच्छा मत बतलाओ साले, तुम सबको फांसूँगा।'

उसने कागज पर कलम से लिखना शुरू किया। 'हाँ बताओ तुम्हारा नाम क्या है ?'

'टि...टि...टि...टीसुन सरकार'

'टि टि टि टीसुन' अच्छा तुम्हारा

'सरकार हम कुछ नाहीं कइलीं।'

'बोलता है कि जमाऊँ पीठ पर।'

र...र....र रग्घू हजूर'

'और तुम्हारा ?'

'ब ब ब बेनी प पांड़े माई बाप !'

'शैतानों के नाम भी कितने बड़े-बड़े होते हैं।'

बाकी लोग धीरे-धीरे भागने की ताक में थे किन्तु भागते कैसे ?

मुखिया ने परिस्थिति बिगड़ी हुई देख कर कहा—'जान बखस पाऊँ तो अर्ज करूँ हजूर !'

दारोगा ने कलम रोक कर कहा—कहो

'सरकार जरा मेरे साथ वहाँ अकेले में चलने की मेहरबानी करें।'

दारोगा समझ गये। हाँ अब आये हैं रास्ते पर ये सब। 'चलो' कहकर उठे और एक जलती नजर से खड़े लोगों के चेहरों को देखा।

---

१. अरे ए हजूर मुझे क्या मालूम कि किसने मारा मेरे लाल को। सारे गाँव ने मिल कर खा लिया मेरे लाल को।

२. अरे ए थानेदार साहब ! किसी ने मारा हो अब तो मेरा लाल लौट कर नहीं आयेगा।

दारोगा साहब शाम को लौटे तो चार सौ रुपयों से पाकेट भारी करके। गाँव के बनिया सुमेस्सर को अपना गड़ा खजाना निकालना पड़ा, अनाज से घर पट गया और गाँव वालों के चैत की आधी लक्ष्मी रूठ कर बनिये के यहाँ होती हुई दारोगा के साथ चली गयी। सुमेस्सर बनिया भी बिना मार खाये अपनी ओर से पचास रुपये देकर सकुशल बच गये।

इम्तहान दे देकर शहर के लड़के आ गये थे। महेश का रंग सबसे चोखा था, वह गाँव में आया तो भी पैंट और कमीज ही पहन कर घूमता था। किसी दोस्त की पुरानी टाई भी ले रखी थी जिसे वह ठीक से पहन न सकने के कारण गले में गठिया लेता था। अपने बड़े बड़े जुल्फों को लापरवाही से बिखरा लेता और सैर करने किसी दिशा की ओर चल पड़ता।

छेदी की चोटी फैलकर आधे सिर तक हो गयी थी और लम्बाई एक हाथ तक पहुँच गयी थी। वह पंडिताऊ ढंग से चुनिया कर धोती पहनता और ऊपर से एक मिर्जई। कूएं पर नहाते समय संस्कृत के श्लोक गनगुनाता—'राम रामेति रामेति. . . .' धोती बदलते समय कान पर जनेऊ चढ़ा लेता और कपड़े बदल कर अपनी लम्बी चौड़ी चोटी एक हाथ से खड़ी कर दूसरे से फटकारता-फटाफट फटाफट और फिर उसमें गाँठ पाड़ता और आँख मूंद कर, जल ढार कर, सूरज भगवान् की उपासना करता, फिर वहीं आँख मूंद कर नाक दबाकर हाथ आगे पीछे फेर कर गायत्री मंत्र का जाप करता। देखने वाले दंग रह जाते और गाँव भर के लोग इस ब्रह्मचारी उपासक का गुण गाते—शाबाश।

'छेदी तो गोरखपुर से वृहस्पति बन कर आया है। इतना बड़ा पुजारी तो इस जवार में कोई नहीं हुआ है। वेद और गीता तो उसकी जबान पर हैं। सपूत हो तो ऐसा हो। महात्मा होगा कोई।'

महेश छेदी की तारीफ सुन-सुनकर कुढ़ता—कोई भी उसकी ओर ध्यान नहीं देता और नहीं तो लोग हंसते हैं इसे देखकर। सब साले देहाती गंवार फैशन यानी साहवी फैशन ये क्या समझें? इनकी सात पुश्त भी नहीं समझ पायेगी इस ठाट-बाट को। दरिद्र हैं सब।

रमेश पायजामे और कुरते में रहता है। उसने भी कुछ-कुछ बाल बढ़ा लिए थे और कंघी करके माँग फाड़ लिया करता था। पाँव में बाटा का टायर वाला चप्पल डाल लेता कहीं जाते वक्त। वह अकसर अपने फूस के छप्पर के नीचे बैठकर अंग्रेजी की किताब लिए घोखा करता। आने जाने वाले उसे देखकर सुख-दुख पाया करते। कुछ लोग सुखी होते कि बेचारा तेज लड़का है, हमेशा पढ़ता है, पढ़ लेगा तो घर का दुख दलिद्दर छूट जायेगा। कुछ लोग दुखी भी होते—मेढकी को भी जुकाम हो रहा है। बाल बढ़ाने लगा है, मांग फाड़ने लगा है।

पायजामा पहनता है। अरे मुखिया का लड़का पहनता है तो फबता है, पैसे वाला आदमी है.....

फबता नहीं ठेंगा है, तुम भी वेबिचारी बात करते हो। मुझे तो वह चमारों की नाच में का पूरा हरबोलाई (जोकर) लगता है। पूरा शोहदा है।

महेश अपने साहबी ठाट में शाम को हवा खाने बाहर निकला। दिन डूब चुका था पर अभी उजास काफी बाकी था। छेदी उधर से कहीं से आ रहा था। छेदी महेश को देखकर मुसकरा पड़ा। महेश ने समझा कि वह उसी को देख कर व्यंग्य से हंस रहा है। डपट कर पूछा। ह्वाट, ह्वाट ऐस, ह्वाई नाट। छेदी समझ गया कि वह अंग्रेजी में उसे कुछ भला बुरा कह रहा है। बोला—'भो भो महेश! म्लेच्छ भाषा में गाली किम् बकता अस्ति ....'

'ह्वाट बोलता इज। यू ऐस है। आई गोइंग।'

'म्लेच्छ भाषा भाषी, स्वधर्म नाशी अहम् तुम्हारी बात न समझवान्।'

'तुम यानी यू मंकी है। तू यानी यू हंसता यानी लाफता क्यों है? तुम्हें यानी यू को क्या आता है? मैं यानी आई बहुत अंगरेजी जानता है।'

'भो भो महेश, अहम् देव भाषा बोलितामि। देव भाषा अपने धर्म की भाषा है। तुम इसका अपमान करता अस्ति तर्हि नर्कयाम पेड़ोगे।'

दोनों ताव में आने पर लोक भाषा में उतर आये और चुने चुने शब्दों से एक दूसरे की विशेषताओं का गान करने लगे।

महेश ने छेदी की बड़ी सी चुंडी पकड़ ली और छेदी ने महेश की टाई अंगुलियों में फंसा ली। दोनों संध्या के झुटपुटे में एक दूसरे पर अपनी विजय आजमाने लगे और एक दूसरे के चंगुल में फंसे हुए दीन हुँकार करने लगे। महेश चोटी पकड़ कर खींचता तो छेदी उलटा मुंह किये हुए गोलाकार कूदने लगता कि छेदी जोर से फंसी हुई टाई पकड़ कर खींचता तो महेश आँखें मींच कर झुका झुका चक्कर काटने लगता।

नीरू कहीं से नौकरी खोजकर असफल घर लौट रहा था। उस झुटपुटे में यह युद्ध देखा तो पहले तो समझ न सका कि यह क्या है? मगर पास आने पर इन दोनों वीरों की लड़ाई देखी, तो उसे हँसी आ गयी।

'अरे भाई! क्या बात है?'

'बात क्या है यह अधार्मिक, म्लेच्छ भाषा में मुझे गाली दे रहा है' कहते हुए उसने महेश की टाई को एक जोर का झिटका दिया।

महेश इस झटके से तिलमिला गया और जोर से चोटी खींच कर छेदी को रवाने लगा। 'बड़ा आचार्य बनता है यह साला। भिखमंगनी भाषा की बराबरी अंग्रेजी से कर रहा है जो बादशाहों की भाषा है।'

नीरू ने दोनों का बीच-बचाव किया। महेश के प्रति उसे सहानुभूति तो नहीं थी किन्तु छेदी के गोरखपुर वाले व्यवहार ने उसे उसके प्रति अत्यधिक सहानुभूतिशील

बना दिया था और इस समय छेदी ही अधिक संकट में था। यद्यपि दोनो इस झगडे से तंग आकर निबटारा चाहते थे किन्तु अपनी अपनी आन पर अड़े हुए थे। इसीलिए नीरू के बीच-बचाव को दोनो मान गये। दूसरा वक्त होता तो दोनो नीरू को धकिया कर अलग कर देते। कहते—बड़ा आया है पंचायत करने। नीरू ने दोनो को अलग कर दिया। दोनों हाँफ रहे थे। नीरू ने हँसकर कहा—'अरे भले आदमियो! अपनी ही भाषा में बात करते तो क्या बिगड़ जाता?'

दोनो ने नीरू का उपदेश सुना, कहा कुछ नही किन्तु इतना स्पष्ट था कि दोनो पर इसका कुछ असर नही हुआ।

४०

विशुनपुर के बाबू गजेन्द्र सिंह ने सुमेश को कहला भेजा कि 'क्यों नहीं नीरू को मेरे यहाँ भेज देते हो ?' वास्तव में गजेन्द्र सिंह ने बहुत पहले नीरू को अपने यहाँ चाहा था—पुश्तैनी सम्बन्ध है । नीरू पर तो सच्चा अधिकार बाबू गजेन्द्र सिंह का ही है । किन्तु गजेन्द्र सिंह के यहाँ मिलता ही क्या है ? दो रुपये महीने तनख्वाह और खाने पहनने को । इससे क्या होगा ? नीरू को अपना ही पेट तो नही पालना है । दूसरी बात यह कि जब जब वह गजेन्द्र बाबू के यहाँ नौकरी करने को सोचता तो उसका संवेदनशील हृदय वहाँ के दरबार की क्रूरता से कराह उठता । उसे वह दृश्य नहीं भूलता जब वह स्टेशन से आते समय दोपहर को पानी पीने के लिए बाबू साहब की हवेली के पास वाले कुएँ पर ठहर गया था । गजेन्द्र बाबू ओसारे में काठ के सफेद कुन्दे के समान आराम कुर्सी पर जांघ तक धोती बटोरे बैठे थे और दो नौकर मुक्की लगा रहे थे । उसी समय उनका एक जवान खवास (जिसका घर हवेली के पास ही था) बाबू साहब के पास आया और पैर छूकर सलाम करने लगा । उस काठ के कुन्दे ने उस नौकर को उठाकर ओसारे के बाहर फेंक दिया और फिर उतर कर उसे चहल चहल कर मारने लगा । पूछने पर नीरू को ज्ञात हुआ कि वह खवास अपना गवना कराने चला गया था । छुट्टी दो दिन की ली थी लेकिन लग गये तीन दिन । वहू को घर उतार कर गीतों की गूंज लेकर वह सद्यः मालिक से आशीर्वाद लेने आया तो बाबू साहब ने उसे इस रूप में आशीर्वाद देना शुरू किया । पिता मां छुड़ाने आये तो उन्हें भी पीटना शुरू किया । दरबार के कुछ लोग तमाशे के भाव से, कुछ लोग दुखी होकर भी डर के मारे अकर्मण्यता के भाव से चुपचाप खड़े थे । बाबू साहब ने हाथ दुखने पर उसे छोड़ दिया । सुहाग रात के खूबसूरत सपने सजाये हुए नवागता वधू के नयन गंगा जमुना बहा रहे थे । पति से मानमनुहार के लिए लालायित लजाये हुए कण्ठ सारे वातावरण को क्रंदन में डुबा रहे थे । नीरू का मन इस काष्ठ-कुन्दे के प्रति एक वितृष्णा और घृणा से भर गया । उसे क्रोध आया कि इसे नोच नोच कर कुत्तों के सामने फेंक दे । उफ, उसी गजेन्द्र बाबू के यहाँ नौकरी करेगा, इसकी कल्पना तक उसे सह्य नहीं थी । किन्तु जब कहीं भी नौकरी नहीं मिली और बाबू साहब का बुलावा आ ही गया तो उसे मन मार कर अपने को इस नयी परिस्थिति के सामने झुकाना ही पड़ा । नौकरी तो केवल दो रुपये की है किन्तु इसमें आमदनी बड़ी है । देखो न मुन्शी दुक्खी लाल, बालचरन सिंह आदि कारिन्दे कितना रुपया पीट लेते हैं ! गाँव वालों ने यह सुझाया तो नीरू को कुछ संतोष हुआ ।

४१

गर्मी की छुट्टियों में संध्या भी घर आ गयी थी। उसके स्वास्थ्य में तो कुछ उतार अवश्य था किन्तु उसकी मोहकता बहुत बढ़ गयी थी। उसका चम्पई रंग और निखर आया था। उसकी वेश-भूषा, उसकी शालीनता और विशेष प्रकार की भावभंगी के साथ उठने-बैठने, चलने-फिरने, हँसने-बोलने की क्रिया ने उसमें कुछ परिवर्तन ला दिया था। महेश अपना जोकरों सा सूट-बूट-टाई पहन कर उधर से अक्सर निकलता या पता लगा कर उधर को निकल जाता जिधर संध्या से भेंट हो जाने की संभावना होती। देखा देखी हो जाने पर संध्या इसके बहुरुपियापन पर मुसकरा पड़ती, महेश निहाल हो उठता। उसको एक प्रकार की गलतफहमी होने लगी। वह समझता कि संध्या उसके कोट पैंट पर रीझ रही है। अब वह बड़ी अदायगी से सिनेमा के छिछले गाने भी गाने लगा। इस अद्भुत लबारिये से संध्या भयभीत भी रहती कि पता नहीं कब छेड़ बैठे किन्तु उसे अपने ऊपर विश्वास था और महेश को देखकर वह अपनी हँसी नहीं रोक पाती।

एक दिन सुनसान देखकर एक गली में महेश ने पीछे से आकर संध्या की आँखें मीच लीं। पुरुष हाथ के स्पर्श से वह सन्न हो उठी। आखिर यह कौन हो सकता है जो इतना दुस्साहस करे ? नीरू ? नहीं कदापि नहीं, वह खुलेआम ऐसी हरकत नहीं कर सकता। एक क्षण सोचने के बाद वह बौखला उठी—'कौन है कौन है कमीना ! छोड़ नहीं तो अभी नोच खाऊँगी।'

महेश मन्द मन्द मुसकरा रहा था—यह सोच कर कि अभी जब मुझे देखेगी तो हँस कर कहेगी ओह तुम वड़े वैसे हो ?

संध्या ने छटपटा कर हाथ छुड़ाना चाहा, हाथ नहीं छूटा तब महेश खिलखिला कर अलग हो गया—'अरे तूने मुझे पहचाना नहीं।'

संध्या ने महेश को देखा तो उसे आग लग गयी। आँखों से चिनगारी बरसने लगी। महेश सहम गया। 'जंगली, जानवर, नीच, कमीना' कह कर संध्या ने एक ईंट महेश के ललाट पर दे मारा। महेश की एक चीख निकल कर रह गयी। उसके ललाट से खून का फौवारा छूट चला। संध्या उसे घूरती हुई चली गयी और महेश अपनी टाई कोट को खून से तर करता हुआ जख्म पर हाथ दवाए घर की ओर लपका। घर में कुहराम मच गया। मां छाती पीटने लगी—क्या हुआ ? क्या हुआ ? कुबेर पाँड़े चुपचाप परिस्थिति को सँभालने की कोशिश में थे।

बात पूछने पर महेश ने कहा—'कुछ नहीं हुआ । मैं उधर से दौड़ा हुआ आ रहा था, उस गली में जो नेता गनपति का कोरो निकला हुआ है झटके में लग गया ।'

सब लोगों ने मिलकर गाली दी कि गनेसुआ साले से कितनी बार कहा गया कि कोरो काट कर बराबर कर दे मगर सुनता ही नहीं, नेता बना फिरता है ।'

संध्या अपने घर जाकर फफक कर रो पड़ी—'मुखिया का बेटा मुझे रास्ते में छेड़ता है । मेरा चलना मुश्किल हो गया है !'

घनश्याम की भौहों के नीचे एक गहन अंधकार छा गया—जैसे कुछ सोच रहे हों । मलिन्द अभी अभी सायकिल से धूप में गोरखपुर से आया था । गोरखपुर में अहिंसा आन्दोलन पर विचार करने के लिए जिला विद्यार्थी कांग्रेस की कोई मीटिंग थी उसमें बहस करके आया था । सुनते ही वह बौखला कर उठा कि आज मुखिया के बेटे को साफ ही कर देंगे । बड़े भाई ने भी हाथ में भाला उठा लिया कि चलो आज बजड़ ही जाय । घनश्याम ने गंभीरता से कहा—'पागल हो गये हो तुम लोग अकल से काम लो ।' लेकिन लड़के मानने पर आते ही नहीं थे । उसी समय संध्या ने भाइयों का रास्ता रोक कर कहा—'भइया मैंने पत्थर मार कर उसका सिर फोड़ दिया है । आप लोगों को कुछ कष्ट करने की जरूरत नहीं ।' भाई इस दण्ड से कुछ शान्त हो गये । अच्छा किया तूने साले का सिर फोड़ दिया, देखा जायगा ।

मुखिया के घर कानाफूसी द्वारा बात फैल गयी कि महेश का घाव कोरो का नहीं, पत्थर का है । मुखिया को अपने आवारा बेटे पर बड़ा क्षोभ हुआ किन्तु सबके सामने क्या कहता ? किन्तु मुखिया के पिठ्ठुओं ने मुखिया का घाव सहलाया—'अरे भाई छेड़छाड़ करने पर क्या कोई किसी की जान ले लेगा । और वह तो छेड़-छाड़ के पद में आती है कोई गाँव की बेटी थोड़े न है ।' किन्तु गाँव के बहुतेरे लोग यही कह रहे थे कि भाई अब तो वह गाँव की ही बेटी हो गयी है । छेड़छाड़ का रोग बड़ा भयानक है आज इस घर, कल उस घर, अच्छा किया जो इसको शिक्षा दे दी ।

परन्तु मुखिया के दिल में इस परिवार के प्रति एक गाँठ और पड़ गयी ।

जेठ की उजेली रात छिटकी हुई थी। चारों ओर शादी के गाने और बाजों की आवाज उमड़ घुमड़ रही थी। नीरू की मां सोच रही थी—इस साल भी कोई नहीं आया नीरू की शादी के लिए। अभी उमर ही क्या है? फिर भी बड़े आदमी के लड़के जितनी जल्द बियह जायं उतनी ही इज्जत मानी जाती है। लेकिन कोई आये भी तो कहाँ से? न खेत, न मकान और न पैसा है। कर्जा... कर्जा...कर्जा। हाय भगवान! कब होगा उद्धार इस घर का?

टीसुन की विधवा मां मुखिया के यहाँ बैठी बैठी गुहार कर रही थी—'मुखिया बाबू, अरे हमरे लाल की भी कोई जुगाड़ लगाइए। गाँव के दुश्मन कहते फिरते हैं कि मेरा लाल बूढ़ा हो गया। जबान कट गिरे कहने वालों की। अभी तो मेरा लाल बीस पचीस बरस का हुआ है। खुराक भी क्या है—पाव भर तिन्नी का चावल खाता है।'

किन्तु वह जानती थी कि वह दुनिया की आँखों में धूल झोंक कर चालीस साल के टीसुन को जवान नहीं बना सकती। किस बूते पर शादी हो? न धन-दौलत है, न इज्जत। उसके लाख बहाना करने पर भी लोग यह समझ ही गये हैं कि टीसुन साल भर में छः महीने तराई में घूमता है।

न जाने उसे क्यों आज बड़े सूने-पन का अनुभव हुआ। बूढ़ी हो चली, पता नहीं आज या कल कगार पर से टूट कर धारा में जा मिले। इस बुढ़ौती में तो सुख के दो क्षण देख लेती।

एक छोटा लड़का था बीसुन। नीरू का सहपाठी था, दोनों में बड़ी दोस्ती थी। वह चल बसा। बड़ा तेज लड़का था किन्तु गरीबी से लड़ने के लिए असमय मिल में नौकरी कर ली। पैसे बचाने के लिए अक्सर शाम को पांच कोस की दूरी तै करता हुआ घर आता था और खास करके उस मौके पर तो और जब गाँव की पट्टीदारी में कोई भोज होता, फिर सुबह-सुबह मिल की ओर भागता। कहते हैं उसे तपेदिक हो गया और एक दिन जीवन-वृन्त से चू पड़ा। बीसुन आज मां को याद आ रहा था। वही तो सारी आशाओं का आधार था।

उसके बाद बीसुन के बाप को पता नहीं क्या हो गया कि शंकर जी के मंदिर में पूजा करते करते रो पड़ते और छः महीने बाद शंकर जी ने उन्हें बांह पकड़ कर खींच लिया। गरीबी से टूटती जिन्दगी में टीसुन की मां ने क्या क्या नहीं देखा? और

आज जब चारों ओर विवाह के बाजे बज रहे हैं तो उसे अपने जीवन के आगे-पीछे सुनसान और उसमें उड़ते बवंडर के अतिरिक्त कुछ नजर नहीं आता।

शामधारी की विधवा पत्नी के सामने इस संगीत-भरी चाँदनी ने उसके जीवन के पिछले पृष्ठ खोलकर रख दिये हैं—सोने के अक्षर। आह वह क्या है? नागिन सा बल खाकर ऊपर उठ रहा है कि सारे के सारे अक्षर उसकी जहरीली साँस से काले पड़ते जा रहे हैं—'धुआँ चिता का धुआँ। आह चांदनी अपने संगीत बन्द कर दे, अपना आंचल समेट ले। इन अगले रास्तों पर कफन बिछा दे, ये सब मेरे लिए मर चुके हैं। आह, मेरा जीवन एक झटके में इस श्मशान तक आकर रुक गया और लुढ़क कर टूट गया।

टीमुन अपनी इस विधवा चाची के पास बैठा उसे संतोष पिला रहा है। खुद भी कुछ पीने की चेष्टा में है।

चमेली के मामा का लड़का आया हुआ है चमेली और गेंदा दोनों के साथ चमेली के ही घर बैठा है। कभी नाक से नीनी करता हुआ, कभी ओठ से 'हुंपुच पक हुंपुच पक' ताल देता हुआ, कभी सामने एक पीढ़ा रख कर उस पर तबले का ताल ठोकता हुआ एक सिनेमा का गीत चांदनी में फेंक रहा है—

ऐ दूर के मुसाफिर चन्दा तुही बताजा।
मेरा कसूर क्या है यह फैसला सुना जा॥

वह बार बार गेंदा की आँखों में झांकने की कोशिश करता है। और मानो पूछ रहा है बोलो मेरा कसूर क्या है?

गेंदा के जीवन की कोई भी तस्वीर इस चांदनी में स्पष्ट नहीं हो पा रही है। उसने सपने देखे थे किन्तु वे क्या थे वह भी उसे अब याद नहीं है। इस चाँदनी और इन व्याह के बाजों से उसका भी कोई सम्बन्ध था! हाँ था, इसी चांदनी रात ने और बाजों ने उसके यौवन के संगीत को तोड़कर उसके गले में एक फटी पुरानी ढोल लटका दी थी। उसे वह क्या बजाती? वह बजे भी तो। और बजने के पहले ही गले में अपने घर्षण का दाग देकर कहीं सरक गयी।

विधवा...विधवा...विधवा ओह यह चाँदनी भी तो विधवा स्त्री लग रही है सफेद साड़ी पहने। संयम-पूजा-पाठ और यह भरी हुई जवानी। इस यौवन की मस्ती ने मुझे कहाँ-कहाँ नहीं घुमाया। देवर, देवर जैसे चम्पा की नसों में खौलता हुआ खून दौड़ने लगा। इच्छा हुई उसे पायें और जोर से इस उफनते हुए सीने में भींच ले। नहीं वह स्वार्थी है। कहाँ पूछा उसने इतने दिनों तक और उसकी दुलहन? हाँ उसका अधिकार क्यों छीनू? तब...तब? इस भाई के घर में रहना भी मुशकिल है। बिदिया मालकिन ठहरी, बैजू रह रह कर मां को सताता है और मुझे भी। आँखों के सामने चमारिन की मल्किई देखी नहीं जाती। तो कहाँ जाऊं? कुछ भी हो, पिता का घर एक आधार तो है न। मन मार कर चुपचाप भगवान की पूजा करे, उन्हीं में मन रमाए।' और मानों

गेंदा ने उसी समय भगवान का स्मरण किया, आँखें बन्द कर ली परन्तु कोई भी चित्र आँखों में नहीं उतरा ।

चमेली को धीमड़ पांड़े ने बुलाया । चमेली ने डांट कर जवाब दिया, 'चुप रहो क्या बकबक करते हो ?' उसे बेहद गुस्सा है अपने इस निकम्मे बाप पर । इसे दुनिया में कहीं कोई वर ही नहीं मिलता । उसने एक बार अपने अंग-अंग को तोड़ते हुए यौवन को देखा, फिर इस चांदनी के अपार विस्तार को, फिर चांद से करुण स्वर में शिकवा करते हुए इस ममेरे भाई को । चारो ओर से बैंड, शहनाई, तासे आदि की ध्वनि समुद्र की भांति लहरा रही थी, बीच में यह गाँव खामोश टापू की तरह सोया हुआ था ।

'और क्या सुनाऊँ ?' कहकर मामा के लड़के ने गेंदा की आँखों में याचना भरी आँखें डाल दीं । गेंदा सिहर उठी । 'क्या करूँ हे भगवान ?' वह कुछ बोली नहीं, उठकर चलने लगी ।

'अरे बैठो गेंदा !' चमेली ने हाथ पकड़ कर खींचा ।

'नहीं' देर हो रही है ? जाने दो । गेंदा भारी मन से लौटने लगी । मामा के लड़के की अगली कड़ी ओठ में लुपलुपा कर रह गयी । आँखें जाती हुई गेंदा की कांपती गति को पिये जा रही थी ।

४३

महेश की शादी के लिए बहुत दिनों से बरदेखुआ आ रहे थे किन्तु मुखिया टाल दे रहे थे। वे यद्यपि देहाती संस्कार वाले थे और देहाती संकार छोटे बच्चों की ही शादी अधिक पसन्द करता है किन्तु मुखिया से उनके कुछ शहरी हितैषियों ने कह रखा था कि महेश को खूब पढ़ाओ-लिखाओ। बी० ए०, एम० ए० पास करने के बाद ही इसे शादी में उलझाओ। बहुत पढ़ लिख लेने के बाद इसे किसी बड़े आदमी की लड़की मिल जायेगी और चार पांच हजार दहेज मिल जायगा। मुखिया के मन में दहेज का सपना छाया हुआ था। दहेज से आर्थिक लाभ जो होता है सो तो मन में दहेज का सपना छाया हुआ था। दहेज से आर्थिक लाभ जो होता है सो तो गौण बात है प्रमुख बात है प्रतिष्ठा। मेरे बेटे को इतना दहेज—गाँव भर में सबसे अधिक—मिला, यह अहंकार स्वाभाविक है। मुखिया की निगाह हमेशा गाँव के दो प्रतिष्ठित व्यक्तियों-बैकुण्ठ पाँड़े और घनश्याम तिवारी की ओर लगी रहती। मुखिया नये धनी थे। छोटा काना भाई कलकते में ही खप गया। अब मुखिया की धाक से उसकी शादी हो सकती थी परन्तु मुखिया ही नहीं चाहता था कि वह अपना ब्याह कर बाल-बच्चे पैदा कर सम्पत्ति में हिस्सा बँटाये। कलकत्ते से जो कुछ कमाई भेजता है उसे बाल-बच्चों के फेर में पड़कर तोड़ बैठे। हाँ तो वह नया धनी बात बात में बैकुण्ठ पाँड़े और घनश्याम तिवारी को परास्त करना चाहता था। इसलिए वह गाँव भर में सबसे अधिक दहेज का इच्छुक था किन्तु महेश ने उसकी आशाओं पर पानी फेर दिया। पढ़ने लिखने में ऐसा था कि उसके लिए टेन्थ पार करना भी मुश्किल था। चरित्र भी इसका अद्‌भुत है। पता नहीं कब क्या कर बैठे ? सो इसकी शादी कर ही देनी चाहिए।

संयोग से एक सज्जन एक दिन घनश्याम तिवारी के यहाँ मलिन्द के विवाह के लिए आये। दाँत में सोना मढ़ाये हुए, दाहिनी भुजा पर सोने का टड्डा कसे हुए थे। केले के सिल्क वाला कुरता पहने थे, बड़े-बड़े बालों को (जिसमें तेल चमक रहा था) उलटा झाड़े हुए थे। बाईं कलाई में २० ज्वेल्स का वाटर प्रूफ घड़ी पहने हुए थे। कलकतिया हिन्दी में उन्होंने बड़ी शान से परिचय दिया।' हम सिंगापुर कमाता है हम आपके लड़के की शादी के लिए आया है।

घनश्याम तिवारी चुप रहे । मन ही मन इस जन्टुलमैन पर हँसते रहे । 'लड़की आपकी कौन है ?'

'भतीजी ।'

'कितनी पढ़ी लिखी है ?'

'अरे साहब दर्जा चार पास है रामायण पढ़ लेती है । इतना तो लड़िकियों के लिए बहुत है ।'

'देखिए,' घनश्याम तिवारी बोले—'अभी मुझे अपने लड़के की शादी नहीं करनी है, अभी उसकी इच्छा नहीं है ।'

सिंगापूरी जन्टुलमैन ने सोचा—शायद ये साहब दहेज से बिदक रहे हैं । कहा—'साहब रुपये-पैसे की चिन्ता मत कीजिए, हम आपके लड़के के लिए पाँच हजार तक दे सकता है । हम दोनों भाइयों के बीच एक मात्र वही संतान है । आप हमारे यहाँ शादी करके घाटे में नहीं रहेगा ।'

घनश्याम तिवारी ने एक सस्मित निगाह से से देखा इसे, मानों कह रहे हों—हाँ घाटे में नहीं रहूँगा । मैं जानता हूँ तुम लोग सिंगापुर में क्या करते हो ? बैंक की दरबानी, अफसरों की चपरासगीरी, पोस्ट आफिसों में पोस्टमैनी । वहाँ गन्दी-गन्दी कोठरियों में भेड़िया-धँसान ढंग से रह लेते हो, पेट काट कर पैसे बचा लेते हो और तुम्हारे घर वाले गाँव के राजा बने फिरते हैं । तुम लोग दस बाहर साल पर जब कभी अपनी वियोगिनी पत्नियों आदि से मिलने आते हो तो गाँव के गोंइड़े आकर अपना चोला बदल डालते हो, जन्टुल मैन बन जाते हो । तुम्हारी शराफत और संस्कृति जानता हूँ, महाशय जी तुम्हारा धन तुम्हारी उजड्डता पर परदा नहीं डाल सकता ।

घनश्याम तिवारी ने कहा—'देखिए महाशय ! आपको एक नेक सलाह दूँ । इस गांव के मुखिया हैं कुबेर पांड़े । उनका एक लड़का है, इस साल शायद टेन्थ में पढ़ता है सुन्दर है स्वस्थ है । मुखिया भी धनी हैं, चालाक हैं, इज्जत वाले आदमी हैं आप उनके यहाँ जाइए, आपका उनकी जोड़ी अच्छी रहेगी, सौदा पट जायगा ।'

सिंगापुरी जन्टुलमैन और घनश्याम तिवारी में बातचीत इतनी गुप्त हुई कि कोई जान भी न सका । और सिंगापुरी मुखिया के यहाँ गये तो लोगों ने समझा कि यह महाशय पहले पहल यहीं आ रहे हैं । मुखिया ने पर पट्टीदारी के लोगों को बुला लिया कुछ अपने आप आ गये ।

मुखिया लट्टू हो गये इस आदमी पर । सौ मुँह सौ बातें । मुखिया ने पूछा आप क्या देंगे ?

'आप ही मांगिए,' उसने महेश की ओर एक बार देखकर कहा । मन में अन्दाजने लगा—'माल तो अच्छा है किन्तु घनश्याम शुक्ल के लड़के की बात ही

और थी । वे जितना मांगते, देता किन्तु इस लड़के में कोई खास बात दिखाई नहीं देती । रूप-रंग तो ठीक है, हृष्ट-पुष्ट भी है । खैर......

पट्टीदारी के लोग रेखा रेखा कर मुखिया की तारीफ किये जा रहे थे—'आरे दूबे जी—मुखिया बाबू का मान-जान इस जवार में बड़ा है । हर हैसियत में कोई इन्हें पायेगा नहीं, और लड़का भी एक ही है और सो भी सोने जैसा । और रउरहू दू भाई के बीच में एक्के बेटी है, लुटाइए खुश होकर ।

'आखिर आप लोग बोलिए क्या लेंगे ?' सिंगापुरी ने कहा ।

'आ देखीं' ए दूबे जी ।' रघू बाबा बोले—'आ जे बा से 'ए गाँव में मुखिया बड़हन आदमी हवें । आ देखीं इनक पट्टीदार हवें वैकुंठ पाँड़े, इहे बइठल बाटें जे बा से । ई दस साल पहिले अपने भतीजा के शादी में पाँच सौ दहेज पवले रहले हवें । ई दूनों जनीं एक्के हैसियत क हवें, इनहू कें एतने देईं ।'[1]

मुखिया सुनकर आग हो गये किन्तु कुछ बोल नहीं सके । रघू बाबा जान बूझ कर मुखिया का पत्ता काट रहे हैं यह सबको मालूम हो गया । किन्तु कोई क्या करे ?

टीमुन को मुखिया ने संकेत किया । टीमुन ने अपनी नाक का पसीना पोंछते हुए कहा—'अरे रघू बाबा, किस जमाने की बात कर रहे हैं ? दस साल पहले और आज के जमाने में कितना फरक हो गया है । सभी चीजें मँहगी हो गयी हैं । मुखिया बाबू का भारी खर्च है । पाँच सौ में क्या होगा ?'

'तब आप ही बताइए ।' सिंगापुरी जवान विनोद पर उतर आया था क्योंकि उसे आभास हो गया था कि सौदा सस्ते पट जायगा ।

'अरे दूबे जी एक हजार से कम क्या दीजिएगा ।' कहकर टीमुन ने मुखिया की ओर देखा ।

मुखिया ने संकेत किया—ठीक है । लेकिन पट्टीदारी के पाँड़े लोग जैसे चक्कर में आ गये—एक हजार ! एक हजार मिल सकता है किसी को इस गाँव में !

सिंगापुरी जी ने इन लोगों के आश्चर्य पर एक झटका और देते हुए कहा—'आप लोग एक हजार मांग रहे हैं मैं बारह सौ दे रहा हूँ । चलिए बात पक्की रही ।'

मुखिया ने सबकी ओर एक गर्वभरी दृष्टि से देखा—मानो कह रहे हों 'देखा मेरा रोब ।' किन्तु साथ ही उन्हें एक चीज साल गयी—'क्यों नहीं डेढ़ हजार मांगा ? यह दिलदार आदमी है, पैसे वाला है, जरूर देता ।' पर अब तो तीर हाथ से निकल गया था ।

---

१ दूबे जी इस गाँव में मुखिया बड़े आदमी हैं । इनके पट्टीदार हैं वैकुंठ पांडे । ये पास में बैठे हुए । हैं दस साल पहले इनके बड़े लड़के को ५००) मिले थे दहेज में । आप भी मुखिया को इतना दीजिए ।

रग्घू बाबा धीरे से उठकर घर की ओर सरक गये। मुखिया सुख-दुख के चक्रव्यूह में फंसे थे। गाँव में सबसे अधिक दहेज उन्हें मिल रहा है यह गर्व उनके रोम-रोम मे फूट रहा था। इस खुशी में किसी ने यह भी नही पूछा कि लड़की कैसी है ? किस उम्र की है ? कौन गुन-ढंग जानती है ? उन्हें यह भी मालूम न हो सका कि यह घनश्याम तिवारी के यहाँ का तिरस्कृत माल है।

४४

कल मुखिया के यहाँ से बारात जाने वाली थी। आज हल्दी का दिन था। दरवाजे पर सुलतान दर्जी कपड़े सिल रहा था। महेश उससे बात-बात में बहस कर उठता—देखो, कोट दिलीपकुमार कट सीना, पैंट अशोक कुमार कट, हाँ। दर्जी बेचारा क्या जानता कि ये सब कौन से कट होते हैं। मुखिया और गाँव के लोग भी महेश के इस अद्भुत ज्ञान के रोब में आ गये। मुखिया के मन में गर्व हुआ कि मेरा बेटा शहरी ठाट-बाट का कितना माहिर है। एक मीठी झिड़की देकर बोले—'बाबू, अरे सुलतान देहाती दर्जी है, इसे जो गुन ढंग आयगा सो सियेगा। अब तुम लोग अफसर ठहरे, इसका सिया कहाँ पसन्द आयेगा ? लेकिन यह हमारा पुश्तैनी दर्जी है और शुभ के कपड़े यही सीता आया है इसलिए शादी में इसीसे कपड़े सिलाते हैं।

गाँव के अढ़ुवे आज ही से मुखिया का दरवाजा मधुमक्खियों की तरह घेरे हुए थे और विवाह सम्बन्धी अनर्गल बातें कर रहे थे।

शोर हुआ—कुर्क अमीन जालिम खां आये हुए हैं मालगुजारी और तकावी वसूल करने।

गाँव भर में भगदड़ मच गयी। शादी का राग-रंग फीका पड़ गया। जालिम खाँ को मालूम हुआ कि मुखिया के यहाँ से बारात जा रही है तो उसके यहाँ न जाकर घनश्याम तिवारी के यहाँ डेरा डाला। मुखिया को इस बात से शक हुआ कि हमारी बारात का रंग भंग करने के लिए घनश्याम तिवारी बेमौके बुला लाये हैं।

मुखिया तिलमिला कर रह गये। उनके द्वार पर बैठे हुए लोग भाग-भाग कर अपने जानवरों को छोड़-छोड़ कर या तो भगा दे रहे थे या उनके दरवाजे पर बाँध दे रहे थे जिन्होंने मालगुजारी अदा कर दी थी। किन्तु अधिकांश के बैलों को सिपाहियों ने पहले ही हथिया लिया था।

सुमेश भी मुखिया की बारात की तैयारी कर रहे थे। कहीं से कपड़ा, कहीं से जूता, कहीं से साफा माँगने के प्रबंध में थे। नीरू की माँ ने झुंझला कर केशव से कहा-बेटा बैल वैकुंठ बाबू के दरवाजे पर बाँध आओ।

केशव लिये जा रहा था कि एक सिपाही ने आकर पकड़ लिया। केशव भयभीत होकर रोने लगा। बैल छिन जाने पर वह घर रोता हुआ आया। 'क्या हुआ क्या हुआ रे' ?

'मां ! सिपाही ने बैल छीन लिया ।'

'रोओ मत बेटा छीन लिया तो क्या हुआ ।'

केशव के भयभीत आँसू मां के आश्वासन पर थम गये ।

ऐसे ही गाँव के बहुत से लड़कों के आँसू बहे और सूखे ।

घनश्याम तिवारी के दरवाजे पर बैलों की भीड़ लग गयी । गाँव के लोग बैर-विरोध भूलकर एक ही कतार में खड़े थे—वह कतार थी बेबसों की, पीड़ितों की ।

कुर्कअमीन दाढ़ी खुजला खुजला कर गाली बक रहा था । लोगों को कुछ दिन पूर्व आये हुए मुसलमान दारोगा की स्मृति अभी ताजी ही थी, कुर्कअमीन उसका छोटा भाई लगता था । वह बक रहा था-बभ्भन लोगों का ख्याल करते करते आजिज़ आ गया । ये बभ्भन वैसे नहीं मानने को । कई कई साल की मालगुज़ारी बाकी पड़ी है, ये कमबख्त मुझे बारबार परेशान करते हैं । अबकी मालगुज़ारी वसूल करके ही जाऊंगा ।'

'हुजूर कुछ हुआ ही नहीं । बाढ़ से भदई बह जाती है और ओले पाले से रब्बी मारी जाती है । जब खेत में कुछ होता ही नहीं तो मालगुजारी कहाँ से दें हुजूर ?'

'मैं यह सब कुछ नहीं जानता । तुम लोगों के हाड़ से मालगुज़ारी वसूल करूँगा । अंगरेज़ बहादुर की ज़मीन है सेत-मेत में जोतो खाओगे । सबके घर कुर्क न किया तो मेरा नाम ज़ालिम खां नहीं ।'

'यह तो हुजूर का इकबाल है जो करें सो थोड़ा है । हुजूर की यह बात पसंद नहीं आयी कि ज़मीन अंगरेज बहादुर की है । जमीन तो हिन्दुस्तानियों की है, हमारा इसपर हक होता है । और हुजूर भी हिन्दुस्तानियों में से एक हैं ।' कहकर, मलिन्द ने मुस्कराकर कुर्क अमीन को देखा ।

कुर्क अमीन हतप्रभ रह गया । अब जाकर उसका ध्यान इस तेजस्वी लड़के पर गया । संकेत से मानो पूछ रहा हो—कौन है यह ?

'मेरा यह लड़का है । इस साल एम० ए० का इम्तहान दिया है । राष्ट्रीय आन्दोलन में कुछ भाग बंटाता है इसलिए खून ज़रा गरम है आप अपना काम करें ।'

घनश्याम तिवारी ने अपने लड़के को आँखों से घूर कर मना किया ।

किन्तु नेता गनपति बोल उठे—

'मलिन्न बाबू ठीक कहते हैं, यह जमीन तो हमारी ही है, अंगरेज बहादुर कौन हैं ? गांधी बाबा, जवाहरलाल जी इसीलिए तो लड़ रहे हैं ।' नेता गनपति के साथ सभी जातियों के नेता जमा थे । नेता गनपति ने जोश में आकर कहा—'एक बार बोलो गान्ही महाराज की जै, जवाहरलाल नेहरू की जै ।' सभी लोग

जोश में जय बोल उठे। कुर्कअमीन एक क्षण के लिए घबरा गया। फिर संभल कर गरज उठा—'अरे शैतानों, मालगुजारी भी नहीं देते हो और बग़ावत भी करते हो। एक-एक को जेल भेजवा दूँगा। यह कौन लीडर है ? क्या नाम है तुम्हारा ?'

'गनपति पाँड़े सरकार।' कई लोग चिल्ला उठे।

'मैं तुम्हारा घर अभी कुर्क करता हूँ दो साल से मालगुज़ारी हो नहीं दी।'

'कुर्क क्यों करेंगे ? मालगुजारी लाया हूँ।' कहकर नेता गनपति ने गांठ से रकम खोल दी। कुर्क अमीन अपना सा मुंह लेकर रह गया।

'और ये सब कौन हैं कमबख्त जो बग़ावत की आवाज़ ऊंची कर रहे हैं।'

हम लोग पाँड़े बाबा लोगों की पवनी परजा है सरकार ! हम लोगों ने सरकार की जमीन नहीं जोती है। घर की कुर्की का डर हमें नहीं है।'

कुर्कअमीन पर एक चोट और लगी। वह गुस्से में आ गया और जितने लोग माल गुजारी न दे सकने के कारण हाथ जोड़े खड़े थे उन पर वह कहर उगलने लगा। सिपाहियों से कहा चलो इन सबों के घरों के समान कुर्क कर लो।

सब लोग हाय तोबा करने लगे। मुहल्लत दीजिये हजूर...

'मुहल्लत तो दो साल से दे रहा हूं, फसल के समय पैसे नहीं दोगे तो कब दोगे ? उस पर काफिर सब बग़ावत का नारा लगा रहे हैं।'

'हजूर हम लोग तो यों ही बोल पड़े गान्हीं जवाहर के नाम पर। ईहै गणपतिया खुराफात करता रहता है।'

'गनपति जी खुराफात करते हैं।' मलिन्द तैश में आ गया। 'तुम्हीं लोगों की खातिर तो यह आजादी की लड़ाई चल रही है। नेता गनपति को या और नेताओं को इसमें क्या फायदा मिलता है। छोटे-छोटे स्वार्थ के लिए आप लोग अपने नेताओं को गाली देते हैं, ठीक नहीं है।'

कुर्कअमीन फिर सन्नाटे में आ गया। यह लड़का है कि शोला। पढ़ा लिखा लड़का, बड़े बाप का बेटा, कुर्क अमीन कहे तो क्या ? बस गुस्सा गरीबों पर उतारना जानता है।

सब लोग चुप हो रहे। मानो कह रहे हों-मलिन्न बाबू आप ठीक कह रहे हैं, गनपति नेता का कहना वाजिब है परन्तु इस मुसीबत से जान कैसे छुड़ाई जाय ?

कुर्क अमीन कुर्क करने के लिए तैयार हो गया। मुखिया घनश्याम तिवारी के दरवाजे पर आ नहीं सकता था वह मसोस कर रह गया। 'बड़े बुरे मौके यह बकरा आया।'

घनश्याम तिवारी ने अब जाकर मुँह खोला—'कुर्क अमीन साहब ! मैं आपके काम में दखल देना नहीं चाहता लेकिन इतना जरूर कहूँगा कि आप इस

गांव में बेमौके आये। कल कुबेर पाँड़े के लड़के की शादी है। गाँव के सभी लोग बारात की तैयारी में लगे थे, यह रंग में भंग हो रहा है। आप कुछ मौका देकर फिर आइए तो अच्छा रहेगा।'

कुर्क अमीन बैठ गया। बोला –'बड़ा गांव है कुछ न कुछ तो हर वार लगा रहता है सो कब आयें ? अजीब सवाल है। खैर आपके कहने पर रुक जाता हूँ। लेकिन ये मवेशी तो मवेशीखाने में वन्द करूँगा।'

फिर एक नयी समस्या आयी। लोग चकरा गये। आखिरकार हार मान कर लोग अनाज ले लेकर सुमेरुमर बनियाँ के यहाँ दौड़े और अठन्नी दे देकर अपने अपने बैल छुड़ाये। कुर्क अमीन सरकार की मालगुजारी वसूल नहीं कर सके किन्तु अपने आने का कर भरपूर पा गये। घनश्याम तिवारी पर एक अहसान का बोझ डालकर चले गये। मलिन्द गुस्से से ओठ चबाकर रह गया किन्तु उसका राष्ट्रीय जोश बहुत ऊफान मे इसलिए नहीं आया कि दुर्दशा ग्रस्त ग्रामीणों में बहुतेरे उसके विरोधी थे।

मुखिया ने सुना तो अर्थ लगाया कि यह धनश्याम की दुरंगी चाल है। गाँव वाले चर्चा कर रहे थे-देखो पढ़ाई लिखाई की धाक। मलिन्न ने कुर्क अमीन को फटकारा तो सिट्टी पिट्टी गुम हो गयी। गंवार गंवार ही हैं और विद्यमान (बिद्वान) आदमी का रोंवां ही और होता है।

संध्या छुट्टियों में जब इस बार घर आई तो नीरू को बहुत कम अवसर मिला उससे मिलने का। वह अपनी नौकरी की तलाश में इस बुरी तरह व्यस्त रहा कि संध्या से घुल मिलकर बात करने का मौका बहुत कम मिला।

इस बार संध्या नीरू के सामने अपने पढ़ने-लिखने, स्कूल, मास्टरों और शहरी वातावरण का ही राग अलापती रही। नीरू को ऐसा मालूम हुआ कि संध्या के हृदय में कहीं कुछ अटक गया है जो उसके हृदय के दो भाग कर दे रहा है। नीरू मुग्ध भाव से संध्या को निहारता रहा। संध्या भी स्निग्ध आँखों से उसे बहलाती रही फिर भी दोनों को अनुभव होता रहा कि दोनों को दो अज्ञात छायाएँ पीछे से पकड़-पकड़ कर खींच रही हैं और अनजाने ही उनके बीच एक दूरी-सी बनती जा रही है। एक दिन नीरू ने अवसर पाकर गीले कंठ से संध्या से कहा—'जा रहा हूँ संध्या नौकरी करने। पता नहीं गजेन्द्र बाबू कब किस छावनी पर भेज दें। पता नहीं कब मुलाकात हो किन्तु मैं तुम्हारा हूँ, तुम्हारा रहूँगा।

'पागल।' संध्या ने आँखें तरल कर लीं। कितनी बार इन वचनों से तड़पाओगे बैरी! संध्या ने भावुकता से नीरू की आँखों में आँखें डाल दीं। विदा दे रही थी—जाओ ओ मेरे भोले-भाले साथी, यह संध्या हर रास्ते पर तुम्हारा इन्तजार करती मिलेगी।

किन्तु जब संध्या विदा होकर चलने लगी तो उसके मन ने ही मानो अपने आप से प्रश्न किया—'क्यों बात क्या है? अब नीरू को देखकर तुममें पहली सी तड़पन नहीं होती, वह दर्द की छटपटाहट कहाँ गयी?' 'उम्र के साथ गम्भीरता आती है अनुभव के साथ संयम आता है। है न!' 'होगा शायद।'

नीरू बाबू गजेन्द्र सिंह की नौकरी पर चला गया।

संध्या स्कूल खुलने पर गोरखपुर चली गयी।

४६

दारोगा ने गाँव वालों से घूस लेकर शामधारी वाले मामले को दबा दिया। शामधारी की ओर से कोई लड़ने वाला नहीं था, इसलिए भी यह मामला ठंडा पड़ गया। और उस अभागे की बलि के बाद गाँव के सम्बन्ध ऊपर ऊपर से फिर पूर्ववत हो गये। फरार बैजू लौट आया था। बिदिया का अधिक समय बैजू के साथ बीतता था। गाँव वालों के यहाँ भी काम करती थी किन्तु विशेष कृपा करती थी बैजू पर ही। गाँव वालों के ताने हंसकर सह लेती थी, कोई कुछ कहे भी तो क्या ?

प्रथा के अनुसार बिदिया की शादी बहुत बचपन में ही हो चुकी थी। इसलिए गाँव के हरिजनों को बिदिया का यह पापाचार असह्य लगता था। किसी ने उसके पति से जाकर कह दिया तो वह एक दिन बिदिया के यहाँ पहुँच आया और इस बात पर फँड़िया गया कि इसे मैं अभी ले जाऊंगा विदा करा कर।

बिदिया की माँ ने कहा—'यह कैसे हो सकता है पहुना ? बेटी की विदाई के लिए कुछ सर-सपराई तो करनी पड़ती है। ऐसे कैसे हो सकता है कि दुनिया में हँसाई कराऊं ?'

'हँसाई अभी कम हो रही है ?' पहुना व्यंग्य भरे स्वर में गरजा।

बिदिया की माँ समझ गयी कि पड़ोसियों में से किसी ने यह आग लगाई है। वह पड़ोसियों को लक्ष्य कर करकरा उठी—'मैं समझती हूं पहुना बावू, इसी चमरटोली के किसी दहिजरे ने आपसे झूठ-फुर जोड़ा है। क्या हँसाई हो रही है जरा मैं भी सुनूं ? ये मैलाखोर सब अपने अपने घर की ओर नहीं देखते।' उसने सभी चमारों की बहू-बेटियों का परोक्ष रूप से कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया-'कोई फलाने बावू से सान मटक्का मारती है, कोई फलाने से, किसी की बेटी भाग रही थी तो रास्ते में से पकड़ कर लाई गयी, किसी की बहू नइहर से ही पेट लिए आयी।

फिर तमाम चमारों में ऐसा कौआरोर मचा और सब हाथ, पाँव, कूल्हे छाती मटका-मटका कर एक दूसरे का इस तरह सीवन उधेड़ने लगे कि असलियत का पता लगाना मुश्किल हो गया।

सो बिंदिया की माँ ने बिंदिया को विदा नहीं किया और पाहुन नाराज होकर चला गया, यह तीन वर्ष पहले की बात है। तबसे आज तक उसने फिर बिंदिया की चर्चा तक नहीं की और सुना गया कि उसने दूसरी शादी कर ली है।

तब से बिंदिया इसी गाँव में गली-गली को, हर एक मनचले छोकरे की आँख को अपनी बनावटी हँसी से सींचती हुई लहरती चलती है। लोग समझते हैं पक्की छिनाल है लेकिन लोग इस तरह अपने ही मन का भड़ाँस निकालते हैं क्योंकि वे सब अलग-अलग जानते हैं कि आज तक उसने उनके मन की मुराद पूरी नहीं की। हाँ बैजू के साथ उसके सम्बन्ध की बात अब कौन टाल सकता है? उसे तो खुद दारोगा साहब ने रंगे हाथ पकड़ा था। चलो, निराश लोगों के मन को सन्तोष देने वाली एक पक्की घटना तो है।

बिंदिया बैजू के सद्व्यवहार और सहायता के कारण उसके निकट सम्पर्क में धंसती गयी, धंसती गयी और अपने पति का अभाव भूल गयी। वह चाहती तो दूसरी शादी कर सकती थी, कई उसका हाथ पकड़ने को तैयार थे किन्तु अब वह एकाकी बैजू को छोड़ना नहीं चाहती थी। बैजू ने कई बार उससे कहा भी था—'बिंदिया मैं कितना अकेला हूँ, तुम्हारे साथ बदनाम भी हो चुका हूं, लोगों ने मुझे जाति से निकाला, प्रायश्चित कराकर मेरी लेई पूंजी खत्म कर दी। अब मुझे किसी का डर नहीं है। तू मुझे छोड़ेगी तो मेरा कौन सहारा होगा। माँ आज मरे या कल। विधवा बहन का क्या ठिकाना? मैं हूं और तुम हो।'

बिंदिया ने हर बार बैजू के आँसू पोंछे—'क्या कहते हो बैजू बाबू! अब तुम्हारे सिवा मेरा और है कौन? गाँव के लोग हंसते हैं हंसा करें। मुझे उनकी क्या परवाह है? सैन चलाने वाले सब हैं लेकिन किसी की बाँह पकड़ कर गुजारा करने वाला कोई नहीं है। तुमसा कौन है बाबू जो एक चमाइन को दुनियां के आगे अपना ले।' और बिंदिया अब खुले आम बैजू के घर की मालकिन हो गयी है।

गेंदा शुरू-शुरू में बिंदिया की यह मलिकई देखकर जलभुन गयी, अपने और माँ के प्रति भाई और इस चमाइन का व्यवहार देखकर पहले क्षुब्ध हुई, बाद में माँ की बीमारी देखकर और अपने विधवात्व की विभीषिका को समझ कर चुप हो गयी—जैसे एक खामोशी और उदासीनता ने उसे निगल लिया। चाहे जो भी हो मुझे क्या? मैं तो दुनिया की निगाहों में मरी हुई हूँ।

गेंदा ने पूजा-पाठ में मन रमाया। सुबह होते-होते नहा धोकर वासुदेव और शंकरजी की पूजा पर बैठ जाती, हाथ जोड़ कर घंटों किसी भाव में तल्लीन रहती। पुण्य-पर्वों पर आसपास के तीर्थ स्थानों और देव-मन्दिरों की यात्रा कर आती—कभी-कभी देवस्थान पर सिसक पड़ती। गाँव में शोर हो

गया कि गेंदा इतनी सती साध्वी स्त्री है कि अपने देवता के समान पति के पीछे पागल हो गयी है और अब देवी-देवताओं की शरण में जाकर दुनिया को भूल बैठी है। कैसी आवारा लड़की थी किन्तु अब तो साक्षात् देवी हो गयी है। 'न घूमना, न फिरना, न राग, न रंग।'

हाँ, गेंदा को चुड़ैल अब भी पकड़ती है। इतनी पूजा करने के बाद भी देवी-देवता उसके सहायक नहीं होते। चुड़ैल ने उसे पकड़ा सो पकड़ ही रखा। सोखा-ओझा के शब्दों में कभी बँसवारी की चुड़ैल होती है, कभी पोखरी की, कभी बड़की वारी की। यह चुड़ैल घंटों तक बेचारी के मुँह से झाग उगलवाती है, बेहोश रखती है। सोखा-ओझा इसे बहुत धमकाते हैं किन्तु वह जाती नहीं। जबसे वह पूजा-पाठ कर उदास रहने लगी है तब से यह दौरा और बढ़ गया है।

मलिन्द बाबू इसे हिस्टीरिया कहते हैं। पता नहीं हिस्टीरिया क्या बला है? पढ़े-लिखे लोग अजीब-अजीब नाम बोलते हैं और अपने देवी-देवताओं में अविश्वास कर अंग्रेजों के देवी-देवताओं का नाम लिया करते हैं।

गेंदा सूखती जा रही है। यही चुड़ैल उसके खून को सोखती जा रही है। मगर गेंदा भी अब देवी हो रही है। पूजा-पाठ से वह एक दिन इस चुड़ैल को खा जायगी। हाँ वह देवी हो रही है।

उसकी देह का माँस सूख रहा है। नसें उभर आयी हैं, आँखें धंसी जा रही हैं, आँखों के नीचे काली काली परतें बिछ गयी हैं। यह बैजू उस चमाइन के चक्कर में पड़ कर बहन को भर पेट खाने को नहीं देता। इसीलिए सूख रही है मगर विधवाओं के लिए सूखकर काँटा हो जाना ही ठीक है। उसका चटक-मटक, सजावट और उसका मोटा होना कुलच्छन है। पति नहीं है तो विधवा जी कर ही क्या करेगी? उसे मर ही जाना चाहिए घुट घुट कर। पता नहीं जिन्दा रहने पर कब उसके पाँव ऊँचे-नीचे पड़ जायँ। गेंदा पतिकी याद में जल-जल कर सती हो रही है। वाह री गेंदा!

गेंदा की माँ बीमार है, उसका दमा जोर पकड़ उठा है, खाट पर पड़ी पड़ी सड़ रही है। दवा-दारू का कोई प्रबंध नहीं। दवा-दारू के लिए पैसा कहाँ? पैसा भी हो तो दवा देने वाला कौन है! ले देकर पकड़पुरवा के ओझा जो जवार में एक वैद्य हैं जो कभी सत्यनारायण की कथा कहने, कभी बच्चों की कुंडली बनाने और भाखने, कभी दुष्टगहों को शान्त करने, कभी साँप का मंतर पढ़ने और कभी सभी रोगों के लिए एक भस्म देने के पीछे दौड़ते फिरते हैं, मिलना मुशकिल।
और दवा की जरूरत भी क्या रही! बूढ़ी तो हो गयी है गेंदा की माँ! क्या जिन्दगी भर जीती ही रहेगी।

गेंदा की माँ अशक्य बीमार है। आज उसे विश्वास है कि बेला चलाचली की है। उसकी आँखों के सामने खुला है अपना अतीत–विधवात्व का अतीत,

उस सूनेपन को भरने के लिए लुकछिप कर आते-जाते हुए कुछ भले बुरे चेहरे, गेंदा के जीवन का पहाड़ सा भविष्य, भविष्य के गर्भ में छिपी हुई अनेक भली बुरी परछाइयाँ, चाख विल्लाहटें, बैजू का निर्दय व्यवहार, बिंदिया चमाइन की मलिकई। हाय! उसका कलेजा फट रहा है। उसकी फटी-फटी आँखें पास गुमसुम बैठी गेंदा पर बिछी हुई हैं। गेंदा झरझर-झरझर रो रही है, 'तू भी चली माँ! मेरा कौन है अब' प्रश्न उसके आँसुओं से मुखर हो रहा है।

पास पड़ोस के लोग घिर आये हैं। बैजू एक ओर उदास भाव से बैठा है—पता नहीं यह उदासी माँ के छिन जाने के भय से है या उसकी मृत्यु के बाद गला दबाने वाले खर्च-वर्च की कल्पना से।

'घुर्र–घुर्र...घाँ...घाँ...' माई तू भी छोड़कर चली गयी, गेंदा चीत्कार के साथ माँ की छाती पर लोट जाती है। हाँ! आज देवी के दिल का सारा संयम टूट पड़ा है लेकिन इस टूटते संयम में भरे हुए दर्द को कौन पहचानता है?

४७

आषाढ़ आ गया। काली-काली घटाएँ आकाश में छा गयीं। अभी से घर-घर उपवास शुरू हो गये। खेत को बो लेने के बाद किसान अपने-अपने टूटे फूटे ओसारों और झोपड़ों में बैठे सूनी आँखों से उदासी को घूर रहे थे। ये गरजते बरसते बादल, चारों ओर पशु पक्षियों की क्रीड़ा ध्वनि, सिक्त हवा में काँपते पेड़ कितने भले लग रहे थे? न जाने यह दृश्य कितने कल्पना लोकों के निर्माण का अक्षय स्रोत रहा है। वियोगिनियों के गले में करुणा बन कर पैठ जाता है, संयोगियों के उर में बबूल के फूल स उल्लास बन कर उमड़ जाता है, कवियों की आँखों में मेघदूत बन कर अलकापुरी तक घूम जाता है, चित्रकारों की तूली में अनेक रंग बनकर हँस पड़ता है, कितना प्यारा है बादल? कितना भला है यह मौसम?

किंतु इस गाँव में वह आता है टूटी-फूटी छतों से गिरती हुई जल धारा बनकर, भूख-प्यास से पथराए हुए अभावों पर उदासी की एक गहरी पर्त बन कर, धान-कोदो के मासूम अंकुरों को लाड़ प्यार से पाल पोस कर फिर उन्हें तोड़ मरोड़ कर लूट ले जाने वाली बाढ़ कर, कुमारी युवतियों का अनमेल विवाह बन कर, कुमारों का चिर कुमारत्व बनकर...

हाँ तो बादल छाये हुए थे। पानी बरस रहा था। ऐसे मौसम में आग में चना या मटर गरमा-गरमा कर खाना बहुत अच्छा लगता है। लोग चाहते थे खाना परन्तु गृह लक्ष्मियाँ खाली हँड़िया हिड़होड़ कर लौट आती थीं। उदासी और गहरी हो जाती थी।

चमेली की शादी इस साल भी नहीं हुई। धीमड़ पाँड़े ने दो चार जगह कोशिश की परन्तु दहेज का नाम सुनते ही थर्रा उठे। यहाँ तो एक दाना भी घर में नहीं है। कहाँ से विवाह करें! अगले साल शायद कुछ हो वो जाय तो देखा जायगा।

चमेली अपने ओसारे में गा रही थी——

हरी हरी अंचरा भींजत जाय
बदरवा बरसे ए हरी!

लड़कियाँ जुटने लगीं। चमेली के घर के सामने वाले नीम में झूला पड़ गया। लकड़कियों ने चमेली को गुदगुदा कर उठाया। वह हँसने लगी। पानी थम गया था। लड़कियाँ झूला झूल-झूल कर गाने लगीं।

एक लड़की गेंदा के पास गयी । वह नहीं आयी ।

बदरवा बरसे ए हरी !
धक-धक धधके गोरी बिजुरिया
झक-झक झहरे वैरी बयरिया
आरे रामा सैंया रहे कहाँ छाय
बदरवा बरसे ए हरी !

अरे वाह री मेरी प्यारी चमेली, खूब गाती है, हाँ जरा और जोर से पेंग मार। अरे ओ कलमुँही मैना ! खड़ी-खड़ी क्या देखती है गा न गा ।

मोरवा बोले, बोले पपैया
डगमग डोले मन की नइया
आरे रामा जिनगी बीतल जाय
बदरवा बरसे ए हरी

वाह री प्यारी, हाँ जरा और जोर से पेंग मार, हाँ हां गाओ, गाओ ।

ए हरी, ए हरी, ए हरी
ह ह ह ह : ह : हि : हि : हि :

जैसे जमी हुई बदली एक क्षण के लिए फट गयी हो । दिल के भीतर लदे हुए पत्थर कुछ सरक गये हों । अभाव और दर्द से भरी जिन्दगी में जैसे एक क्षण के लिए उल्लास की लहर दौड़ गयी हो ।

लड़कों में शोर हुआ, चलो यार चलो चिक्का कबड्डी खेलें। खेतों में कोलाहल हुआ । कोलाहल ने गाँव के सन्नाटे को आर-पार बेंध दिया।

४८

क्या होगा भगवान? अभी पूरा साल पड़ा है। अभी तो परसाल के ही अकाल से जो कमर टेढ़ी हुई वह सीधी नहीं हुई कि इस साल भयंकर अकाल के लक्षण नजर आ रहे हैं। रब्बी नहीं हुई। खरीफ का क्या भरोसा? इन्द्र भगवान की मरजी। अभी जोर का पानी बरसा, बाढ़ आयी और सब कुछ खत्म। लगातार ७-८ वर्षो से बाढ़ आ रही है। पहले जमाने में एकाध साल का आँतर भी दिया करती थी किंतु अब तो बराबर आ रही है। नैपाल का राजा बड़ा नाराज है वह पानी का फाटक खोल देता है और यह बाढ़ ससुरी वहाँ से फुफकारती हुई चलती है

यह गनपति नेता कहता है कि अपनी कांगरेसी सरकार हो जायगी तो यह बाढ़ नहीं आयेगी। बांध वँधवा देगी, सड़क बनवा देगी, अस्पताल खुलवा देगी, स्कूल बनवा देगी। हाँ हाँ बहुत कुछ करेगी। वह दिन कब आयेगा भगवान!

लोग गाँव छोड़-छोड़ कर भाग रहे हैं। खेती की कमाई में कुछ नही धरा है।

धीमड़ पाँड़े का असली नाम था सम्पत पाँड़े परन्तु वे अपनी कुछ विशेषताओं कारण धीमड़ हो गये थे। पाँड़े के तीन चौथाई खेत नदी के पेट में जा चुके थे, नहीं तो वे अच्छी औकात के आदमी थे। उनके बाप रंगून कमाते थे तो धीमड़ पाँड़े का क्या कहना? रोज नयी-नयी धोतियाँ, नये-नये कुर्ते। बाग-बगीचों में घूम-घूम कर खोतों में से सुग्गे पकड़ा करते, कुत्तों और बिल्लियों को अकारण खदेड़ा करते, अपने साथियों को गरी छुहाड़ा बाँट-बाँट कर गाँव के बूढ़े लोगों को चिढ़ाते और चिढ़वाया करते। पंद्रह सोलह साल तक उन्होंने अपने खेत भी नहीं पहचाने। बाप मर गया, धीमड़ अपने को संभाल नहीं सके, गिरते गये, गिरते गये और अब—थोड़े से बेमरम्मत खेत, अपार गरीबी, बाढ़ की तरह उमड़ती हुई अविवाहित जवान बेटी, वेजान पत्नी...क्या करें? पत्नी है यह! एक चिरकुट लपेटे हुए। अनेक जगहों से शरीर दिखाई पड़ रहा है। धीमड़ के पास भी क्या है? कपड़े का एक ही टुकड़ा। उसी को इधर से उधर अदल बदल कर नहा धो लेते हैं, कुरते की आवश्यकता पड़ने पर उसी को जरा पेट पर डाल लेते हैं। क्या करे

घीमड़ पाँड़े. . .सो वे घर छोड़ कर भाग गये लखनऊ। सुना है कि किसी मेस-महाराज के यहाँ नौकरी कर रहे हैं ।

टीसुन करताल लेकर तराई की ओर निकल गया ।

बेनी काका का छोटा लड़का छबीले कहीं निकल गया । किसी को पता नहीं चला–कहाँ ?

रघू बाबा अपने छोटे भाई कन्नू पांड़े के साथ चेलान करने निकल गये।

रमेश के पिता अभिराम पाँड़े बुजुर्ग तो हो ही गये थे बीमार भी रहा करते थे। उनका बड़ा लड़का जवान होकर मर चुका था। अपने पीछे अपनी विधवा बहू छोड़ कर। उस परिवार में सबसे बुजुर्ग अभिराम पाँड़े की अस्सी वर्षीया चाची थी जो हर उपाय से इस परिवार को सँभाले हुए थी। इस परिवार की कहानी क्या कही जाय? दो-दो तीन दिन तक अन्न से इनकी भेंट नही होती थी, तो भी अभिराम पाँड़े की साध थी कि बेटा पढ़ ले। रमेश पढ़ने में बहुत होनहार था, दूसरे के खर्चे पर पढ़ा रहा था, अभिराम पाँड़े क्या कहते? लेकिन एक दिन जब अषाढ़ की एक गहन रात में वे दम तोड़ कर चले गये तो रमेश की आंखों के आगे अँधेरा छा गया---क्या करे? उसकी पढ़ाई-लिखाई बन्द। गोरखपुर भागा भागा अपने चेले डाक्टर के यहां पहुँचा---आजकल चेला ही तो होता है असूझ अंधकार में रास्ता सुझाने वाला। चेले डाक्टर ने अपने प्रभाव से रमेश को प्राइमरी स्कूल की मास्टरी दिला दी। रमेश की उम्र कुछ कम पड़ती थी सो कोई बात नहीं ।

गाँव के हरिजन अपने गाँव में निस्तार न देखकर भाग-भाग कर कलकत्ता और कोइलरी में जाने लगे। उनकी बहू-बेटियाँ भी आस-पास के गांवों में बड़े आदमियों के यहाँ काम खोजने लगीं। सोहनी का काम शुरू हो गया था। कुछ की गुजर बसर गांव में ही हो जाने लगी। अगर कहीं नहीं गयी तो बिंदिया चमाइन, वह बैजू के यहाँ लगी रही। उसी के साथ मरती जीती। उसकी माँ ने उसे कई बार कहा---'अरी सौत, खाना-पीना कैसे चलेगा अगर तू अपने उसी निठल्लू भतार के साथ सती होती रहेगी ?'

'तो तू मेरी चिंता क्यों करती है तू अपने खाने भर को कमा ला न सोहनी पताई से।'

बहुत से हरिजन उजड़-उजड़ कर बांगर पर भागने लगे।

निरबल तेली का तेल का रोजगार था उसी से दो पैसा कमा लेते थे। कुछ बचाकर कर्ज पताई भी दे लेते थे।

भीखन गड़ेरी अपने बच्चों-सहित भेंड़ लेकर चौरी-चौरा की ओर निकल गए थे।

दधिबल यादव की गाय ने दूध देना कम कर दिया था। लेकिन उनके लिए दूध और पानी में मौलिक अन्तर नहीं था और बरसात में पानी की

क्या कमी ? अपने गाँव और आसपास के गाँवों के कुछ बच्चों की माताएँ अपनी सौतों या गाँव की किसी दुष्ट टोनहिन द्वारा आरोपित चुड़ैलों से इस कदर परेशान थीं कि उनको दूध ही नहीं उतरता था इसलिए दधिवल यादव के दूध और पानी दोनों की बड़ी पूछ रहती थी।

सारा गाँव जैसे बिखरा हुआ, छपटाता हुआ सन्नाटे में डूबा था।

४६

नीरू गजेन्द्र सिंह के यहाँ नौकर हो गया। वह हरिपुर की छावनी पर भेज दिया गया। एक नयी दुनिया जिसमें उमस, छटपटाहट भरी हो—नीरू के सामने खुल रही थी। मुंशी दुक्खीलाल गजेन्द्र बाबू के यहाँ सीनियर तहसील-दार थे। वे किसानों से लगान वसूल करते थे। नीरू को मुंशीजी के अधीन अनुभव प्राप्त करने का अवसर दिया गया था।

दरबार में बीसों किसान पकड़ कर लाये गये थे। सबके सब फटे हाल, नंगे बदन, धूल-धूसरित सर वाले। मुंशी जी सबको बारी-बारी से मुर्गा बना कर पीट रहे थे, चिलचिलाती धूप चोट के ऊपर लेपन कर रही थी। मुंशीजी गरजते जा रहे थे—'मैं सबकी नस पहचानता हूँ, तुम सब साले चोर हो। बिना मारे तो सुनते ही नहीं हो। लात के देवता हो बात से क्यों मानोगे? दो-दो साल की लगान बाकी है। सिपाहियों के जाने पर घर छोड़ कर भाग जाते हो।'

एक सिपाही गरजा—'अरे मुंशी जी इस हरदुवरा ने हमें पचास बार दौड़ाया है, डेहरी में से पकड़ कर लाया हूं।

मुंशी जी ने एक एंड़ जमाया, सिपाही ने लाठी के हूरे से ढकेल दिया। किसान मुर्गे की हालत में ही गिर पड़ा, उसका ललाट ठीकरे से लग कर फूट गया।

मुंशी जी के हाथ दुख गये थे। उनके आदेश पर सिपाही किसानों की मरम्मत कर रहे थे। किसान कसाई के हाथ में पड़ी गाय की तरह निरीह आँखों से दया की भिक्षा माँग रहे थे।

नीरू देख रहा था, उसका दिल फटा जा रहा था। उसने गरीबी भोगी है। इसलिए इन गरीबी और कातरता की साक्षात् प्रतिमाओं की भीगी-व्यथाएँ उसके हृदय पर बरस रही थीं। वह देख रहा था—इन किसानों के घर पर दर्द से टूटती हुई एक अर्द्ध नग्न नारी है, जवानी के भार से माती और अभावों के श्रृंगार से बोझिल एक बेटी है, टूटी मड़ैया के नीचे बड़े पेट वाला एक लड़का भूख से छटपटा कर रो रहा है। आह...उसे घर की याद आ गयी—माँ, केशव, लीला, पिता...ग़रीबी...ग़रीबी...गरीबी।

'मुंशी जी।' वह जैसे स्वप्न से चौंक कर चिल्ला उठा—

'क्या है?' मुंशी जी ने मुड़ कर नीरू की ओर देखा। नीरू की आँखों में गहन वेदना उतरा गयी थी।

'ज़रा सुनिये।' मुंशी जी को नीरू जरा दूर ले गया। बोला-'मुंशी जी काहे को बेरहमी से इन्हें पीट रहे हैं। इनके पास पैसे होते तो देते नहीं।'

'वाह रे मेरे बहादुर रहमदिल शेर' तुम कर चुके नौकरी ज़मीदार की। इसी जनानेपन से लगान वसूलोगे? अरे तुम अभी लड़के हो, इन सबों की बदमाशी नहीं जानते हो। जमीन में रुपया गाड़ कर रखते हैं परंतु ज़मीदार का, महाजन का रुपया देना नहीं चाहते। अभी नये हो, अभ्यास हो जायगा।'

मुंशी जी नीरू को प्यार करते थे इसलिए उसे समझाकर, पीठ थपथपा कर चले गये और फिर उन किसानों की खोज खबर लेते रहे।

नीरू सोचता रहा—'हाँ मैं नहीं समझता हूँ तो तुम समझते हो? मैंने गरीबी के संसार का कोना-कोना देखा है और उससे परिचित तुम हुए। वाह रे मुंशी जी! ये किसान ज़मीन के नीचे धन गाड़ कर रखते हैं, कैसी बेहूदी बात है! दूह लो मुंशी जी, इनकी हड्डियों से रुपया दूह लो।'

किसान उसी अवस्था मे धूप में खड़े थे नीरू से देखा नहीं गया तो कलमी आम के बगीचे में टहलने चला गया जहाँ बाबू गजेन्द्र सिंह शौक बस गुलाब का पौदा खुद लगा रहे थे।

'कहो नीरू पंडित! ठीक चल रहा है न।' गजेन्द्र बाबू ने बिना नीरू की ओर ध्यान दिये ही कहा।

'सब दया है सरकार की।' नीरू दरबार के कुछ शब्दों से परिचित हो गया था।

'मुंशी जी तो तुम्हारी बड़ी तारीफ कर रहे थे कि बड़ा होनहार लड़का है! जल्दी ही काम सीख जायगा। क्यों मुंशी जी मन से सिखा रहे हैं न!'

'जी सरकार! मुंशी जी ने थोड़े ही दिनों में बहुत कुछ सिखा दिया है।' नीरू की आँखों के आगे मुर्गा बने हुए किसान फैल गये।

बाबू साहब गुलाब के पौदो में व्यस्त थे, पुराने गुलाब के पौदों में लाल लाल गुलाब खिले हुए थे—गुलाब के फूलों की लाली, हवेली के पीछे मुसकरा रही थी, रँग रही बगीचे के आँचल को...और...और हवेली के सामने किसानों की पीठ पर रक्त की चिपचिपाहट धूप में चिलचिला रही थी।

५०

रात के दस बज गये थे। लम्बे-चौड़े बरामदे में सभी लोग यहाँ से कहाँ तक लेंढ़ियाए हुए थे। दरबार में खाने का वक्त दो बजे रात था। अतः आधी रात तक गपशप चलती रहती। नीरू अपनी चारपाई पर लेटा हुआ था। मुंशी जी के आस-पास बहुत से सिपाही इकट्ठे हो गये थे। दो सिपाही मुक्की लगा रहे थे। एक सिपाही सिर पर चमेली के तेल की मालिश कर रहा था।

हाँ सिटहला, तू उस दिन वह कहानी कह रहा था न। बीच में ही कहानी टूट गयी थी आज सुना।'

'हाँ-हाँ सिटहल चाचा सुनाओ वह कहानी। मुंशीजी! ई बड़ी बढ़िया-बढ़िया कहानी कहते हैं।'

'अरे नाहीं सरकार! ई लौंडे सब नाहक मेरी बदनामी करते हैं।'

'ना ना सुना सिटहला! बड़ी मजेदार कहानी है।'

'सरकार वह फूहड़ कहानी है, ई सब ऐसी ही कहानी सुनते हैं तो मैं क्या करूँ मगर वह आप लायक नहीं है सरकार।'

'ना-ना कह!' मुंशी जी ने आग्रह किया।

सिटहला ने कहानी क्या कही किसी शरीफ जमीदार का संस्मरण था। उस कहानी में मुंशी जी अपना चेहरा देख रहे थे।

गजेन्द्र सिंह भी अपनी शकल देख सकते थे। मुंशी जी के मुँह से लार टपक रही थी सिर की नसें जोर-जोर से धड़कने लगीं।

'अरे भाई जरा जोर से सिर दबा। हाँ सिटहला कहता चल।'

नीरू अपनी खाट पर पड़ा-पड़ा सुन रहा था सिटहला की कहानी। उसे उसमें रस नहीं था, मगर नींद नही आती थी और अपने कानों को कहाँ फेंक दे। वह कहानी सुन रहा था—पीड़ा की कहानी, दर्द की कहानी, इंसानियत के चीत्कार की कहानी।

मुंशी जी कहानी सुन रहे थे—रस की कहानी, नस-नस में वासना की लहर दौड़ाने वाली कहानी, जवानी के ज्वार से खेलते हुए पुरुषत्व की कहानी।

नीरू कहानी सुन रहा था—मजबूरी से छटपटाते नारीत्व को वासना की जीभ से निगल जाने वाले एक खूंखार नर पशु की कहानी, आँखों को आंसू से सराबोर कर देने वाली कहानी, हृदय को प्रतिहिंसा की आग से धधका देने

वाली कहानी, अपने ही घरों की बहनों-बेटियों के रुदन से भींगी हुई कहानी.....

सिटहला रुक गया।

मुंशी जी अपने वश में नहीं थे। सब सिपाही भी आपस में शरीर-मर्दन करते हुए इस रसीली कहानी को सुन रहे थे। बीच बीच में गन्दे गन्दे मजाक कर रहे थे सो कहानी बन्द हो गयी।

मुंशी जी अधीरे हो उठे—'हाँ तब आगे क्या हुआ सिटहल ?'

'अब आगे क्या होना था मुंशी जी! वह बेचारी मजबूर लड़की उस अमीर का अपनी इज्जत के साथ यह खेलवाड़ देख कर पागल सी हो उठी। उसके मन में उस अमीर को खत्म कर देने की आग पैदा हो गयी। पागल सी घूमती फिरी। परन्तु अमीर आदमी के खिलाफ कौन कुछ कहता ? वह अपनी आग में अपने को फूंकती हुई चक्कर काटने लगी और एक दिन——

'हाँ एक दिन क्या ?' सब अधीर भाव से बोल उठे।

'अरे एक दिन क्या ? एक दिन यही कि बागीचे में एक पेड़ की डाल से लटकी हुई उसकी लाश पायी गयी।...'

'छि: छि: सिटहला! तूने सब मजा किरकिरा कर दिया। साली हरामजादी, माँगने को भीख और शान इतनी...उसको तो अपनी खुश किस्मत माननी चाहिए थी कि एक अमीर आदमी ने उसे अपनी गोद में जगह दी। सो साली पागल हो गयी और खुदकुशी कर ली। कर ले साली अपने को क्या ? ऐसी जाहिल लडकियाँ मर ही जायँ तो अच्छा है।' मुंशी जी का स्वर था।

नीरू सोच रहा था कि वह किस दुनियाँ में आ पड़ा है। यहाँ के लोग अजीब तरह के हैं...वह सोच रहा था——ये सिपाही कितने जानवर हो गये हैं ? घर के ग़रीब, मजबूर किन्तु जैसे जमींदारी प्रथा ने इन पर जादू करके इन्हें अपना बना लिया है और ये नहीं सोचते कि गरीब किसानों की बहू बेटियों या खुद किसानों पर जो अत्याचार करते हैं वह खुद अपने पर कर रहे हैं। इनके घर भी वहाँ के ज़मीदार के सिपाही भी इसी तरह जाते होंगे...तो ये लोग खुश होते हैं अपने ही ऊपर जुल्म करके...मुंशी जी नशे में आ गये थे, वे सिपाहियों को उकसा रहे थे। सिपाही आज की घटनाएँ बयान कर रहे थे।

'मुंशी जी! झिंगुरिया चमार बहुत पाजी है, वही जिसको आज आपने बहुत पीटा है। वह साला एक महीने से चरका पढ़ा रहा था। आज भी घर में ही था डेहरी में छिपा हुआ। उसकी जोरू ने कहा——नहीं है। सरकार आग लग गयी। लाठी से मैंने उसकी छान उजाड़नी शुरू कर दी, वह मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी। 'क्या करते हो सिपाही जी।' गरजी। 'मुंशी जी क्या कहूं ?

झिगुरिया साला है तो सचमुच झींगुर लेकिन उसकी जोरू तो जैसे आग का गोला है दहकता हुआ। उसके माथे पर बड़ी सी टिकुली चम्म चम्म करती है। उसकी आँखें तो बरछी हैं। मुंशी जी कभी आप उधर घूमते घामते चले तो दिखा लाऊं। हाँ तो आकर उसने मेरी लाठी थाम ली। एक बार मेरे हाथ कमजोर पड़े गये लेकिन आपका हुकुम याद आया। मैंने लाठी उसके बड़े बड़े गोल गोल—पर धँसा कर धक्का दिया, वह चीख मार कर गिर पड़ी—अरे उस जुल्मी की चीख भी कितनी गजब की थी मुंशी जी! फिर घर में घुसकर तलाशी ली। झिगुरिया डेहरी में छिपा हुआ था। लाठी के हूरे से डेहरी में मारा सो उसकी पीठ पर चोट लगी, है साला बड़ा घाघ, पता लगने के डर से रोया नहीं, सी तक नहीं किया। लेकिन मुझे मालूम हो गया कि इसमें कुछ है। फिर उसे खड़ा किया, उसका कान पकड़ कर निकाला। उसकी जोरू रास्ता छेंक कर खड़ी हो गयी, उसे धक्का देकर झिगुरिया को घसीटता ले आया।'

'लेकिन है साला बड़ा घाघ क्यों मुंशी जी! आज भी उसने लगान नहीं दी न।'

मुंशी जी कुछ चिन्ता में पड़ गये थे। बोले 'हाँ उसने आज भी नहीं दी। दो दिन की मुहल्लत माँगी है। उससे लगान वसूल तो करना ही है, मैं तुमसे बात करूंगा इस सिलसिले में।

हर सिपाही इसी प्रकार के चटपटे अनुभव मुंशी जी को सुनाता रहा, मुंशी जी सुनते रहे। महाराज ने पुकारा—'बम बम शंकर।' मतलब था खाना तैयार है। सभी सिपाही कहानी छोड़-छाड़ कर लोटा थाली खनखनाते हुए दौड़ पड़े। नीरू समहिता सा उठा, धीरे धीरे चौक की ओर चला। उसने अनुभव किया कि हवेली के पिछवाड़े एक छाया दूसरी को घसीटती हुई बगीचे में बने हुए बैठक-खाने की ओर बढ़ रही है।

५९

गाड़ी चली जा रही थी। थर्ड क्लास के एक डिब्बे में दो महात्मा बैठे हुए थे। दोनों ने धोती, लम्बी पुरानी शेरवानी और कत्ती पहन रखी थी, ललाट पर चन्दन फटाका सुशोभित था। उनमें से एक अंधा था। वह छोटी वय का होने पर भी अपने भारी भरकम डीलडौल के नाते तथा अंधा होने की वजह से दूसरे से वयस्क मालूम पड़रहा था। वह गुरू था दूसरा चेला।

सामने बैठे हुए किसी देहाती आदमी ने पूछा—'महाराज कहाँ कुटी है आप लोगों की ?'

चेले ने कहा—'बच्चा हम लोग काशी क हईं। ई हमार गुरु हवें। जे बासे बहुत सिद्ध पुरुप हवें। भूत भविष्य वर्तमान तीनों क ज्ञाता हवें। हम लोग एक चेला के यहाँ गोरखपुर गइल रहली हईं, अब लौट के काशी जात हईं।'[1]

उस देहाती ने अभिभूत होकर गुरू जी के पाँव छुए। 'धन्यभाग महाराज कि काशी के ऐसे बड़े देवता का दर्शन हो गया। महाराज से हम कुछ पूछना चाहते हैं।'

'जे बासे, अबहिन महाराज ध्यान में हैं। ध्यान टूटले पर आप उनसे बातचीत करीं। आ जे बासे, महाराज बहुत कम सुने लें। बहुत जोर जोर से चिल्लइले पर थोड़ा सा सुनेलें, एसे बातचीत कइले में बड़ी मुश्किल होई।'[2] चेले ने जवाब दिया।

चेले ने धीरे धीरे उस आदमी से बातचीत शुरू की। बातचीत करते करते उसने उस व्यक्ति के बारे में बहुत कुछ जान लिया। डिब्बे के अन्य व्यक्ति भी आ आ कर सिद्ध पुरुष के दर्शन करने लगे।

---

१. हम लोग काशी के हैं। ये हमारे गुरु हैं। बड़े सिद्ध पुरुष हैं। भूत भविष्य वर्तमान के ज्ञाता हैं। हम लोग गोरखपुर एक चेले के यहाँ गये थे, अब काशी लौट रहे हैं।

२. अभी महाराज ध्यान में हैं, ध्यान टूटने पर इनसे बातचीत कीजिए। महाराज बहुत कम सुनते हैं। बहुत जोर जोर से चिल्लाने पर थोड़ा सुनते हैं। इससे बातचीत करने में बड़ी कठिनाई होगी।

उस देहाती ने बड़े संकोच से कहा—'महाराज यदि मेरी विनती मंजूर की जाय तो कुछ कहूं।'

'जे बासे, कहल जा।'

'महाराज! अगले स्टेशन पर मुझे उतरना है, वहाँ से दस कदम की दूरी पर ही मेरा गाँव है, हम लोग मामखोर के शुक्ल हैं। हमारी विनती है कि इस देवता के चरण एक रात के लिए हमारे गाँव में भी पड़ जाँय।'

'जे बासे गुरुजी अबहिन ध्यान में हवें।'[1]

'महाराज अगले स्टेशन पर ही मुझे उतरना है।'

शिष्य ने गुरू जो के कान में वहुत जोर से चिल्लाकर कहा-'गुरू जी!'

गुरू जी ने नहीं सुना

फिर शिष्य चीखा 'गुरू जी'

गुरू जी की नींद जैसे भंग हुई। बहुत मन्द और गंभीर स्वर में बोले—'क्या है वत्स!'

'गुरू जी। जे बासे एक सेवक आपसे बिनती कइल चाहत बा कि आप उनके गाँव चलिके गाँव पवित्तर कइल जा।'[2]

गुरू जी! कुछ नहीं बोले जैसे फिर किसी ध्यान में डूब गये।

कुछ देर बाद बोले—'वत्स यह नहीं हो सकता। मुझे कल काशी पहुँचना है। वहाँ एक अनुष्ठान शुरू करना है।'

वह देहाती व्यक्ति अनुनय की दृष्टि से शिष्य को देखने लगा। शिष्य ने आश्वासन की मुद्रा से देख कर मानो कहा—घबड़ाओ मत कोशिश करता हूं।

शिष्य ने फिर गुरू जी का कान फूंका-'गुरू जी, जे बासे बहुत बड़हन भक्त मालूम पड़त बा। भक्तन खातिर भगवानो आपन प्रण तोड़ि देलें। कुछ खयाल कइल जा।'[3]

गुरू जी फिर कुछ देर मौन रहे। फिर गंभीर स्वर में बोले–एवमस्तु।

देहाती खुश हो गया किन्तु उसी समय डिब्बे में एक कौआ-रोर मचा-'महाराज हमारे गाँव भी चला जाय, हमारे गाँव भी चला जाय।'

---

१. गुरुजी अभी ध्यान में हैं।

२. गुरू जी! एक सेवक आपसे विनती करना चाहता है कि आप चलकर उसके गाँव को पवित्र कर दें।

३. गुरू जी वहुत बड़ा भक्त मालूम हो रहा है। भक्तों के लिए तो भगवान् भी प्रण तोड़ देते हैं। कुछ ख्याल किया जाय।

शिष्य ने कहा-'ई नाहीं हो सकऽला । गुरू जी जेके कहि दिहलें, कहि दिहलें। जे बासे आप सब लोग आपन आपन पता हमें दे देईं हम गुरू जी के मना के ले अइले क कोशिश करव ।'[1]

'यह बात ठीक है, यह बात ठीक है ।' भक्तों की आँखें गुरू जी के चरणों पर बिछी रह गयीं। भक्त भगवान् को लेकर अगले स्टेशन पर उतर गया।

नीरू मुंशी जी के साथ उसी गाँव में लगान वसूल करने गया था। शोर हुआ कि काशी के एक महात्मा देवी शुक्ल के यहाँ पधारे हैं। भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों के ज्ञाता ह। कुछ सुनते नहीं हैं, अंधे भी हैं। भक्तों की भीड़ उमड़ने लगी।

मुंशी जी ने कहा—'निरंजन पांड़े, चलो हम लोग भी महात्मा के दर्शन कर आयें।' सारे अंगों में चन्दन का लेप किये हुए महात्मा जी ध्यानस्थ थे। उनका मोटा गोरा शरीर लोगों की आँखों में दिव्य ज्योति भर रहा था। अंग-अंग से ओऽम ओऽम मुखर-सा हो रहा था।

गांव के सभी लोग आते और महात्मा जी के चरण छू-छू कर बैठ जाते। महात्मा जी कल वाले सज्जन का विगत, आगत और अनागत स्पष्ट कर रहे थे। वे सज्जन विस्मय-विमूढ़ भाव से सुन रहे थे। गांव वाले भी भाग्य के रहस्योद्-घाटन से चकित थे और सभी लोग अपनी-अपनी बारी का इन्तजार कर रहे थे। कल वाले सज्जन का भाग्य बखान करने के बाद महात्मा जी चुप हो गये। और लोगों ने अपने बारेमें पूछना चाहा तो शिष्य ने मना कर दिया-'जे बासे महात्माजी के काली माई क हुकुम हवे कि एक दिन में एक्के आदमी क तकदीर बाँचें। महात्मा जी बहुत देर तक ध्यान धरेलें तब जाके तकदीर बाँचें लें। कौनो भड़े-रिया थोड़े न हवें। जे बासे हमके महात्मा जी कहि रखले हवें कि तू देहाती अदिमिन के साथे हरदम देहाती भाषा बोलिहऽ। जेसे गूढ़ से गूढ़ बात दिमाग में आ सके।'[2]

---

१. यह नहीं हो सकता। गुरू जी ने जिसे कह दिया कह दिया। आप सब लोग अपना-अपना पता मुझे दे दें। मैं गुरू जी को मना कर ले आने की कोशिश करूँगा।

२. महात्मा जी को काली माँ का हुक्म है कि एक दिन में एक ही आदमी की तकदीर बाँचना। महात्मा जी बहुत देर तक ध्यान धरते हैं तब तकदीर बाँचते है। वे कोई भड़ेरिया थोड़े न हैं। महात्मा जी ने मुझे आदेश दे रखा है कि देहाती आदमियों से देहाती भाषा में ही बात करूँ जिससे गूढ़ से गूढ़ बात उनकी समझ में आ सके।

इस मर्मकथन से सभी लोग अभिभूत हो रहे थे। उसी समय मुंशी जी नीरू के साथ आये और चरण स्पर्श करके बैठ गये। नीरू ने महात्मा जी को देखा तो धक्क से रह गया, एक क्षण के लिए अकचका गया फिर संभल कर महात्मा जी का चरण स्पर्श किया। महात्मा को तो अंधा होने की वजह से दिखाई नहीं पड़ा किन्तु महात्मा जी के शिष्य ने देख लिया। दोनों की आँखें एक क्षण के लिए मिलीं। शिष्य की आंखों में अनुनय विनय थी। नीरू चुप-चाप भीड़ में बैठ गया। मुंशी जी! मेरा मन नहीं लग रहा है, मैं डेरे पर चलता हूँ आप आइएगा, कहकर नीरू चला गया। शिष्य के दिल पर से एक पत्थर हट गया।

गाँव के एक दरवाजे पर हाथ में करताल लिए टीसुन गा रहा था-
'भजलो रामचन्द्र का नाम।'

हरगंगा जी राखें मान।

घर का मालिक डांट कर खदेड़ रहा था। 'भाग भाग यहाँ से भीख नहीं मिलेगी। सस्ता पेशा मिल गया है जवान आदमी भीख मांग रहा है।'

टीसुन रिरियाया—भिच्छा मिले धरमी बाबू!

घर का मालिक टीसुन को गालियाँ बक कर महात्मा जी के दर्शन को चला गया।

नीरू ने आँख बचाकर दूसरा रास्ता पकड़ा।

उसकी आंखों में आँसू भर आये। 'हाय रे पांड़ेपुरवा गांव, तेरी यह हालत?'

कन्नू पाँड़े महात्मा बने हुए हैं, उनके बड़े भाई रग्घू बाबा के शिष्य बने हुए हैं, दोनों पक्के गंवार, किन्तु महात्मा बनकर लोगों को ठग रहे हैं। टीसुन और पांड़े में क्या अन्तर है? दोनों ही भीख मांग रहे हैं किन्तु टीसुन को गाली मिल रही है और कन्नू पांड़े को आदर यश और धन तीनों।

उस दिन फिर कन्नू पांड़े का ध्यान नहीं जमा। रग्घू बाबा ने गाँव वालों से कहा—'नहीं अब हम लोग यहाँ एक मिनिट भी नाहीं रहि सकेलीं। गुरू जी के देवी जी क हुकुम होत बा कि जे बा से जल्दी से जल्दी काशी चलि आउ।'[1]

उसी दिन महात्मा जी गाँव को पवित्र करके बहुत सा यश और द्रव्य लेकर काशी के लिए प्रस्थान कर गये।

---

१. नहीं अब हम लोग यहाँ एक मिनट भी नहीं रह सकते हैं। गुरुजी को काली माँ का आदेश हो रहा है कि जल्द से जल्द काशी चला आ।

५२

पांड़ेपुरवा गांव अपने समस्त परिवेश के साथ धीरे-धीरे उसी ढंग से चल रहा था और बिना किसी विशेष परिवर्तन के चार-पांच साल गुजर गये। मुन्शी जी बाबू गजेन्द्र सिंह का दरबार छोड़ कर अन्यत्र चले गये, उन्हें कोढ़ फूटने लगी। नीरू अपने कार्य में काफी निपुण हो गया था, सारे कागज-पत्र समझ लिए थे। इतना ही नहीं, वह गजेन्द्र सिंह जैसे सनक्कड़ आदमी की भी नस पहचान गया था, इसलिए गजेन्द्र सिंह उसे प्यार करते थे। गजेन्द्र बाबू ने एकाध बार बहाने से हिसाब-किताब की जांच की तो कोई गड़बड़ी नहीं दीखी। इसलिए उन्हें नीरू पर पूरा इतमीनान हो गया था।

अब दरबारी सिपाहियों का हो हल्ला करना, भद्दे-भद्दे मजाक करना भी उसे विशेष नहीं अखरता। उसकी उदारता देखकर मुन्शी जी उसके और आने वाले कारिन्दों के हित के लिए यह सीख दे गये थे कि बेटा, रिवाज न बिगाड़ना। ये किसान रुपया पीछे एक आना फर्खतियावन खुद देते हैं, जोश में आ कर उसे इनकार न करना। जानते तो हो ही जमींदार के यहाँ तनख्वाह मिलती है तीन रुपये। यह पेशा सोने के अंडे उगलता है सो धीरे-धीरे अंडे बटोरना, न तो इनकार करना, न जल्दीबाजी करना।

नीरू पहले तो मुंशी जी पर चिढ़ा करता था। किसानों पर उनका अत्याचार, उनसे उनके खून का पैसा ले लेकर अपना जेब भरना और उनकी वासनात्मक प्रवृत्ति नीरू को बहुत खलती थी। मगर जब उपदेश देकर मुंशी जी चले गये तो उसे इन प्रश्नों पर फिर से विचार करना पड़ा। हाँ ठीक ही तो है—ये किसान अपने आप फर्खतियावन देते हैं तो क्या बुरा ? वह कोई जोर जुल्म तो करता नहीं। और जमींदार के तीन रुपये की तनख्वाह में क्या होने को ?

पहले ही दिन जब उसे फर्खतियावन के दस रुपये मिले तो उसे एक अद्भुत आनन्द आया। उसने सात आठ दिन की आमदनी के चालीस रुपये घर भेज दिये तो घर में आश्चर्यमय हर्ष छा गया। चालीस रुपये आज कमा कर दिये हैं बेटे ने, भइया ने...वे चालीस रुपये बड़े जतन से लोटे में रखकर गाड़ दिये गये।

नीरू के पास जब रुपये आने लगे तो वह उन रुपयों को न्याय का जामा पहनाने लगा। वह कल्पना करने लगा—कर्ज चुकाऊंगा, खेत छुड़ाऊंगा।

यह कर्ज घर के लिए बड़े कलंक की बात है । हर आदमी कर्ज-खौका कहता है । खेत रेहन पर चढ़े हैं, अनाज कुछ होता ही नहीं । फिर मकान बनवाऊंगा...केशव को पढ़ाऊंगा । रूपा की शादी करनी है...और अपनी... संध्या...पता नहीं क्यों यह लड़की बेमौके याद आ जाती है ।

नीरू को रुपये मिलने लगे । इस बीच उसने सारे कर्ज चुका दिये । अफवाह थी कि सरकार ऐसे कानून बना रही है कि सभी प्रकार के कर्ज माफ हो जायेंगे । इसलिए गाँव के सभी कर्ज देने वाले महाजन कुछ भयभीत से थे । जब नीरू ने मुखिया, सुमेस्सर बनिया और बैकुंठ पाँड़े के घर जा-जाकर सबका कर्ज बेबाक कर दिया तो सभी लोग नीरू की ईमानदारी पर मुग्ध हो उठे, मगर मुखिया तो जैसे ऐंठ कर रह गया । अब उसके हाथ में क्या था जिससे वह नीरू-परिवार पर अपना भय स्थापित करता । वह बहुत दिनों से सोच रहा था कि सुमेश पाँड़े पर कर्ज का मुकदमा चला कर उसकी जायदाद कुर्क करा लूं और खुले आम उसकी बेइज्जती कर संतोष की सांस लूं । लेकिन एक तो कर्ज के खूब फैलाव का इन्तजार कर रहा था दूसरे जब से नीरू बाबू गजेन्द्र सिंह के यहां नौकर हुआ, तब से मुखिया उसके धर के खिलाफ कुछ करने में डरता भी था । गजेन्द्र सिंह का वरद हस्त नीरू की पीठ पर था । गजेन्द्र सिंह उस जवार में एक ही जोरदार व्यक्ति थे और वे अंग्रेजी सरकार के कृपा-पात्र थे ।

नीरू की पढ़ाई छूट जाने से मुखिया को बड़ा सन्तोष हुआ था । अब उनके बेटे महेश का कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रह गया था किन्तु जब नीरू पैसा कमा कर घर भरने लगा और मुखिया को निःशस्त्र कर दिया तो उसकी छाती पर सांप लोटने लगा । उद्यमी लड़का है । जहां जाता है वहीं से कुछ खींच लेता है । किन्तु इतने रुपये कहाँ से पाता है ? चोरी करता होगा हिसाब में । कहना चाहिए बाबू साहब से ।

मुखिया ने मौका पाकर बाबू गजेन्द्र सिंह से कहा-मालिक आपका इकबाल बहुत बड़ा है । वह अपने नौकरों को भी राजा बना देता है । मैंने आपके नौकरों की खुशहाली की तमाम कहानियाँ सुनी हैं । और कहानियाँ क्या अब तो आँख से देख रहा हूं कि चार ही वर्षों में सुमेश भाई का सारा दुख-दरिद्दर छूट गया । ऋण चुका दिये, अच्छे-अच्छे दो बैल आ गये हैं, खेती अच्छी होने लगी है, मकान के लिए ईंट की तैयारी हो रही है ।' गजेन्द्र बाबू समझदार आदमी हैं । मुखिया का संकेत समझ गये । हँसकर टाल दिया । किन्तु एक सन्देह तो मन में घर कर ही बैठा । इसीलिए बहाने से हिसाब-किताब की जाँच कर ली । कहीं एक पैसे का अन्तर नहीं । उनका विश्वास नीरू की ईमानदारी के प्रति और पक्का हो गया ।

नीरू लगान वसूल कर रहा था। बहुत खोज करने पर आज एक महीने बाद रमधनिया पासी पकड़ में आया था। नीरू गालियों में बरस पड़ा। भद्दी-भद्दी गालियां देने के पश्चात् पूछा—'क्यों रे कमीने, लगान लाया है?'

रमधनिया ने गिड़गिड़ा कर कहा, 'नहीं'। नीरू ने उसे खीचकर दो चपत लगा दिये। 'हरामी एक महीने बाद पकड़ में आया भी तो नहीं कहता है? बना साले को मुर्गा।'

रमधनिया मुर्गा बनाया गया। धूप में मुर्गा बनकर वह थरथर काँप रहा था।

गजेन्द्र बाबू उधर से हाथ में गुलाब का फूल लिए निकले। मुसकरा कर इस दृश्य को देखा। पूछा—'कौन है?'

'रमधनिया है बबुआ, बड़ा हैरान किया इस बदमाश ने।'—एक सिपाही ने कहा।'

हँसकर बाबू साहब ने बात सुन ली। उन्होंने नीरू से कहा—'देखो, ये नये गुलाब के फूल हैं बहुत सुन्दर हैं। इनसे बगीचा जगमगा गया है।'

'सचमुच बहुत सुन्दर हैं बबुआ।' नीरू ने जवाब दिया।

बाबू साहब चले गये। गुलाब के फूल, नये गुलाब के फूल, मुंशी जी, झिंगुरिया चमार...नीरू के मन में दो साल पहले की घटनाएँ कौंध गयीं—'झिंगुरिया चमार धूप में खड़ा है. मुंशी जी गाली और मार बरसा रहे हैं, नीरू दया से घायल होकर बगीचे की ओर चला गया है जहाँ बाबू साहब गुलाब के नये पौधे रोप रहे है...हाँ आज उन्हीं पौदों का गुलाब फूला हुआ था और आज वही नीरू खुद रमधनिया पर मार बरसा रहा था। छिः, छिः नीरू अपने को धिक्कार उठा। उसने सिपाहियों से कहा—'छोड़ दो इसे।'

रमधनिया आँखों में कातरता और कृतज्ञता भरे चला गया। नीरू अपनी भींगी आँखें पोंछने के लिए अपने कमरे में चला गया। कमरा बन्द करके खाट पर लेट गया। रोया, खूब रोया। 'मैंने क्या कर दिया? कहाँ का पागल-पन मुझ पर सवार हो गया? ये गालियाँ कहाँ से फूट पड़ीं, ये हाथ क्यों उठ गये?'

उसका दिल बार-बार करुणा से काँपने लगा। उस बूढ़े किसान की करुण आकृति उसके कलेजे में हूल मारने लगी।

इस घटना को घटे दो साल हो गये। तब से उसके सामने ऐसे अनेक अवसर आये जब उसने मजबूर होकर किसानों को पीट दिया। पीटने के बाद रोया, अफसोस किया। किन्तु अब किसी गरीब की हबस सुनकर केशव की हबस उसे कम याद आती। धीरे-धीरे ऐसी घटनाओं के बारे में उसने सोचना भी बन्द कर दिया। धीरे-धीरे उसने इन परिस्थितियों से समझौता-सा कर लिया। दरबारी परिस्थिति की काली चुड़ैल ने उसे धीरे-धीरे अनजाने ही ग्रस लिया।

शाम को लेटता तो दो चार नौकर उसकी सेवा करते । दो चार दस आदमी उसका मुंह जोहा करते । सिपाहियों का हँसी-मज़ाक अब उसे बुरा नहीं लगता, बल्कि कभी-कभी उन्हें प्रोत्साहित भी करता । लक्ष्मी उसके अहं को निरन्तर दीप्त कर रही थीं ।

फिर भी चारों ओर नीरू की बड़ी तारीफ हो रही थी कि ऐसा मेहरबान तहलीलदार इस दरबार में नहीं आया था। गरीबों की दो-दो साल पुराना बकाया लगान छोड़ देते हैं, गरीबों से फर्लतियावन भी नहीं लेते हैं, मदद माँगने पर सबको कुछ न कुछ देते हैं। लगान देकर चले आओ तो रसीद घर भेज देते हैं । इतना भला आदमी तो इस दरबार में कभी कोई आया ही नहीं।

नीरू का यश बढ़ रहा था। दरबार के सिपाही भी उसे बहुत आदर और विश्वास दे रहे थे क्योंकि वह सबको किसी न किसी प्रकार संतुष्ट रखता था।

५३

माघ पुज रहा था। कछार की भूमि बहुत दिनों बाद गेहूँ जौ की अच्छी फसलों से कसमसा रही थी। दूर-दूर के सिवानों तक सरसों के उड़ते हुए रंग छाये थे। लोग उल्लास में थे कि बहुत दिनों बाद रब्बी की फसल अच्छी होने की संभावना है। उपवास पर उपवास करते हुए लोग अगोर रहे थे कि दस दिन बाद मटर कटने लायक हो जायगी फिर मटर के सत्तू और मकुनी (मोटी रोटी) से काम चलेगा।

प्रकृति में गरम-गरम साँस-सी भर रही थी। पेड़ों के पत्ते झर रहे थे। नंगी-नंगी डालियाँ सूने आसमान में उठी हुई मानों वसंत को बुला रही थीं। उजड़े-उजड़े वन-बाग हृदय में एक सूनापन भर रहे थे किन्तु यह सूनापन अपने भीतर एक नवीन सृष्टि की आकुलता छिपाये हुए था।

रह-रहकर कहीं से कोयल कूक उठती थी और हवा सनसना कर बह जाती थी।

गांवों के गरीब बच्चे गाँती बाँधे हुए पत्ते बटोरते और शाम-सुबह उन्हें जला कर जाड़ा भगाते। हृदय में आती हुई गरमी का अनुभव कर लोग कहते-कुछ दिन और काटो, अब तो गरमी आ ही गयी।

शोर हुआ—आस पास के गाँवों में चूहे गिर रहे हैं। हे राम...अब क्या होगा ?

आज दक्खिन टोला में धीमड़ पाँड़े के यहाँ चूहा गिरा है..,आज चमरौटी में गिरा है...नहीं—नहीं वह चूहा तो यों ही मरा पड़ा था, प्लेग सेग की कोई बात नहीं...नहीं भाई...इस बीमारी में अपेल नहीं करना चाहिए। जब चूहे गिर रहे हैं तो गाँव से निकल ही जाना चाहिए।

चूहे पटापट गिरने लगे। एक घर, दो घर, तीन घर, फिर सारे घर बाहर निकलने लगे। कुछ लोगों ने इस बीमारी में घर से बाहर निकलने को एक रिवाज मान कर दरवाजे पर ही डेरा-डंडा डाल दिया। लेकिन जो लोग समझदार थे उन लोगों ने गाँव से कुछ दूर बाग-बगीचों में या कुछ पकी मटर को उखाड़-पुखाड़ कर जगह बनाकर झोपड़ियाँ डाल दीं।

लोग गालियाँ बक रहे थे कि पपीहा पाँड़े गोरखपुर से प्लेग लाये हैं। गोरखपुर एक महीने से ताऊन आयी है और यह जजिमनिहा बाभन लालच के मारे घर, गोरखपुर एक किये रहता है।

चारों ओर सन्नाटा छा गया। पीली धूप में गेहूँ के फैले हुए खेत झूम रहे थे। उनकी मस्ती दोपहरी की छाती पर पता नहीं क्यों थरथराहट की रेखाएँ छोड़ जाती थी। कोयल बोलती थी, लगता था कि कोई श्मशान पर रो रहा है।

गाँव भाँय भाँय कर रहा था। रात को जलते हुए चूल्हे मरघट की बुझती हुई चिता की लपटों की तरह लगते।

× × ×

फागुन आ गया। फागुन रंग और गुलाल का फागुन...फागुन जिसमें रंग से भागे हुए राहियों की छायाओं से पगडंडियाँ लाल हो उठती हैं, आकाश फाग के गरम गरम स्वरों से ऊष्म हो जाता है; हवाएँ फूलों की महकती हुई सांसें लेकर फसलों पर खेलती हुई दिगन्त को भाग जाती हैं...हाँ फागुन आ गया...लगता था डगर डगर में शीतला माई का रथ उड़ रहा है। ताऊन मत कहो मूर्ख ! हाँ, दो अक्षर पढ़ लिये तो पलेग पलेग चिल्लाने लगे—अरे निगोड़े ! यह तो सब भगवती जी की कृपा है। जब आदमी बहुत अपेल करता है तब शीतला फूलमती अपनी सातों बहनों के साथ रथ पर सवार होकर घूमती हैं और बदमाशों को मारती हैं।

जय शीतला माई की।...

हवा जोर से बह रही है, देखो बच्चो, हवा में मत पड़ जाना। भूतों और चुड़ैलों का दल नाचता हुआ जा रहा है। भांय भांय भांय...सारा गाँव रो रहा है। वह बंसवारी...चूं चूं चरमर ची-चीं कर रही है सूनी...सूनी...हाँ वहां मत जाना, उसमें रात को चुड़ैलों का रास होता है। हाँ हाँ. रोज सुनाई देता है—किरीं रिरी किरीं रिङ रिङ रिरीं एक सारंगी बजाती है, ठिङ..ठिङ..धप्प धि धप्प धिधप्प...अहाहा क्या तबला बजता है? छम-छमा-छम, छम्मक छम्मक... खूब बढ़िया नाच होता है। भाई मैंने अपने कानों सुना है। रात को सारी की सारी चुड़ैलें और देवियाँ वहाँ इकठ्ठा होती हैं, बरम बाबा और डीह बाबा भी बड़ा मजा करते हैं, अपने-अपने जोड़ की चुन लेते हैं और उनके साथ नाचते हैं।

गाँव की गलियाँ देखते ही सन्न से जी उड़ जाता है। लगता है शैतान की आँखें झाँक रही हैं। झांय झांय झांय...वह बरगद का पेड़ हहरा रहा है।

लोग जीवित मुर्दों की तरह खेतों में जाते हैं घास उखाड़ते हैं चले आते हैं। आँखों की गुफाओं में आशंकाओं का अंधकार मंडला रहा है।

खेतों में से कुछ मटर या जौ तोड़-तोड़ कर लोग लाते हैं. मीस-मास कर उन्हें पकाते हैं और खा लेते हैं।

अरे बाप रे...अरे माई रे, कोई चिल्ला रहा है। हाँ, उसे बड़ी सी गिल्टी निकल आई है।

डाक्टर आने वाला है टीका लगाने के लिए। डाक्टर...डाक्टर...कई दिनों से उसके आने की चर्चा है कहाँ आता है? हाय भगवान यहाँ डाक्टर क्यों आयेगा? यहाँ तो आता है मालगुजारी वसूल करने के लिए कुर्क अमीन, घूस लेने के लिए थानेदार, यहाँ आती है बाढ़, आती है महामारी, आती है भूख...आती है...डाक्टर क्यों आयेगा?

'अरे बाप रे...दर्द' से चीख रहा है कोई!

काली रात...हे राम असमय बादल कहाँ से घिर आये। बादल तो ताउन का संगी साथी है...बूँदें पड़ रही हैं। आसमान का कलेजा फाड़ती हुई हरहराती हुई हवा बह गयी—गाँव की ओर से कुत्ता रो रहा है कुऊँ ऊ ऊँ उं उं उं ऊँ...कोई पक्षी दूर के पेड़ पर बैठा कब से रिरिया रहा है मुर्ओं.. मुर्ओं... आज न जाने क्या होगा? प्रलय की रात है।

चमरौटी से रोने को आवाज आ रही है, शायद कोई मर गया।... गड़ेरियों के घरों की ओर से भी हाहाकार आ रहा है शायद कोई वहाँ भी मर गया...

एक चीख उधर से भी फूट रही है शायद कोई पाँड़े मर गया है। कौन-कौन मर गये? कौन जाने? इस भयानक रात में कौन गाँव की ओर जाये? दूर-दूर तक अंधकार की गहन भींगी तहें बिछी हुई हैं जिनके नीचे सारा का सारा गाँव डरा हुआ, दुबका हुआ पड़ा है जैसे किसी अंधेरी गुफा में कोई घायल भालू हो।...चीखें बढ़ती जा रही हैं कुत्ता रो रहा है...कु ऊं उं उं उं उं ऊं...

५४

लगातार बदली हुई है, वातावरण में एक मितली सी भर गई है उपवास... सर्दी...गिल्टी...चारों ओर मरघट का सन्नाटा छाया हुआ है। रह-रहकर रोगियों के कराहने की आवाज रात के सुनसान को गहन बना रही है।

बैजू बीमार है—शायद डर गया है। लोग कहते हैं कि वह परसों की रात गाँव में चोरी करने गया था वहीं डर गया। बैजू बीमार है...कराह रहा है। उसकी बगल में एक नारी बैठी-बैठी उसकी गिल्टी सेंक रही है। कौन है वह ? गेंदा ? नहीं वह तो देवर के आग्रह पर ससुराल चली गयी है। माँ ? नहीं वह तो कब की मर चुकी है। कोई पड़ोसिन ? ना, कोई पड़ोसिन इस आफत में क्यों इसके पास आयेगी ? पड़ोसी-पड़ोसिन तो शादी-विवाह, भोज-भाज के अवसर पर आते हैं। तक कौन है यह ? यह है बिंदिया चमाइन। हाँ, वहीं तो है, पहचान में नहीं आ रही है। बड़ी दुबली हो गयी है, जवानी ढीली हो गयी है...वह भूख-प्यास की परवाह न करके बैजू की छाया की तरह उससे लिपटी हुई है। पड़ोसी गालियाँ बकते हैं। साला चमाइन को घर में रखे हुए है, सारा महल्ला अपवित्र हो जा रहा है। भला शीतला माई कोप क्यों न करें ?

पपीहा पाँड़े गोरखपुर से आये हुए हैं। गाँव-बाहर एक किये हुए हैं। 'अरे भाई पपीहा ! क्यों अपेल कर रहे हो, कहीं काली माई के चक्कर में पड़ जाओगे तो बुरा हो जायगा।'

'क्या बकते हो भाई, काली साली माई हमारा ठेंगा चाट लेंगी। हम इतने डरपोक नहीं है।'

'अरे भाई, कुछ तो ख्याल करो। देवी-देवता से खेलवाड़ अच्छा नहीं है... हाँ...'

पपीहा पाँड़े बीमार पड़े हुए हैं कराह रहे हैं...

'देखा उन्होंने काली माई को गाली बकी थी—काली माई ले बैठीं।

पपीहा पाँड़े कराह रहे हैं...छेदी गोरखपुर संस्कृत पढ़ रहा है। हाँ, उसका गवना पाँच साल बाद पर साल हो गया है। उसकी बीबी आ गयी है, वह अभी शरमीली दुल्हन है. श्वसुर के पास कैसे जायें ? पपीहा की स्त्री शुरू से ही घर घुमनी है, इस मुसीबत में भी वह चार घर घूम आती है। आकर पति को पानी-कानो पूछ लेती है, फिर इधर-उधर निकल जाती है।

रात को पपीहा चिल्ला रहे हैं—अरे माई रे मरा । उनकी बेहोशी बढ़ रही है । बर्राते हैं-अरे कोई सुनता नहीं, कमाई खाने को सभी हैं।

'कमाई खिलाते हो तो क्या करूँ ? मैं कोई भगवान हूँ कि पीर हर लूं । तुम्हारे चिल्लाने के मारे तो मैं आजिज आ गयी ।' पपीहा की स्त्री भुन-भुनाती है ।

पपीहा पाँड़े बेहोश हो रहे हैं, बैजू होश में आ रहा है ।

रात बढ़ रही है, बादल गहरा रहे हैं, पानी धीरे-धीरे बरस रहा है।

पपीहा के घर से जोर से रोने की आवाज उठती है । पास पड़ोस के लोग बुदबुदाते हैं-लगता है पपीहा मर गये ।...

बैजू होश में आ गया है, बिंदिया अचेत हो रही है। बैजू की आँखें खुल रही हैं, बिंदिया की आँखें बन्द हो रही हैं...बैजू पूछता है...बिंदिया...! बिंदिया के ओंठ जकड़ गये हैं, आँखें उलट गयी हैं, उसकी जाँघ में एक बड़े ढेले के समान गिलटी निकली हुई है, बैजू अपनी गिलटी पर हाथ फेरता है—नहीं है उसकी गिलटी । हाँ उसकी गिलटी, हाँ उसे तो बिंदिया ने धीरे-धीरे अपने स्पर्श से खींच कर अपनी जाँघ में डाल लिया था।

पपीहा पाँड़े की स्त्री और बहू चिल्लाये जा रही हैं, पास-पड़ोस के लोग हाय-हाय कर रहे हैं ।

बैजू फटी-फटी आँखों से बिंदिया को देख रहा है। बिंदिया चली गयी-हाय चली गयी। बैजू फफक कर रो पड़ता है। उसकी आखें झर-झर बरस रही हैं।

५५

चैत चढ़ रहा है। प्लेग अभी गाँव को दबोचे हुए है। बादल कुछ खुल गये हैं इससे खेत-खलिहानों की आभा कुछ खिल गयी है। अभी-अभी परसों ही फागुन बीता है। कल वसन्तोत्सव मनाया गया। होली आयी। होली आयी तो कोरी-कोरी कैसे लौट जाये। एक बार सारी मुसीबतों को ललकार कर ढोलक के बोल गमगमा उठे। मौत की काली-काली खामोश दीवारों पर रंग के छींटे बिखर उठे। जिन्दगी के उल्लास ने भींगे दुबके हुए मनुष्यों को एकबार फिर एक समूह में बाँधकर पूरे गाँव को मुखर कर दिया। कई दिनों से दूर-दूर तक के सिवानों की भयभीत दूरियाँ गीतों के स्वर से आज जाग पड़ीं।

कल चैत चढ़ गया। लगता है अब कोई काई फटने वाली है जिसके नीचे का स्वच्छ जीवन दमकने वाला है। देवी-देवताओं की मनुहार हो रही है। सुमेश पाँड़े ऐसे मौकों पर गाँव वालों के लिए सबसे बड़े सक्रिय व्यक्ति जान पड़ते (गोकि घर वालों की निगाह में बहुत बड़े निठल्लू थे)। उन्होंने महीना भर सनाथों और अनाथों के घरों के मुर्दों को मरघट तक पहुँचाया। जहाँ कोई नहीं पहुँचता वहाँ सुमेश पाँड़े पहुँच जाते, क्योंकि सुमेश पाँड़े स्वभाव से ही परोपकारी थे, दूसरी बात यह थी कि उन्हें भगवती का वर प्राप्त था। वे अपने जीवन की अनेक कथाओं के साथ यह कथा भी बड़े चाव से सुनाते हैं—

जब वे सोलह सत्रह साल के थे तो उनके इसी गाँव में ताउन आयी थी, उन्हें गिलटी निकल आयी। नहीं नहीं, शीतला देवी ने उन्हें पकड़ लिया था। उनकी माँ ने बड़ी आरजू मिन्नत की, पूजापाठ माना। मगर कुछ भी नहीं हुआ।

एक रात वे क्या देखते हैं कि शीतला देवी अपनी छवों बहनों के साथ तथा अनेक और देवियों के साथ गाती-बजाती हुई इधर से गुजरीं। सुमेश पाँड़े तो भौचक्के के समान देखते रह गये।

वे सब की सब प्यासी थीं। उसी सामने वाले कुएं पर चढ़कर सब पानी भरने लगीं और किलकारी भर-भर कर पीने लगीं (हाँ हाँ झूठ नहीं कह रहे हैं, सुबह के समय गाँव वालों ने देखा था कि कुएँ के पास तमाम कीचड़ फैला हुआ है जैसे किसी हाथी ने यहाँ से वहाँ तक मंड़िया मारा हो) पानी पीने के बाद सबकी सब पाँड़े के घर की ओर आने लगीं। झोंक में पाँड़े पड़ गये। बड़ी बहन ने क्रोध में आकर अपने से दूतों से कहा—इसे पकड़ कर

अपने देश ले चलो । उसी समय एक शुभ्र वसन-धारी दूसरी स्त्री शीतला फूलमती के सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी। उसने कहा—दीदी, इन्हें छोड़ दीजिए इनका अपराध क्षमा हो । 'सुमेश पांड़े ने बड़े आश्चर्य से देखा-वह स्त्री कोई और नहीं थी वरन् उनकी स्वर्गीया पत्नी थी जो इसी बीमारी से मर कर स्वयं देवी स्वरूप हो गयी थी ।

'कौन है यह ?' देवी ने पूछा ।

'ये मेरे वे हैं।' कहकर वह स्त्री मुसकराई। शीतला देवी अपनी और बहनों के साथ मुसकरा पड़ीं।' 'एवमस्तु जा रे छोकरे तुझे मेरा आशीर्वाद प्राप्त है तुझे सभी देवी-देवता प्यार करेंगे।'

तभी से सुमेश पाँड़े को ताउन, हैजा और चेचक से कोई डर नहीं लगता । वे देवी-देवताओं के लाड़ले हैं । उनके सिर सारे देवता आते हैं। वे आविष्ट होकर अभुवा रहे हैं...'बरम बाबा हैं' 'दोहाई बरम बाबा की, अब इस गाँव की रक्षा कीजिए' पास पड़ोस के लोग घिघिया रहे हैं।

'डीह बाबा हैं' 'दोहाई डीह राजा की।'

'सुअरी क छौना-छौना लेंगे. . .लेंगे...

'दोहाई राजा के ! दिया जायगा।'

'शीतला फूलमती हैं. . .'

'दोहाई आदि शक्ति क। गाँव आपकी शरण है. . .'

'हं हं पूजा दे, पूजा दे, बड़ी प्यास लगी है रे, अब आदमी के खून से प्या... नहीं बुझाऊँगी धार कपूर दे धार कपूर. . .'

'दिया जायगा महारानी जी. . .'

देवताओं की पूजा हो रही है. . .रात. . .रात. . .फैली हुई रात. . .बड़े-बड़े मशाल जलाकर गाँव वाले गाँव के चारों ओर परिक्रमा कर रहे हैं। जय. . . जय...जय डीह राजा की जय. . .काली माई की जय. . .बरम बाबा की जय. . . पानी की भाँति दिग्-दिगन्त तक अंधकार हिल रहा है। धार. . .कपूर. . .जय—जय कार...मशाल, मानों जमे हुए जीवन के सन्नाटे को चीर-चीर कर आने वाले कल को बुला रहा है। जन-समूह के आगे-आगे सुमेश पाँड़े तीन अन्य सोखों के साथ नाच कूद रहे हैं। जा रही है शीतला फूलमती की सवारी इस गाँव से, जा रही है। कहाँ जा रही है ? कौन कह सकता है ?

५६

नीरू लगभग २३ वर्ष का हो रहा था अब भी वह क्वाँरा था। शादियाँ आती थीं चली जाती थीं। शादियाँ क्यों नहीं आतीं? नीरू का मकान बन रहा था। कुछ खेत हो गये थे, बैल हो गये थे। वह एक जमींदार के यहाँ नौकर था, भला शादी क्यों नहीं आती? नीरू शादियाँ टाल देता। उसके मन में अब भी एक उम्मीद संध्या का नाम सँजोये हुए थी। संध्या में उसमें अब क्या तुलना है? संध्या बी० ए० कर रही थी। शहर की दुनिया देख रही थी। उसके सामने अनेक रंगीन चित्र खुल रहे थे। इधर उससे कभी मुलाकात हो गयी तो हो गयी नहीं तो कोई विशेष सम्पर्क नहीं था। कोई पत्र-व्यवहार भी नहीं रह गया था। फिर भी न जाने किस विश्वास पर नीरू का मन संध्या का नाम संजोये हुए था। उसकी माँ रो-रो कर आँखें फोड़ रही थी। पिता बकझक कर रह जाते थे। किन्तु नीरू का तर्क था कि लीला शादी के योग्य हो गयी है उसकी शादी करके ही अपनी शादी करूँगा।

लीला शादी के योग्य तो कभी की हो गयी थी। गाँव के लोग ताने भी मारने लगे थे किन्तु नीरू इन तानों की परवाह न कर लीला के लिए अच्छे घर-वर की तलाश में था। साथ ही साथ किसी वर को खरीदने के लिए अच्छे रकम का जुगाड़ भी कर रहा था।

'ना अब वह बहन की शादी करने में बहुत विवेक से काम लेगा। अपनी बड़ी बहन उमा की करुण मृत्यु अपनी आँखों के सामने देख चुका था।'

कैसी करुण मृत्यु थी उसकी... पिताजी रो रो कर कहते हैं---विदा होने के दो ही महीने बाद उमा ने छिप-छिप कर सन्देश पर सन्देश भिजवाये थे... 'बाबू आकर हमें घर ले चलो।' पिता जी रो रो कर कहते हैं कि वे गये तो उमा की हालत देखकर मूर्च्छित हो गये। उमा पाँव पकड़ कर भेंटने लगी, तो भेंटती ही रही। घंटा भर तक पाँव छोड़ा ही नहीं। पिता जी कहते हैं कि सास बड़बड़ाने लगी---'मैया री मैया ई बहुरिया का तो देखो, कैसा कारन कइ कइ के रो रही है जैसे उसे दागा गया है।' पिता जी खून का घूंट पीकर रह गये।

उमा ने घंटा भर बाद पिता जी का पाँव छोड़ा तो घंटा भर यों फफकती रही। पिता जी झर-झर रो रहे थे---उनकी छाती फट रही थी। उमा बीमार थी तिसपर रोये जा रही थी पिता जी देख रहे थे---इसे किस चुड़ैल ने सोख लिया है।

पिता जी दो घंटे तक सुनते रहे उमा की हृदय विदारक कहानी। पिता जी ने कहा—बेटी धीरज धरो—जल्दी बुला लूँगा।

पिता जी कहते हैं—उमा का बीमार शरीर कसाई के घर में पड़ी गाय की तरह हलहल काँप रहा था, वह जोर से फफक पड़ी—आप नहीं ले चलेंगे तो मैं डूब मरूँगी।

पिता जी ने उमा के ससुर से कहा, किन्तु वे लोग विदा करने को तैयार नहीं थे। पिता जी अड़ गये—आपको विदा करना ही होगा। कैसे नहीं विदा करेंगे आप ? मेरी बेटी को खा गये, अब क्या इरादा है ?' पर-पट्टीदारी के लोगों ने समझाया तो उमा विदा की गयी।

उमा ससुराल से आ रही है बालक नीरू खुशी में फूला हुआ था। उसके लिए सौगात लाती होगी। माँ ने सुना उमा आ रही है—रोना शुरू कर दिया। उमा डोली पर से उतरी तो दहाड़ मार कर माँ की छाती पर टूट पड़ी—जैसे कसाई के हाथ में पड़ी हुई बछिया भाग कर अपनी मां के ऊपर टूट पड़े। गाँव की लड़कियाँ उमा की दशा देख कर रोये जा रही थीं।

उमा बीमार थी। उसे न जाने क्या-क्या हो गया था कौन जाने ? सूख कर काँटा हो गयी थी। नीरू बच्चा था लेकिन बातें तो समझता ही था। माँ के पास बैठा-बैठा उमा की कहानी सुनता था।

मां उमा के बालमें कंघी कर तेल डाल रही थी। रोती-रोती पूछ रही थी—'क्यों री बेटी ! कभी तेल बोल नहीं पड़ता था। हाय-हाय बालों में जूँ भर गये हैं, रूसी भरी हुई है, चमड़े में पपड़ी पड़ गयी है, बाल उलझ कर नारियल की जटा की तरह हो गये हैं।' माँ की आंखों से गंगा-जमुना की धारा बह रही थी।

उमा रो-रो कर कहती थी (यद्यपि उसमें अब रोने की भी शक्ति नहीं रह गयी थी) 'माई रे ! क्या बताऊँ, सास नहीं कसाई है। जब से गयी तब से बालों में तेल नहीं पड़ा, तेल माँगने पर मार पड़ी, कंघी माँगने पर पीढ़ा मिला। माई रे ! जितनी बार पेशाब करने गयी, नहलाई गयी—रात हो या दिन, जाड़ा हो या पाला। उनके घर में अन्न की कमी नहीं है लेकिन मेरे लिए रोटी शायद ही बचती थी यद्यपि बनाने वाली मैं ही थी। गौने में जाने के बाद ही सास ने चूल्हा चक्की सब थमा दिया और कोल्हू के बैल की तरह दिन भर पेरती थी। बार-बार नहाने से, दिन भर पिसने से और भर पेट दाना न मिलने से मैं देह संभाल न सकी—बीमार पड़ गयी। सास ने कहा-नकल कर रही है। और माई रे ! वह हत्यारिन मुझे रोज-रोज मार-मार कर काम कराने लगी। मैं घुटनों के बल सरक-सरक कर बड़ा आँगन बुहारती तो पीठ पर एक लात मार कर कहती कि हरजाई ! सरक-सरक कर आँगन बुहारती है, कला करती है सौत मेरी !'

उमा शून्य आँखों से माँ को देखती थी (उसके आँसू सूख गये थे)। वह कहती थी—माई रे, ऊपर से ससुर भी गालियां बकता, वे तो मुझे कुछ नहीं कहते लेकिन माँ-बाप का कभी विरोध नहीं करते। माई रे, मैं बीमार होती गयी लेकिन वह चुड़ैल मुझे घसीट कर चक्की के पास ले जा कर पटक देती, कहती पाँड़े की नानी पीस आटा। पीसेगी नहीं तो शाम को चार सेर मटकायेगी कैसे? मैं निर्जीव हाथों में चक्की का जुआ उलझा कर धीरे-धीरे खींचने का प्रयास करती। लेकिन दम हो तब तो चले। वह कसाइन आकर मेरा माथा चक्की पर पटक देती। मैं कातर आँखों से उसकी ओर देखती तो पीठ पर चार लात जमा कर मेरा सात पुश्त बखानने लगती।

उमा कहती थी—माई रे जब मैं एक दम अल्लर-बिल्लर हो गयी तो उसकी गाली-मार की परवाह किए बिना अपने गन्दे घर में गन्दी गुदड़ी पर लेटी रहती। वह दिन भर गालियाँ बकती बाबू का नाम ले-लेकर, और आते-जाते पैरों से ठोंक जाती। मेरे मन में कई बार आया कि जहर खा लूँ। लेकिन जहर भी कहाँ मिले? मन में आया—कुएँ में कूद मरूँ, लेकिन एक बार तुम्हें देखकर और तुमसे दिल का दर्द कह कर तुम्हारी गोदी में मरने की इच्छा से तड़प उठी। गाँव के लोगों से वे सब मिलने नहीं देते थे, आखिर छिप-छिप कर सनेस भेजवाया। बाबू न आये होते तो अब तक कहीं बूड़ कर मर गयी होती। आते वक्त जब मैंने घसिट-घसिट कर डोली में पाँव रखा तो चुड़ैल सास ने कहा—जा, जाता होइहऽ बहुरता मत होइहऽ (अब लौट कर मत आना सदा के लिए चली जाना)..

माँ की छाती फट रही थी, रो रही थी। उसने उमा को जोर से छाती में भींच कर उसकी सास को न जाने क्या-क्या कहा था? दर्द और क्रोध से माँ पागल हो रही थी।

माँ कहती हैं वे उसे चार साल की बच्ची की तरह गोद में चिपका कर सोतीं, वे अपना सारा प्यार पिलाकर मानो उमा को बचा लेना चाहती थीं...उमा फिर प्यार की दुनिया में आ गयी थी माँ, भाई, सखी, सहेलियों के स्नेह ने उमा की जलती और चुकती बाती को एक-बार दीप्त कर दिया। और एक सुबह जब उठा तो सुना माँ चिग्घाड़ कर रो रही थी, घर के और लोग भी चीत्कार कर रहे थे। उमा दरवाजे पर सफेद चादर से ढकी हुई पड़ी थी...

लोग कह रहे थे—उमा को ससुराल आदमी भेज कर इसके पति को बुलाओ।

माँ मना कर रही थी—'ना ना, कोई मत जाना उस राक्षस के यहाँ, उमा मरते वक्त रो-रो कर एक विनती कर गयी है मुझसे...'माई रे, मेरे मरने की

खबर उस कसाई के घर मत भेजना'...खबरदार कोई मत जाना...बछिया रे...'माँ चिल्ला रही थी।

नीरू के सामने इतने दिनों बाद भी उमा के जीवन की घटनाएँ ताजी हैं। जब कभी लीला के विवाह की बात उठती है तभी उमा की करुण मृत्यु उसकी आँखों के सामने घिर जाती है।

इसीलिए वह लीला के लिए अच्छा घर-वर खोज रहा था ताकि उमा की कहानी की पुनरावृत्ति न हो।

५७

लीला की शादी हो गयी। एक अच्छा घर-वर उसे मिल गया। नीरू का मकान लगभग बन गया था। केशव मैट्रिक में फर्स्ट पास हुआ तो नीरू ने उसे बड़े प्यार से विश्वविद्यालय पढ़ने के लिए भेज दिया। केशव तेज लड़का है, घर का नाम रौशन करेगा। वह साहित्यकार भी है। नीरू केशव की आत्मा में अपनी आत्मा को ढाल देता। उसे लगता कि केशव के रूप में वह स्वयं ही अभी पढ़ रहा है। उसकी दबी हुई भावना केशव की प्यारी-प्यारी कविताओं के रूप में फूट रही है। उसने किसी भी मूल्य पर केशव की पढ़ाई का निर्वाह करने की ठान ली।

अब वह चारों ओर से निश्चिन्त होकर कमा रहा था। उसकी आमदनी बढ़ने लगी थी। किन्तु जब कभी वह एकान्त क्षणों में अपनी आत्मा से बात-चीत करता तो एक दर्द से कराह उठता। आह! वह कहाँ से कहाँ चला आया और उसे पता भी नहीं चला। अब तो मानो यही उसकी स्वाभाविक जिन्दगी हो गयी है। वह किसानों से बेगार लेने लगा। किन्तु उसकी बेगार में क्रूरता नहीं थी, उसने किसानों को अपने व्यवहार से जीत लिया था और बदले में खाने-पीने की व्यवस्था जरूर कर देता था। अतः बेगार करने वाले भूखे किसान उसका काम बड़े शौक से करते थे। हाँ, लगान वसूल करते समय कभी-कभी ऐसी सख्ती करता कि बाद में उसे स्वयं पश्चाताप होता। कभी-कभी रास्ता चलते वक्त बेअदब किसानों को भी या कोई बात न मानने वालों को सिपाहियों से पिटवा कर अपने नव विकसित अहं की तुष्टि करता। लोग उसे बड़ा जबर-जंग और शानदार आदमी मानते थे। चर्चा थी कि गजेन्द्र बाबू के साथ ही साथ उनके कारिन्दे, नौकर-चाकर, हाथी घोड़े, गाय-बैल, कुत्ते-बिल्ली सभी रोबदार हैं और किसी की शान नहीं बर्दाश्त करते। गजेन्द्र बाबू खर्चवाह हैं वैसे ही नीरू बाबा भी खर्च करते हैं। राजा आदमी हैं।

चार-पाँच किसान धूप में मुर्गा बनाये गये हैं। कई साल की लगान बाकी है। गरीब सूरत किसान पसीने से नहाकर धूप में काँप रहे हैं। 'मारो सालों को' नीरू रह रहकर चिल्ला उठता है।

नीरू के घर से अभी-अभी एक चिट्ठी आयी है केशव की। उसने गाँव का हालचाल लिखा है। पढ़ते-पढ़ते नीरू सन्न रह जाता है। वह चारपाई पर पड़े-पड़े लेट जाता है।

'क्या है बबुआ ?' 'क्या है बाबा ?' कहते हुए सिपाही घिर आते हैं।

'कुछ नहीं, नीरू कुछ मुसकरा कर कहता है फिर उसका मुंह उतर जाता है। फिर संभल कर कहता है---कुछ नहीं, कुछ नहीं, तुम लोग मेरा सर मत खाओ, जाओ अपना काम करो। थोड़ा सा माथा दुखने लगा है। और कुछ नहीं।'

नीरू ने इन किसानों को देखा। उसके दिल में जैसे इन निरीह चेहरों ने दर्द की कील गाड़ दी हो। वह उनके दर्द से तड़पने लगा।

'छोड़ दो इन किसानों को।' उसने अकस्मात् कहा।

'क्यों बाबा ? अरे इस घमड़िया ने बड़ा परेशान किया है बाबा।' एक सिपाही ने कहा।

'क्यों ? तुम्हारा सिर। मैं कहता हूं छोड़ दो इन्हें, तुम कौन होते हो जवाब सवाल करने वाले।' नीरू ने तड़प कर कहा। वह उठकर खड़ा हो गया। किसानों की ओर देखकर कहा---'जाओ, जाओ, घर जाओ, तुम्हारे बाल-बच्चे तुम्हारा इन्तजार करते होंगे, जब लगान जुट जाय तो आकर दे जाना।'

'इतना कह कर वह अपने कमरे में चला गया। कमरा बन्द करके फिर पत्र पढ़ने लगा। बार-बार एक वाक्य पर उसकी निगाह अटक रही थी---'संध्या की शादी हो रही है।'

'कब हो रही है, किससे हो रही है, कहाँ हो रही है, कहाँ हो रही है, क्यों हो रही है ?' आदि अनेक सवाल उसके दिल का मंथन करने लगे, पर कोई जबाब नहीं था। उसने चिट्ठी फेंक दी। यह अहमक केशव इन्टर में गया लेकिन उसे अभी पत्र नहीं लिखने आया। अधूरा पत्र लिखता है। क्यों नहीं लिखा कि शादी कहाँ हो रही है, किससे हो रही है, क्यों हो रही है ?

'क्यों हो रही है ?' उसे अपने ही प्रश्न पर हँसी आ गयी। 'क्यों हो रही है' का जवाब बेचारा केशव कैसे दे सकता है ? उसे क्या मालूम कि मैं संध्या के क्यों, कहाँ, किससे से इतना सम्बद्ध हूँ। उसने चिठ्ठी उठाकर पाकेट में रख ली। शाम तक सोया रहा। शाम को उठा तो तबियत कुछ हलकी थी। किन्तु जी नहीं लग रहा था।

बड़ी मुश्किल से गजेन्द्र बाबू से छुट्टी मांग कर शाम की ट्रेन से घर के लिए रवाना हो गया।

५८

नीरू अप्रत्याशित रूप से घर पहुँचा तो किसी को आश्चर्य नहीं हुआ बल्कि खुशी ही हुई। कितने दिन पर तो घर आया है। नीरू घर पहुँचा तो शाम हो रही थी। उसके मकान में काम करने वाले मजदूर घर जाने की तैयारी में थे। नीरू ने घूमकर पहले घर देखा, सारी बातों का पिता से जवाब तलब किया। काम की ढिलाई पर पिता से सवाल पूछा। पिता झल्लाकर बड़बड़ाये—'मैं क्या करूँ? ससुरे ये काम करने वाले एक दिन आते हैं तो दो दिन नहीं आते हैं।' नीरू ने कहा—'मैं सब जानता हूँ। कभी बजार करने के लिए, कभी मेला घूमने के लिए, कभी जवार का चक्कर काटने के लिए खुद ही मजूरों को आने से मना कर दिया जाता है।' फिर पिता-पुत्र में कहा सुनी हुई और सुमेश पाँड़े गला फाड़-फाड़ कर घिघियाते रहे।

नहाने धोने के बाद नीरू का चित्त शान्त हुआ। केशव विश्वविद्यालय से छुट्टियों में घर आया हुआ था। उससे नीरू ने प्यार से बातें की, उसकी सारी पढ़ाई-लिखाई के बारे में पूछा। माँ से घर का हालचाल पूछा। वह बैठ कर एक पुरानी कविता गुनगुनाने लगा।

माँ ने कहा—'संध्या का विवाह हो रहा है न!' नीरू उद्विग्न हो गया। उसकी हिम्मत नहीं हुई कि पूछे कब और कहाँ हो रहा है। लेकिन माँ ने ही कहना शुरू किया—आज से आठवें दिन उसका विवाह है। लड़का एम० ए० पास है, शायद कोई अफसर भी है। बस्ती जिले का रहने वाला है, अच्छी भली जाति का है और क्या चाहिए?

नीरू सुन रहा था चुपचाप, स्तब्ध। माँ चुप हो गयी थी। एक असह्य चुप्पी को भंग करती हुई बोली—'बेटा! कब तक कुँवारे रहोगे। अरे देखते नहीं हम लोग अब कगार पर के पेड़ हैं, पता नहीं कब कटकर नदी में गिर पड़ें। गिरने के पहले बहू का मुँह तो देख लेते।' माँ की आँखों में आँसू भर आये।

नीरू चुप रहा जैसे जड़ हो गया हो। कहीं विवाह का गीत उड़ा जा रहा था। नीरू का मन-पंछी गीतों के प्रवाह में अपने पंख उलटा कर लड़खड़ा रहा था।

'बेटा तू बोलता क्यों नहीं है ? देख, तेरी बचपन की दोस्त संध्या भी अब विवाहित हो जा रही है और तू और तू...'

'चाची, चाची !' जैसे वीणा के तारों से कोई झंकृति फूटी हो, एक आवाज घर में गूंज गयी।'

'कौन ? संध्या बिटिया ! आओ बेटी आओ।' मां ने पुकारा।

किन्तु माँ के पुकारने के पहले ही संध्या वहाँ आ, खड़ी हुई।

'नीरू !' नीरू को देखते ही संध्या धक्क से रह गयी। वह मूर्तिवत उन दोनों के आगे खड़ी हो गयी।

नीरू ने संध्या को एक झलक देखा-सौन्दर्य और शृंगार के वैभव से लदी जैसे कोई राजरानी खड़ी हो। बचपन की सरस, मुग्ध और भोला सौन्दर्य बिखेरने वाली संध्या नहीं थी, कालेज में नागरी शोभा से चुस्त दीख पड़ने वाली संध्या न थी वरन् अंग-अंग से सारे वातावरण में वैभव की आभा झरने वाली राजरानी संध्या थी। संध्या को वह काफी दिनों पर देख रहा था। वह अब काफी सयानी लग रही थी, उसके अंगों में काफी भराव आ गया था, उसमें भोलेपन के स्थान पर एक रोब दिखाई पड़ रहा था। सहजता के स्थान पर उसमें महिमा भर गयी थी...

'बैठ जा न बिटिया, खड़ी क्यों हो ?' माँ ने बड़े स्नेह से कहा।

तब संध्या को मालूम हुआ कि वह स्तब्ध होकर कब से खड़ी है। वह माँ के पास चारपाई पर बैठ गयी। उसकी निगाहें नीचे ही झुकी हुई थीं।

'बड़ी शरम करने लगी है बिटिया ! कितनी सुशील है कि अब अपने बचपन के साथी नीरू से भी शरम करने लगी है।' कहकर माँ हँसने लगी।

संध्या को कहीं कुछ चुभ गया। वह अपने को अजीब दलदल में फँसी हुई पा रही थी। उसे क्या पता था कि नीरू आया हुआ है ? 'चाची ! भाभी ने तुम्हें बुलाया है। तुम तो आती ही नहीं...

'ना ना बिटिया ऐसी कोई बात नहीं है, तुम्हारी शादी में मैं ना आऊँ ! इधर मेरा जी अच्छा नहीं था, कुछ खाँसी-बुखार...आज चलूंगी...अरे हाँ बिटिया देख, यह नीरू है न। बड़ा जिद्दी है, मैं कितने वर्षों से कह रही हूँ कि शादी कर ले, हम बूढ़ों का क्या ठिकाना ? आज रहें कल न रहें। लेकिन सुनता ही नहीं। शादियाँ आ आ कर लौट जाती हैं लेकिन यह एक न एक बहाना बनाकर टालता रहता है, पता नहीं किस स्वर्ग की अप्सरा के लिए रुका हुआ है।

संध्या चारपाई में धँसी जा रही थी, वह कहाँ उठकर भाग जाये। नीरू को भी संध्या की ओर देखने की हिम्मत नहीं हो रही थी।

'देख संध्या बिटिया ! नीरू तुम्हारी बहुत कद्र करता है, बहुत कद्र करता है, तुम्हारी बात मानेगा। जाते-जाते इसे समझा तो जा कि अब

यह शादी कर लें। दोनों बचपन के दोस्त हो। दोनों नातियों को एक साथ देखूँ ह...ह...ह...ह...ह...'

दोनों एक क्षण के लिए शरमा गये। संध्या क्या बोले? किस मुख से नीरू की शादी के लिए उससे कहे?

'बिटिया मैं जाती हूँ तुम्हारे घर संध्या गाने।'

'मैं भी चलती हूँ चाची।' हड़बड़ा कर उठते हुए संध्या ने कहा।

'ना ना बेटी! माँ ने संध्या को दबा कर चारपाई पर बैठाते हुए कहा—'तू इसे समझा कर आ। मेरे सामने समझाने में तुझे शरम आयेगी! न मैं ला रही हूँ।

'नहीं-नहीं चाची मैं भी चलूँगी,' कहती हुई संध्या खड़ी हो गयी किन्तु चाची चली गयी।

'बैठ जाओ संध्या! मुबारक हो यह शादी।'

संध्या कुछ नहीं बोली, सकुचा कर बैठ गयी चारपाई पर।

'संध्या अब तुम इतनी बड़ी हो गयी हो कि तुमसे बात करने में भी सहमता हूँ। तुम समझती होगी मैं तुमसे शादी के बारे में शिकवे करूँगा। क्यों करूँगा शिकवे? मैं तुम्हारे और अपने स्तरों का अन्तर पहचानता हूँ। मैं अपढ़, जमीदार का एक उजड्ड कारिन्दा, क्या मैं अपने को नहीं पहचानता? क्या तुम्हारे जैसे सुगन्ध से भीने फुल्ल कुसमित फूल को अपने रूखे-रूखे जीवन के साथ बाँधने की निर्दयता मैं कर सकता था? तुम्हें योग्य वर मिल गया है, संभ्रान्त परिवार में जा कर उसे उजागर करोगी, तुम्हारा कोमल जीवन अनुकूल वातावरण पाकर कितना सुखी होगा, यही सुख क्या मेरे लिए कम है।' कहते-कहते नीरू का गला भर आया।

संध्या, शहर के मुखर वातावरण में विकसित संध्या इस समय चुप थी। उसे कुछ कहने को शब्द ही नहीं मिल रहे थे। उसने अपराध किया है? हाँ हाँ, किया है, प्रेम किया है उसने नीरू को, विश्वास दिया है और आज दूसरे की हो रही है, दूसरे का होने का आयोजन उसने कितने दिनों से किया है, जान बूझ कर किया है। हाँ-हाँ जान बूझ कर नहीं तो और क्या? वह जानती थी कि नीरू का अविकसित जीवन उसके घर वालों को मंजूर नहीं होगा, बड़ा शोर होगा, लेकिन उसे क्या केवल इसी बात का डर था? नहीं कोई और बात थी। शहर में ज्यों-ज्यों उसकी आँखों के सामने जीवन की रंगीनी और गरिमा खुलती गयी वह उधर को अनजाने ही आकृष्ट होती गयी। आकृष्ट होती गयी तो कौन पाप किया? नहीं पाप तो नहीं किया परन्तु नीरू उसकी प्रतीक्षा में होगा सो उसका? उसका क्या? जो होगा सो देखा जायगा? और उसे एक दिन मालूम पड़ा कि उसके हृदय में एक दूसरे युवक की तसवीर अंकित हो गयी है, नीरू का चित्र धीरे-धीरे धूमिल पड़ गया है।

'क्या सोच रही हो संध्या ! यही न कि...'

'मुझे माफ करो नीरू ?' संध्या भर्राये स्वर से बोली' मुझे तुमसे हमेशा सहानुभूति रही लेकिन परिस्थितियाँ हम दोनों को ऐसे दो छोरों पर खींचती गयीं कि--कि--कि ..'

नीरू हँसा—'पगली तू समझती है कि मैं तुमसे कुछ लेन-देन की बात करने आया हूँ। सफाई की जरूरत नहीं संध्या ! मैं जानता हूँ तू केवल कोमल संवेदनों की ही बनी हुई है। संध्या ! मैं जानता हूँ तू केवल एक फूल है जिसमें केवल मँहक ही मँहक है.. मैं जानता हूँ तू किसी का जी नहीं दुखा सकती...'

नीरू का गला भर आया। गला साफ किया, फिर धीरे-धीरे बोला—'हम दोनों ने एक दूसरे को प्यार किया है, प्यार करने का अधिकार कौन छीन सकता है ? रही बात शादी-विवाह के वादों की, सो बचपन में मनुष्य बहुत से घरौंदे बनाता है, उन्हें वह कभी स्वयं बिगाड़ देता है, कभी कोई दूसरा आकर बिगाड़ देता है । वादे तो बचपन के भोलेपन के उद्‌गार थे, मासूम भूलें थीं।' नीरू फिर रुक गया। जैसे उसके इस निर्मल उद्‌गार में भी कहीं कुछ अटक रहा हो ।

'नीरू तुम महान हो, बचपन से ही मैंने तुम्हे ऐसा पाया है । तुम मुझपर फूल बरसा कर मुझे आहत मत करो । मेरी भूलों की मुझे सजा दो, सजा दो तब मुझे राहत मिलेगी । और सबसे बड़ी सजा यही है कि मुझ जैसी हीन लड़की को अपने हृदय से निकाल फेंको।'

नीरू मुसकराया, ऐसी मुस्कराहट जो व्यथा से भीगी हुई हो ।

'नीरू तुम मुझे प्यार करते हो न ! अब भी करते हो क्योंकि तुम महान हो । मेरी एक बात रख लो ।'

नीरू ने विषाद-भरी आँखों से संध्या को देखा—मानो कह रहा हो—कहो ।

'तुम शादी कर लो'—कहते-कहते संध्या की वाणी लड़खड़ा गयी ।

'हूँ बस इतना ही ! अच्छा जा-जा पगली, तू अब घर जा, तुझे देर हो रही है ।'

'पहले वचन दो नीरू ।'

'संध्या तुम सुखी रहो, दुनिया में इससे बड़ा सुख मेरे लिए और क्या हो सकता है ? मुझे अधिक न सताओ, जाओ, जाओ मुझे अपने भाग्य पर छोड़ दो, जाओ तुम सुखी रहो...'

'संध्या भय से त्रस्त सी वहाँ से उठ कर जाने लगी। फिर धीरे से मुड़ कर कहा—'तुम्हें मेरी कसम, मेरी बात याद रखना।'

नीरू बड़बड़ाता रहा...कसम...तुम्हारी कसम...इसके क्या माने ?

संध्या फिर लौट आयी। 'नीरू तुम मेरी शादी तक रुकोगे ?'

'क्यों क्या काम है ?'

'कुछ नहीं, कुछ नहीं, वैसे ही ?' आंसू भरे स्वरों से कहती हुई संध्या निकल गयी।

५६

नीरू नहीं सोच पा रहा था कि रहे कि जाय। माँ से कई बार कहा—माँ, नौकरी पर जा रहा हूँ। माँ ने कहा—'बेटा, संध्या की शादी तक तो रुक जाओ। वह तुम्हारी बचपन की दोस्त है।' नीरू रुक रुक गया। वह कुछ तै नहीं कर पा रहा था। क्यों रुके संध्या की शादी तक? क्या वह अपनी ही आँखों के आगे अपने सुन्दर सपनों की अर्थी देख पायेगा? संध्या डोली में अहकती हुई इसी दरवाजे पर से गुजर जायेगी और वह पत्थर का कलेजा थामे बैठा रह सकेगा? हो सकता है पढ़ी-लिखी है, न भी रोये। पढ़ी लिखी है किन्तु क्या घर गाँव छोड़ने की मूक व्यथा उसकी आँखों में न तड़पती होगी?

वह सोचता—अब कल ही चल दे नौकरी के लिए किन्तु न जाने कौन सी अदृश्य शक्ति उसके पैरों के आगे पूजा की मुद्रा सी विनत हो कर उसका रास्ता रोक लेती। वह दिन में कई बार खेतों का चक्कर काट आता। घर पर काम करते हुए मजदूरों से सहानुभूति से बातें कर लेता, फिर कहीं निकल जाता।

घूमते-घूमते उसी अपने पूर्व परिचित टीले की ओर निकल गया। शाम होने लगी थी। जाकर वह उसी चबूतरे पर बैठ गया जहाँ उस दिन होली को संध्या ने उसे रंग से सराबोर कर दिया था। नीरू ने देखा—वही पेड़ वही लताएँ, वही बरम बाबा, किन्तु आज सब कुछ उजाड़-उजाड़ सा लग रहा है। टीले के पास का पोखरा सूख गया था।

गरमी से उसके सूखे वक्ष में दरारें पड़ गयी थीं। नीरू देर तक उन्हें निहारता रहा। ऊपर की डाल पर जोर से एक कौवा काँय से चिल्लाया तो उसका ध्यान ऊपर की ओर गया। डाल सूख गयी थी, उसी डाल पर उस फागुन में कितने फूल लदे थे—छोटे-छोटे, मासूम-मासूम, लाल-लाल, और उन्हीं के बीच बैठ कर उस दिन कोयल कूकी थी। आज यह कौआ काँय-काँय...उफ जाने भी दो।

उसका ध्यान दूर-दूर तक फैले हुए सफेद खेतों की ओर गया। ये खेत उस दिन सुनहले गेहुओं से भरे हुए झूम-झूम कर फाग गा रहे थे आज धूल से बलबलाते हुए नीरस उजाड़ पड़े हुए हैं। किसानों ने फावड़ों से इन्हें फाड़ दिया है। पर इससे क्या हुआ? कल बादल बरसेगें तो ये खेत फिर फसलों की घटाओं से भर जायेंगे और और...उसने एक बार अपने सपनों के खेत की ओर देखा—'हुँह, अब ये क्या लहरायेंगें?'

बरम बाबा उस दिन भी थे और आज भी हैं। मेरे प्रेम के साक्षी बरम बाबा...मेरी आशाओं के मूक द्रष्टा बरम बाबा...कोई अन्तर नहीं आया इनमें...चुप हैं, हुजार चुप हैं, मेरे दर्द में कुछ भी तो नहीं बोलते ? हाँ क्यों बोलेंगे ? उस दिन भी तो इसी प्रकार चुप थे आज भी उसी प्रकार चुप हैं : आखिर क्या बोलें : बेचारे मिट्टी के ढेर।

चाँद निकल आया। आह, चाँद...इस चाँद की सफेद किरणें उस दिन फागुन के रंग से रंग गयी थीं, रंग की वर्षा जब इसी चबूतरे पर हुई थी। उसने इधर-उधर देखा कि कहीं रंग के छींटे अब तो नहीं यहाँ-वहाँ बिखरे हैं। नहीं, रंग तो क्या चिड़ियों के सफेद मल बिखरे हुए हैं। हाँ तब वह वहाँ बैठता था, साफ करता था। संध्या कभी-कभी आ कर साथ दे जाया करती थी। तब यह चबूतरा इतना साफ रहा करता था। बहुत दिनों से यहाँ कोई आया नहीं...तब तो...उसे लगा कि किसी की दो कोमल-कोमल हथेलियाँ उसकी आँखें मीच रही हैं। उसे लगा कि उसके शरीर पर कुछ मुलायम स्पर्श रेंग रहे हैं, उसे लगा कि कुछ मधुर झंकारें उसके कानों में गूंज रही हैं... ओह ! कहीं कुछ नहीं...

एक सरसराहट हुई, एक बड़ा-सा गिरगिट जोर से भागा जा रहा था।

नीरू उठा चारों ओर एक बार न जाने किस भाव से देखा, घर की ओर चलने लगा। उस पेड़ की डाली की ओर देखा जिसपर बचपन में वह ओल्हापाती खेला करता था। वह डाल वहाँ नहीं थी, न जाने किसने उसे काट लिया है, केवल एक बित्ता जड़ लूले हाथ की तरह पेड़ में चिपकी हुई है।

घर आकर धम्म से चारपाई पर लेट गया। माँ संध्या के घर सँझौती गाने गयी थी। सुमेश पाँड़े कहीं सुरती की फिराक में थे। केशव गाँव में किसी के यहाँ गया रहा होगा। अकेले नीरू चारपाई पर पड़ा-पड़ा कहीं खो रहा था।

गीत उठ रहा है-हाँ संध्या के विवाह का गीत है। नीरू का निराश मन निढाल हो गया था, कुछ सोचने से इनकार कर रहा था। वह मानो अब भी ममता की एक मनुहार की असंभव कल्पना कर उठता था। शायद कोई ऐसा दैवी चमत्कार हो जाय कि संध्या आकर कह दे नीरू, चल मैं तेरी हूँ जनम-जनम तक तेरी हूँ...

'सातवीं भँवरियाँ ए बाबा, हम नाहीं रहलीं तुहार'

नीरू सुनकर तड़प उठा। हाँ, अब वह नहीं होने को। वह अपने पागल मन को कोसने लगा कि तूने उस दिन किस शान से कहा था कि संध्या मैं तेरे योग्य नहीं, तू योग्य घर-वर पाकर सुखी है इससे बड़ा सुख मुझे क्या हो सकता है ? झूठा कहीं का...'

नहीं-नहीं, मैंने ठीक ही कहा था, वह सुखी रहे यही मेरा सुख है। अब मैं नहीं तड़पूंगा ! हाँ मैं खुश हूँ, खुश हूँ...

बहरे बवैया रोवें, भीतरा जे मैया रोवें
डोलिया क बाँस धइले भैया रोवें
बहिनी पराई भइलू।...

'आह ! संध्या जा रही है। नीरू, तुम्हारी प्यारी संध्या विदा हो रही है। पागल तू खुश है, खुश है !' 'हाँ-हाँ, खुश हूँ, खुश हूँ'—वह जा रही है उसकी आँखों से बरसात झर रही है, मत देख नीरू उधर, तेरा संयम टूट जायगा...

बाबा जे रोवेलें जूनी-जूनी
जब नहाये क जुनिया
घर में क बेटी कहाँ गइलू हो
देतू धोतिया से डोरिया
मइया जे रोवेली जूनी-जूनी
जब सूते क जुनिया
गोदिया क बेटी कहाँ गइलू हो
कइलू गोदिया तू सून
भइया जे रोवेलें जूनी-जूनी
जब कलेउवा क जुनिया
घर में क बहिनी कहाँ गइलू हो
देतू कलेउवा निकारि
भौजी जे रोवेली जूनी-जूनी
जब रसोइया क जुनिया
घर में क बहिनी कहाँ गइलू हो
देतू नुनवा से तेलवा...

चली गयी...संध्या चली गयी...सभी रो रहे हैं, आठ-आठ आँसू रो रहे हैं और अभागा नीरू ! तेरे रोने को तो किसी ने देखा ही नहीं, तेरे रोने का भी कोई मूल्य नहीं–संध्या जा रही है—नीरू जैसे तेरी आत्मा जा रही है तुझे छोड़कर—संध्या जा रही है जैसे इस गाँव की करुणा जा रही है गाँव छोड़कर। संध्या जा रही है जैसे तालाब को छोड़ कर रोता हुआ जल भागा जा रहा है...नीरू जा रही है वह। उसकी आँखों से बरसात झर रही है। तू उसका दर्द कैसे देख रहा है ? जा रही है...। नीरू को ऐसा मालूम पड़ा कि वह फफक कर रो पड़ेगा। पैरों की आहट हुई तो उसे होश आया कि वह चारपाई पर लेटा हुआ है। उसे मालूम पड़ा कि उसकी बंडी आँसू से तर-बतर हो गयी है। तौलिए से मुंह पोंछ कर करवट बदल ली...लगा जैसे सो गया है।

६०

नीरू संध्या के विवाह तक घर पर ही रह गया किन्तु इधर-उधर चक्कर काटता रहा, उसके घर या बारात में नहीं गया। आज संध्या विदा हो रही थी। नीरू अपने दरवाजे पर मन मारे हुए दातुन कर रहा था। संध्या विदा हो रही थी, नीरू को यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि संध्या भी देहाती लड़कियों की तरह हबस रही है। हाँ केवल हबस रही है फटके जोड़-जोड़ कर चिग्घाड़ नहीं रही है। वह केवल हबस रही है भइया...हो...भाभी ..हो...बाबू जी ..हो...हो... ओ...

नीरू की छाती फट रही थी। संध्या का हबसना वह सुन रहा था। हाय रे पत्थर का कलेजा, तुझे यह दिन भी देखना था...

संध्या की डोली नीरू के दरवाजे पर से गुजरने लगी---नीरू क्या करे अब? संध्या का हबसना एकदम नजदीक आ गया जैसे कान के पास से कोई साँप सरकता हुआ निकल रहा हो। नीरू ने न चाहते हुए भी डोली की ओर देखा। कँहार हुम-हुम करते हुए भागे जा रहे थे। डोली का परदा हिला, नीरू को लगा जैसे दिल पर वज्र टूट कर गिर जायगा। परदे में से दो बड़ी-बड़ी और भरी-भरी आँखों ने झांका। नीरू ने उन्हें देखा। जैसे कोई बिजली कौंध जाय वैसे ही नीरू के हृदय में एक सिहरन सनसना गयी। वे आँखें एक टक देखती रहीं, न जाने क्या-क्या भाव था उन आँखों में? क्या-क्या वेदना थी उनमें? क्या-क्या कहना था उन्हें? कौन जाने? नीरू बेचैन हो उठा। क्यों देख रही है इस तरह मुझे? इसने तो अपने मन से ही यह शादी पसन्द की है। फिर क्यों इस तरह देख रही है जैसे कोई बधिक के हाथ में पड़ी हुई मृगी हो। उसने हिम्मत से फिर आँखें उठाईं, उन आँखों में डालने के लिए किन्तु तब तक कँहार बहुत आगे बढ़ गये थे, संध्या का हबसना तेज हो गया था।

नीरू मर्माहत सा कटे वृक्ष सा खाट पर गिर गया। उधर संध्या की पालकी गाँव के बाहर उतरी। उसने गाँव की लड़कियों को एक बार फिर प्रेम से, वेदना से देखा जैसे ये चेहरे फिर न जाने कब दिखाई पड़ेंगे? लड़कियाँ हैं एक न एक दिन अपनी ससुराल चली जायेंगी और जब लौट कर आऊँगी तो पता नहीं किससे मुलाकात हो किससे न हो?

डोली उठी। संध्या ने आँखों से ही सबसे विदा ली। वह सुबक रही थी, गाँव की लड़कियाँ बिलख रही थीं, संध्या चली जा रही थी, वह देख रही थी घूम-घूम कर गाँव के मकानों को, 'उस बंसवारी को, खेतों को, पगडंडियों को, चिर परिचित बरगद के पेड़ को, पोखरे और गड्ढों को, बाग-बगीचों को, दूर-दूर के सिवानों को। आज वह इन्हें एक नयी ममता से देख रही थी जैसे न जाने कब आना हो? वह शहर में रह चुकी थी, बी० ए० पास थी, गाँव को बार-बार छोड़ा था, उसे कभी भी इस गाँव के प्रति यह खिचाव नहीं हुआ किन्तु आज वह ससुराल जा रही है इसलिए यह पीहर अपनी समस्त ममता से बेटी को विदा दे रहा है आँसू भरी आँखों से। पशु-पक्षी सभी अपनी बेटी को रो-रो कर विदा कर रहे हैं।

रास्ते में बरम बाबा का टीला पड़ा। बचपन और कैशोरावस्था की कितनी ही घड़ियाँ उसका रास्ता रोक कर खड़ी हो गयीं। इस टीले का पत्ता-पत्ता, कण-कण उसके बचपन के वैभव का साक्षी है। फागुन की मस्ती...रंग की वर्षा...हँसी की गूंज-अनुगूंज...इन पेड़ों पर ओल्हा पाती...यहीं से खड़े होकर दूर-दूर के सिवानों तक बजते हुए गेहुओं के खेत। उसे लगा जैसे अभी नीरू इस टीले के किसी कुंज से निकल कर उसका हाथ पकड़ लेगा।... डोली टीले के नीचे उतरने लगी...उसे लगा जैसे टीले पर से नीरू पुकार रहा है संध्या...संध्या...या...और इस समस्त प्रदेश में उसकी पुकार की गूँज व्याप्त हो रही है...संध्या...

'नीरू! मत पुकारो मुझे मत पुकारो मुझे। नीरू...'

घोड़े की टाप सुनाई दी, घोड़ा हिनहिनाया और संध्या का ध्यान टूट गया। नीरू झटके में हाथ से छूट कर जैसे किसी अतल खाई में गिर गया। मि० त्रिपाठी कहारों से पूछ रहे थे—'कहो भाई स्टेशन कितनी देर में पहुँचेंगे?

६१

नीरू घर पर दो चार दिन और रुक गया। यद्यपि अब उसका मन यहाँ नहीं लग रहा था लेकिन जैसे उसकी इच्छा शक्ति ही मर गई थी, माँ ने कहा बेटा दो चार दिन और रुक जाओ, रुक गया। वह एक खामोश दर्द में डूब गया था किससे कहे अपनी कथा।

एक दिन सुमेश पाँड़े के साथ बैकुंठ पाँड़े आये। नीरू की माँ से कहा—'भाभी एक बहुत अच्छी शादी आयी हुई है, नीरू के विवाह के लिए वह तैयार है कहो तो बातचीत कर ली जाय।'

नीरू की माँ ने कहा जब आपको पसन्द है तो हम लोगों को एतराज क्यों हो? भाई बन्द की राय सबसे बड़ी राय होती है। हाँ जरा नीरू से भी पूछ लीजिए।

'अरे उससे क्या पूछना?' सुमेश पाँड़े झल्लाये। 'उससे पूछते-पूछते तो इतने दिन निकल गये।'

'तो भी उससे पूछे बिना ठीक नहीं होगा अब वह कोई लड़का नहीं है।'

'हाँ भौजी, पूछ लो इसमें हर्ज ही क्या है?' संयोग से नीरू कहीं से खोया-खोया आया। बैकुंठ पाँड़े की बात की भनक उसके कान में पड़ी तो चौंक उठा। और उन लोगों के सामने खड़ा होकर मानो पूछने लगा—माजरा क्या है?

बैकुंठ पाँड़े चालाक आदमी थे उन्होंने ही बात शुरू की—'बेटा नीरू! देखो पटखौली के गुरदीन पाठक तुम्हारी शादी के लिए आये हुए हैं वे जवार के बड़े नामी आदमी हैं। खेती बारी उनकी बड़ी बढ़ चढ़कर है, तुम कहो तो शादी तै कर ली जाय।'

नीरू क्षण भर सोचता रहा, फिर बिना कुछ सोचे विचारे 'जो आपकी इच्छा' कह कर एक ओर निकल गया।

बैकुंठ पाँड़े ने रद्दा जमाया—'कितना सुशील लड़का है?'

बैकुंठ पाँड़े ने गुरदीन पाठक को समझाया बुझाया—'इतना पैसा देने की कोई आवश्यकता नहीं, ये लोग शादी के भूखे हैं यद्यपि अब ये लोग बड़े मजे में हैं। थोड़े से खर्च में काम निपट जायगा।' गुरदीन पाँड़े कंजूस आदमी थे सारा पैसा दबा लिया। शादी हो गयी।

६२

रमेश गाँव से ६ मील दूर एक प्राइमरी स्कूल में नियुक्त हो गया था। रोज सुबह को घर से स्कूल जाता, शाम को लौट आता। घर के कुछ काम-काज से निबट कर स्कूल जा रहा था—चमरौधा जूता, गाढ़े का कुरता, नागपुरी गन्दी धोती और सिर पर तेल में चिकटी हुई गाँधी टोपी। गाँव से निकला था कि कुबेर पाँड़े ने एकबार खंखार कर मुसकरा कर देखा, पूछा—'कै बजे हैं मास्टर साहब ?' रमेश कुछ नहीं बोला, जल्दी-जल्दी पाँव बढ़ाता हुआ मदरसे की ओर भागने लगा। कुबेर पाँड़े का स्वर पीछा करता हुआ सुनाई पड़ा—'हराम की कमाई खाते हैं मास्टर लोग।...'

गनपति पाँड़े (नेताजी) हुरदेख राय के यहाँ से कथा बाँच कर आ रहा था बदहवास, भागा भागा...

चिल्लाया—'रम्मू कहाँ जाते हो? करान्ती हो गयी है। गान्ही बाबा, जवाहर लाल सभी जेहलखाने में बन्द हो गये हैं। सारे मुलुक में आग लग गयी है, मैं अभी हुरदेख राय के यहाँ से छापे में देख कर आ रहा हूँ।'

रमेश ने शान्त मन से सुना, फिर मुड़ कर मदरसे की ओर चल दिया।

हरिजन नेता फेकू तिरंगा झंडा लेकर निकले थे सुराजी प्रचार करने। दोपहर को नेता कानू भगत के गाँव पहुँचना था। उन्हीं के यहाँ खाना-पीना करेंगे, कुछ सुराजी गप्प लगायेंगे और शाम को झंडा और झोली को लहराते हुए बाजार में घूमेंगे और गाँधीजी के नाम पर कोइरियों की दूकान से साग-भाजी और हलवाइयों की दूकान से गट्टा-बताशा वसूल करते हुए घर लौट आयेंगे। वे देस के लिए मरते हैं तो देस उनके लिए इतना भी नहीं करेगा। रास्ते में गनपति नेता मिल गये। वे चिल्लाये-गान्हीं जी की जै...जवाहर लाल की जै। हरिजन नेता भी उसी जोर से चिल्लाये जै...जै...जै। फिर गनपति ने क्रान्ति की बात उनसे कही। दोनों नेता फिर जयजयकार करते हुए गाँव की ओर भागे।

रग्घू बाबा अपने खेत की सीमा बढ़ाने के लिए बगल वाले खेत में बढ़कर लतिया कर नया रास्ता बना रहे थे—गनपति नेता के साथ मिल कर जयजयकार करने लगे...

सुमेस्सर बनिया सूद का हिसाब जोड़ रहे थे। गनपति की आवाज सुनकर ऊपर की ओर देखा और अनायास जय पुकार उठे, फिर जम्हाई लेते हुए कहा—

हे भगवान !' फिर सूद का हिसाब लगाने लगे। कुबेर पाँड़े घर आकर नये दारोगा जी को एक दावत देने की योजना बना रहे थे और सोच रहे थे कि कैसे शामधारी की विधवा पत्नी के खेत हथिया लिये जायँ। गनपति नेता की जयजयकार सुनकर बिल्ली की तरह बुलुर-बुलुर ताकने लगे। झुंझलाकर भुनभुनाये—'गनपतिया पगला गया है।'

छेदी छिले हुए सिर की बड़ी सी चोटी में गाँठ बाँधे दरवाजे पर मन मारे बैठा था। उसकी माँ उसकी बगल में बैठी हुई खबिला रही थी जैसे कोई बड़ी आफत सिर पर टूटी हो। 'दुबइया की नानी इतनी कुलच्छिनी होकर आयी है कि घर ही उजाड़ देगी...लड़की फिर लड़की। अरे बार-बार लड़की ही पैदा करनी थी तो कोख को जला क्यों नहीं लिया ? मेरे भाग्य फूट गये, करम जल गया कि ऐसी राक्षसिन घर में आयी।' अन्दर से छेदी की पत्नी की कराहने की आवाज आ रही थी। हाँ उसे फिर दूसरी बार बेटी पैदा हुई थी।

गनपति नेता अपने आठ-दस अनुयाइयों के साथ जयजयकार करता हुआ लहर के समान गुजरा—गाँधी की जय, जवाहरलाल की जय, भारत माता की जय..

छेदी थोड़ा सा हिला, उठा, फिर चोटी फटकार कर भीड़ में मिल गय। उसकी माँ ने भुनभुना कर कहा—आ चूल्हे भाड़ में जायँ—तुम्हारे गान्ही-जवाहर, हमारा घर तो उजड़ गया।

पूरे गाँव में जयजयकार होने लगा। आगे-आगे गनपति नेता झंडी लहराते हुए चल रहे थे, पीछे गाँव के कुछ लोग जयजयकार कर रहे थे। करान्ती हो गयी भाइयो। सारे देश में आग लग गयी है, नेता लोग जेहल खाने में ढकेल दिये गये हैं। कालिज इसकूल के लड़के अँगरेजी सरकार को तोड़ रहे हैं अब सुराज मिल कर रहेगा। गान्हीं बाबा को कौन जेहल में बाँध सकता है ? अवतारी आदमी हैं, कल ही जेहलखाने से तीस कोस दूर कहीं दिखाई पड़ेंगे। अब सुराज मिलकर रहेगा।

हरिजन नेता हरिजनों को समझा रहे थे—'भाइयो, तुम भी करान्ती करो। सुराज अब मिल ही जायेगा। तब फिर क्या पूछना—तुम्हारे पास भी खेत होंगे, मकान होंगे, तुम्हारे भी लड़के इसकूल में पढ़ने जायेंगे। हाँ, गान्हीं जी कहते हैं—सुराज मिलने पर कोई भूखा नंगा न रहेगा।'

एक बार फिर सारे गाँव मे सरगर्मी छा गयी। गाँव के बिखरे टूटे हुए लोग फिर एक बार एक धारा में मिल कर बह उठे। सुराज, गान्हीं जी, जवाहरलाल के जयजयकार से गाँव गूंज उठा—क्रांति-क्रान्ति सन् बयालिस की क्रान्ति...।

६३

सन् बयालिस की क्रान्ति, चारों ओर आग की लपटें...। 'नेता जेल में ठूंस दिये गये' सुनकर सारा देश तड़प उठा। विद्यार्थी शोलों के समान तड़प कर स्टेशन, रेल, तार, पुलिसचौकी आदि को खंडित और भस्म करने लगे। नीरू की इच्छा हुई—एक बार सारे बन्धनों को तोड़ कर इस क्रान्ति की आग में कूद पड़े। क्या रहा अब इस जीवन में ? सब कुछ टूट गया ? देश—देश सबसे बड़ी चीज है। देश की खातिर जान निछावर कर दूं, परन्तु वह जानता था कि गजेन्द्र बाबू सरकार के पिठ्ठू हैं, इनका नौकर रह कर क्रान्ति की धारा में मिलना असंभव है। उसके मन में आया नौकरी छोड़ दूं। लेकिन उसके सामने केशव की आकृति आकर खड़ी हो गयी। केशव, बेचारा केशव ! क्या होगा उसके सपनों का ! मेरे सपने तो टूटे ही, उसके भी टूट जायँ यही चाहते हो नीरू ! केशव मेरी आत्मा की परछाईं है उसकी पढ़ाई पूरी करनी है, उसके सपनों के पंख सँवारने हैं...और-और भी तो एक जिम्मेदारी पड़ गयी है,...दो काल्पनिक आँखें उसकी आँखों में उतरा गयीं। नहीं, नीरू कहीं भी तुम्हारा निस्तार नहीं है।

लेकिन नीरू का हृदय कुछ करने के लिए उछल रहा था। वह क्रान्तिकारियों के गुप्त नेता के समान था। छावनी के आस-पास के गाँवों के काँग्रेसी जानते थे कि नीरू काँग्रेसी है और बड़ी लगन तथा ईमान का आदमी है। अतः वे रात को उसके पास आये। गजेन्द्र बाबू छावनी पर नहीं थे, अतः मुक्त भाव से नीरू की कोठरी में मंत्रणा होने लगी। नीरू ने यह तै किया कि आप लोग कल स्टेशन फूंकिए। मुझे बाबू गजेन्द्र सिंह के ईमानदार नौकर की तरह स्टेशन की रक्षा करनी चाहिए, नहीं तो सरकार कल इन्हें पीस डालेगी। सो, मैं बाद में बन्दूक लिए दौड़ा हुआ आऊँगा, आप लोग तब तक भाग जाइएगा।

सबेरा होते-होते काँग्रेसियों ने स्टेशन पर धावा बोल दिया। स्टेशन के अधिकारियों ने पहले तो प्रतिवाद किया किन्तु काफी भीड़ के एकत्र हो जाने पर मौन हो गये। भीड़ ने तार काट दिये, शीशे फोड़ दिये, दस बीस आदमियों ने स्टेशन के अधिकारियों को पकड़ रखा। लोगों ने क़ागज फाड़-फाड़ कर फेंकने शुरू किये। जयजयकार के स्वर गूंजने लगे। चारों ओर तहलका मच गया। आग की लपटें उठने लगीं। स्टोर रूम पहले धूएं से गूंजा फिर भक्क-भक्क करके जल उठा।

भीड़ की दृष्टि अब स्टेशन के अधिकारियों की ओर गयी। लोगो ने उन्हें नोचना शुरू किया। तब तक नीरू अपने आठ-दस आदमियो के साथ हाथ में बन्दूक लिये हुए दौड़ा हुआ आया और चिल्लाया-खबरदार अगर किसी ने इन लोगो को मारा। बन्दूक दाग दूँगा।' पूर्व योजना के अनुसार कांग्रेसी नेता भागो-भागो कहते हुए भाग चले और जन सामान्य बन्दूक के डर से गिरता-पडता भागने लगा।

स्टेशन सुलग रहा था। स्टेशन मास्टर भय से हल-हल-हल-हल काँप रहा था। नीरू से लिपट गया। 'पंडित जी, आप न होते तो जान न बचती। बहुत शुक्रगुजार हैं हम लोग आपके।'

दौड़ने के कारण नीरू भी धीरे-धीरे हांफ रहा था। बोला—'नही स्टेशन मास्टर साहब, इसमे कोई बात नही, यह तो मेरा फर्ज था। हाँ, जनता पागल हो गयी है, आप लोग जरा सावधानी से रहें।'

स्टेशन जल रहा था। दूर-दूर तक धान के खेत लहरा रहे थे। नीरू कभी आग को, कभी कभी धान के खेतो को चीर कर जाते हुए कांग्रेसी मित्रो को देख रहा था।

६४

सरकार ने दमन शुरू कर दिया। जासूसों ने सरकार को खबर देनी आरंभ कर दी। तरह-तरह के अत्याचार होने लगे। बच्चों, औरतों और जवान पुरुषों के शरीर के साथ जितने भी अमानवीय कृत्य हो सकते थे, किये जाने लगे।

पाँड़ेपुरवा ग्राम नदियों के प्राचीरों से घिरा होने के कारण बाहर के अफसरों के आवागमन से मुक्त था किन्तु अफसरों को ऐसे मौकों पर न जाने कहाँ से इतना जन-प्रेम उमड़ पड़ता था कि वे इस कुसमय में जनता की पूछ-ताछ करने चले आते थे। सो दारोगा, दीवान, डिप्टी कलक्टर आदि के आने की सनसनी से जवार काँप रहा था। मुखिया ने गाँव और थाना एक कर दिया था। संयोग से इस साल पानी नहीं बरसा था, नदियों में पानी नहीं उमड़ा था। इसलिए आने-जाने की काफी सुविधा थी। लोग रात को सोते-सोते जाग उठते—'दारोगा जी आ रहे हैं, बड़ा जालिम है यह, सारे कांग्रेसियों का घर फूंकेगा।' किन्तु दारोगा नहीं आया।

एक दिन गाँव निश्चिन्त सो रहा था, चारो ओर घोड़ों की टाप सुनाई दी। लोग हड़बड़ा कर जाग बैठे—हे भगवान! अब क्या होगा?

दारोगा ने सिपाहियों से कड़क कर कहा—घेर लो फलां-फलां के घरों को, कोई सामान लेकर भागने न पाये और पकड़ लो इन जालिमों को.. थोड़ी देर में गनपति नेता, हरिजन, निरबल तेली आदि कई आदमियों के घर लपटों में काँपने लगे। सिपाहियों ने इन नेताओं को पकड़ कर बाँध लिया। रोना-पीटना पड़ गया। मुखिया ने दारोगा साहब को एकान्त में ले जाकर कहा—'हजूर बड़ा जालिम तो बच ही गया। उसी ने तो सारे गाँव में आग लगाई है।'

'कौन है वह?' कड़क कर दारोगा ने पूछा।'

'हजूर, सुमेश पाँड़े बड़ा नामी कांग्रेसी है और इसका लड़का निरंजन पाँड़े तो क्रांतिकारी है। इसका घर तो फूँका ही नहीं।'

'फूंक दो इसका घर।' दारोगा कड़का! दीवान ने दारोगा जी के कान से कान सटा कर कहा—'सरकार, यह वही आदमी है जिसके बारे में गजेन्द्र बाबू ने आपको तम्बीह दी थी।'

दारोगा छटक कर एक हाथ पीछे हट गया और मुखिया की पीठ पर एक जोर की धौल जमा कर बोला—'बदमाश, मुझे आफत में डालने पर तुला है ? निरंजन पाँड़े गजेन्द्र बाबू का कारिन्दा है और गजेन्द्र बाबू सरकार के हिमायती हैं। हुँह साला मुखिया बना है, मुझे चराने आया है।'

मुखिया ने चारों ओर देखा कोई नहीं है ! उसने अपमान अनुभव नहीं किया। दारोगा का चरण छूते हुए गिड़गिड़ाया—'सरकार ऐसी बात मन में न लायें ताबेदार आपका या सरकार का कभी अनभल नहीं देख सकता ! अगर इस काम में खतरा है तो मैं कभी भी सलाह नहीं दूँगा। मगर यह बात सही है कि सुमेश पाँड़े कांग्रेसी हैं।'

'हुँ, कह कर दारोगा उछल कर घोड़े पर चढ़ गया, साथ-साथ दीवान और सिपाही थे। गाँव से लपटें निकल रही थीं। लपटों के प्रकाश में कुछ घोड़ों की टपटपाहट गाँव को रौंदती रही।

× × ×

मुखिया का बेटा महेश जब कई साल तक टेन्थ में फेल हुआ तो बहेंतू हो गया। आवारों के वेश में यहाँ वहाँ घूमने लगा। एक दिन घर छोड़कर भाग गया। गाँव के लोगों ने तरह-तरह के अनुमान लगाये। किसी ने कहा कि वह कलकत्ते भाग गया अपने काने चाचा के यहाँ। किसी ने कहा कि वह दरभंगा की रासमंडली में भरती हो गया। किसी ने कहा—वह फौज में भरती हो गया है। और जब काफी दिनों तक उसकी कोई खबर नहीं मिली तो मुखिया परिवार रो धोकर चुप हो गया और गाँव वालों ने भी कल्पनाएँ करनी छोड़ दीं। उसकी पत्नी अब भी रो धोकर दिन काट रही थी।

बहुत दिनों तक महेश इधर-उधर घूमता रहा। एक दिन वह शाम को बस्ती शहर से बाहर किसी एकान्त में चला जा रहा था। उसके आगे थोड़ी दूर पर एक जटा बढ़ाये हुए सन्यासी चारों ओर देखता हुआ चला जा रहा था। सहसा किसी पेड़ की डाल पर से एक आदमी बिजली की तीव्रता से उतरा और उस सन्यासी के पीछे मस्तक पर पिस्तौल भिड़ा दी—खबरदार जो आगे बढ़े।

सन्यासी गिड़गिड़ाया—'बेटा मेरे पास कुछ भी नहीं है, सन्यासी आदमी हूँ, आशीर्वाद के अलावा हम क्या दे सकते हैं ?'

'तुम दे तो नहीं सकते मगर ले तो बहुत कुछ सकते हो। मुझे चरका पढ़ाने आये हो' आज तुम्हारी अन्तिम घड़ी है।'

'बेटा अगर सन्यासी को मारकर तुम्हें सुख मिलता हो तो मार लो मगर सिवा नरक के तुम्हें क्या हासिल होगा ?'

वह पिस्तौल वाला युवक ठठा कर हँसा—खूब, क्या खूब ? सौ-सौ चूहा खाय के बिलाय चली हज को...

वह और कुछ कहने ही वाला था कि महेश ने पीछे से धीरे से आकर उसका पिस्तौल वाला हाथ पकड़ लिया। महेश ने समझा कि यह कोई डाकू है जो ऋषि को मार रहा है। उसने सोचा क्यों न इस डाकू का सामना कर ऋषि से कोई बड़ा वरदान प्राप्त करूँ ?

महेश ने उस युवक का हाथ थाम लिया और झटके से एक धक्का मार कर उसकी पिस्तौल गिरा दी। युवक रोष से पागल हो गया। महेश उसको पकड़े था, सन्यासी संभल गया था। उसने लपक कर पिस्तौल उठा ली। जब सन्यासी पिस्तौल लेने को लपका तभी विद्युत् वेग से उस मंजे हुए खेलाड़ी ने महेश को धोबियापाट मार कर पटक दिया और भाग कर झाड़ियों में छिपता हुआ लापता हो गया। सन्यासी चाहता तो गोली का निशाना लगा सकता था किन्तु एक अजनबी के सामने रहस्य खुल जाने के भय से केवल हँसता रहा—'दुनिया कैसी पागल हो गयी है ? सन्यासियों का झोला तक छीन लेने पर उतारू है।'

महेश चुपचाप सन्यासी को देखता रहा। मानो अपनी बहादुरी का पुरस्कार माँग रहा हो।

सन्यासी ने कहा—'चलो बेटा, बस्ती लौट चलें। यद्यपि हम सन्यासियों को इन डाकुओं से क्या लेना देना किन्तु बस्ती में एक काम है, याद पड़ गया।

दोनों लौट चले। सन्यासी ने पूछा—'कहाँ के रहने वाले हो बेटा ?'

'गोरखपुर के एक देहात का।'

'यहाँ नौकरी करते हो ?'

'जी नहीं मारा मारा फिरता हूँ, नौकरी मिलती ही नहीं और गाँव पर खेती बारी कराना मुझे अच्छा नहीं लगता।'

संन्यासी हँसा—'ठीक कहते हो बेटा। आज कल के जवानों को देहात नहीं भाता। अच्छा तुम कोई नौकरी करना चाहते हो ? कई बड़े-बड़े अफसर मेरे शिष्य हैं किसी के पास पत्र लिख दूँगा, तुम्हें शायद कोई नौकरी मिल जाये।'

'जी बहुत एहसान मन्द रहूँगा।'

सन्यासी ने सड़क के लैंप की रोशनी में बैठकर मि० सिंह के नाम दो लाइन का पत्र लिखा और कहा—कल उनसे सुबह आठ बजे मिलना। मैं जाता हूँ अपनी कुटी की ओर।

'जी स्वामी जी बहुत दया की आपने मुझ पर।' महेश ने झुक कर स्वामी जी के चरण चूम लिए।

दूसरे दिन सुबह आठ बजे महेश मि० सिंह के यहाँ खोजता-खाजता पहुँचा। मि० सिंह का बंगला देख कर झिझका। ऐसी शानदार इमारत में पैठने की हिम्मत न हुई। वह अहाते में डरते-डरते प्रविष्ट हुआ कि दो अल्सेसियन कुत्तों ने भूँक कर उसका पीछा किया। महेश जी छोड़ कर भागा किन्तु चपरासी

ने पुचकार कर कुत्तों को बुला लिया जो अब भी गुर्रा रहे थे। चपरासी ने महेश से पूछा—'किससे काम है।'

'मु...मु...मु-झे सि...सिंह जी से'

'अच्छा आइए मेरे साथ।'

महेश को एक कमरे के द्वार पर ले जाकर चिक उठा दिया। सिंह जी बहुत रोबीले चेहरे के आदमी थे। भरी-भरी देह भरी-भरी आंखें, सिर पर छोटे-छोटे बाल। सामने लिखने-पढ़ने की मेज पड़ी हुई थी।

'आइए' बड़ी विनम्रता से सिंह जी बोले 'कहिए क्या काम है?'

महेश ने जेब में से वह चिट निकाल कर दे दिया।

सिंह जी ने पढ़ा, थोड़ा सा मुसकराये। हुँ—तो आपने मेरे गुरु जी के प्राणों की रक्षा की है।...अच्छा तो बताइए कि खुफिया विभाग की नौकरी आपको पसन्द है?'

'जी...जी...जो भी मिल जाय मैं जी-जान से करूँगा...'

'नहीं-नहीं मेरे पूछने का मतलब यह है कि आपको इस विभाग में रुचि है?

'जी मेरी बहुत रुचि है' मैंने कुछ जासूसी उपन्यास भी पढ़े हैं।

'आपका इस क्षेत्र में कुछ अनुभव है?'

'जी-जी' कुछ-कुछ तो अवश्य है—शुरू से ही मैं यह काम करता रहा हूँ। गाँव के किस आदमी का किस लड़की प्रेम है, कौन किससे किस बागीचे में, किस टीले पर मिलता है, किस चमाइन का सम्बन्ध किस पाँड़े से है, इसका पता मैं लगाया करता था...

'वाह मिस्टर..आपका नाम क्या है?'

'जी मैं हूँ महेश पाँड़े'

'हाँ तो वाह मिस्टर पाँड़े, बड़े माहिर हैं आप इन सब कामों में।'

'जी' महेश उत्साहित होकर बोला—'स्कूल में भी मैं पता लगाया करता था कि किस लड़के की चिठ्ठी कहाँ से आती है। कुछ थे हमारे स्कूल में मजनू लोग। सो उनकी लैलाओं की चिठ्ठियाँ मैं पोस्टमैनों के पास से ही गुम कर लिया करता था...'

हा—हा—हा—हा मि० सिंह हँस पड़े। 'तब तो जरूर आपको इस काम में रस मिलेगा। लेकिन हाँ जरा, क्रान्तिकारियों से निबटना खतरनाक होगा...'

'सो उसकी चिंता न कीजिए। मैं बहुरुपिया भी बना करता था। स्कूल के नाटकों में। देख लूंगा उन्हें।'

'अच्छी बात है, मैं तुम्हारी नियुक्ति कर लेता हूँ सी० आई० डी० विभाग में। देखूं तुम्हारा काम कैसा होता है?'

सो महेश कई वर्षों से इस क्षेत्र में काम करता रहा। नौकरी मिलने पर उसने घर पत्र लिख भेजा कि मैं पुलिस-विभाग में अफसर बन गया हूँ। मुखिया बाँटते फिरे कि मेरा बेटा तो बहुत बड़ा अफसर हो गया है।

महेश का तबादला गोरखपुर हो गया और वह इस राष्ट्रीय आन्दोलन की छानबीन करने के लिए संयोग से उसी क्षेत्र में भेजा गया जिसमें नीरू नौकरी करता था। वह उस क्षेत्र में गया। घूमा-भिन्न-भिन्न वेश बनाकर। वह नीरू से मिलने नहीं गया कि शायद पोल खुल जाय। लेकिन उसने नीरू के खिलाफ खूब लम्बी चौड़ी रिपोर्ट तैयार की। 'सारे उपद्रवों में नीरू नेता है' उसने इस आशय की रिपोर्ट तैयार की।

फिर बड़े अफसरों ने स्टेशनों की जाँच पड़ताल की। आन्दोलनकारियों की भी धरपकड़ शुरू हुई। नीरू भी बन्दी बना लिया गया। छावनी पर गजेन्द्र बाबू थे नहीं, इसलिए कोई रोक-टोक करने वाला नहीं मिला।

नीरू छाती ताने हुए शहीदों की सी शान में अकड़ता हुआ चला। उसे ऐसा महसूस हो रहा था कि आज उसकी निकम्मी जिन्दगी सार्थक हो रही है। उसे पुलिस की मोटर में बैठा कर सीधे गोरखपुर लाया गया। पीछे बाबू साहब का कुत्ता गुर्राता रहा, घोड़ा हिनहिनाता रहा, पागल हाथी सूंड़ में पेड़ की डाल लेकर तौल रहा था कि किस पर दे मारूँ। सिपाही भय से अवसन्न होकर परस्पर ताक रहे थे। किन्तु नीरू मुसकराता हुआ मोटर में बैठा सबको एकबार तम्बीह दी फिर बैठते हुए कहा—जल्दी आऊँगा जै भारत माता की।

६५

गजेन्द्र बाबू के यहाँ खबर भेज दी गयी कि गजब हो गया। नीरू बाबा कैद कर लिए गये। गजेन्द्र बाबू का खून खौल उठा—'मेरा आदमी कैद कर लिया जाय तो सरकारी अफसरों को डाली भेजने, दावत देने का क्या मतलब रहा?' वे नीरू के लिए चिन्तित नहीं थे, उन्हें चिन्ता अपने इज्जत की थी। अच्छा देखूंगा। वे कार से रातोरात भागे-भागे छावनी पर गये। वहाँ पूछ-ताछ की। स्टेशन गये। स्टेशन मास्टर भी भौचक्का रह गया। उसने कहा—'बाबू साहब आपके यहाँ नहीं रहने पर पाँड़े जी ही तो हम लोगों के रक्षक रहते हैं। उस दिन क्रान्तिकारियों ने हम लोगों को साफ कर दिया होता। वह तो पाँड़े जी ही हाथ में बन्दूक लिए हुए दौड़े हुए आये तो भागे सब। लेकिन पता नहीं सरकार उन पर क्यों नाराज है कि उन्हें पकड़ ले गयी?'

'अच्छी बात है स्टेशन मास्टर साहब! आपको गवाही देनी होगी।'

'जरूर-जरूर बाबू साहब' मगर अभी तो छुट्टी नहीं है कि चलूँ।

'अभी नहीं मैं फिर बताऊँगा आपको।'

बाबू साहब फिर कार से गोरखपुर की ओर उड़ गये।

हवालात बन्दियों से ठसाठस भरी हुई थी, नीरू भी उनमें था। वह देख रहा था जिले के कोने-कोने से आए हुए नेताओं को। उसका रोम-रोम पुलक से फरफरा रहा था कि उसे इन नेताओं के साथ बन्दी होने का तो अवकाश मिल रहा है। वह जंगले के पास खड़ा होकर कचहरी में आये हुए लोगों को देख रहा था। सबके चेहरे उड़े से लग रहे थे। नीरू अपने बन्दी होने को सौभाग्य समझ रहा था। वह भला इसी बहाने देश-सेवा में कूद पड़ेगा। उसमें यह जोश जाग रहा था कि इन खिड़कियों के छड़ों को तोड़कर बाहर निकल जाय और देश के कोने-कोने में बगावत खड़ी कर दे।

उसी समय मलिन्द वकील का चोंगा पहने उधर से निकला। वह किसी से बात करने में व्यस्त था। अतः नीरू को नहीं देख सका। नीरू ने देखा और देखा सन् बयालीस का देश-व्यापी आन्दोलन, चारों ओर क्रान्ति की लपटें और यह मलिन्द, नेता मलिन्द वकालत करने में व्यस्त मस्त है जैसे कुछ हुआ ही नहीं। राजनीति जैसे इसका एक शौक थी। हाँ वह शुरू से ही उसे जानता है। वह औरों को आग में झोंक कर बच निकलने वाला वीर है

उसे पिछली घटनाएँ याद पड़ गयीं। रईस का लड़का है, पढ़ा लिखा है, वकालत पास कर ली है, कमाई धमाई छोड़कर आन्दोलन में क्यों कूदे ?

मालिद हँसता चहचहाता चला गया। नीरू की रग-रग इस व्यक्ति के प्रति क्रोध से झनझना रही थी। वह आज इस आवेश में डूबा हुआ था कि जो जेल नहीं गया वह देश सेवक क्या ?

× × ×

. गजेन्द्र बाबू ने कोर्ट में नीरू की जमानत की दरख्वास्त दी। मजिस्ट्रेट ने नीरू के खिलाफ बहुत बड़े-बड़े राजनीतिक अपराधों का अभियोग लगाया। सुनकर सभी लोग दंग रह गये। गजेन्द्र बाबू के वकील ने जोरदार जिरह की कि माई लार्ड ! निरंजन पाँड़े बाबू गजेन्द्र सिंह के यहाँ पांच छः वर्षों से मुलाजिम हैं। इनके कामों से इन्हें क्षण भर भी छुट्टी नहीं मिलती, हमेशा इनकी कोठी में रहते हैं, और यह सूरज की तरह साफ है कि गजेन्द्र बाबू सरकार के हिमायती और परम प्रिय हैं। इसलिए ये अभियोग झूठे हैं। लिहाजा सरकार उन रिपोर्टों की फिर से जाँच करे जिसके आधार पर निरंजन पाँड़े को अभियुक्त ठहराया गया है।

कुछ देर रुक कर वकील फिर बोला—'मुख्य अभियोग यह लगाया गया है कि स्टेशन फूंकने में खास हाथ निरंजन पाँड़े का है जब कि वहाँ के स्टेशन-मास्टर का कहना है कि यदि निरंजन पाँड़े बन्दूक लेकर न आये होते तो क्रान्तिकारी उन्हें भी आग में भून गये होते। मौका पड़ने पर स्टेशन मास्टर को हाजिर किया जा सकता है।'

मजिस्ट्रेट ने गजेन्द्र बाबू की जमानत पर नीरू को रिहा कर दिया। रिहा होकर नीरू कुछ खास सुखी नहीं हुआ।

६६

मजिस्ट्रेट की आज्ञा से सी० आई० डी० के रिपोर्ट की जांच की गयी। सी० आई० डी सुपरिन्टेन्डेट मि० तिवारी गजेन्द्र बाबू की छावनी की ओर गये। वहाँ स्वयं सारी रिपोर्ट इकट्ठी की। लोगों की गवाहियाँ लीं, स्टेशन मास्टर का बयान लिया मालूम हुआ कि निरंजन पाँड़े निर्दोष हैं। अपनी रिपोर्ट मजिस्ट्रेट को दे दी। इधर महेश पाँड़े को षड्यंत्र और नालायकी के कारण डिसमिस कर दिया।

आज निरंजन के केस की सुनवाई थी। कोई विशेष परेशानी नहीं हुई, वह रिहा कर दिया गया।

गजेन्द्र बाबू उसी दिन अपने घर चले गये। नीरू को छावनी पर लौट जाने के लिए आदेश दे गये।

नीरू मुहदीपुर अपने एक सम्बन्धी से मिलने चला गया। ९ बजे की रात की उसे गाड़ी पकड़नी थी। सम्बन्धियों से मिलकर वह 'हुई पार्क' में घूमने निकल गया। सन्नाटा छा गया था। हलका-हलका अंधकार बिखर गया था। उसने देखा—एक हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति सादे लिबास में सड़क पर टहलता हुआ चला जा रहा था। नीरू 'हुई पार्क' के एक बेंच पर बैठा हुआ देख रहा था कि कोई एक छाया उस व्यक्ति का पीछा कर रही थी। वह छाया रह-रह कर पेड़ों और झुरमुटों की आड़ में होकर उस व्यक्ति के पीछे बढ़ रही थी। नीरू को एकबार सिहरन हो गयी लेकिन वह धीरे से उठकर और बाग के झुरमुटों की ओट से यह गति-विधि देखने लगा। वह छाया दूसरी ओर से बढ़कर एक मोड़ के वृक्ष के पीछे छिप गयी। नीरू उससे कुछ दूर के एक पेड़ के नीचे झपट कर छिप गया। वह व्यक्ति जब मोड़ के पेड़ के पास से गुजरने को हुआ तो नीरू ने देखा उसके हाथ में कोई चीज़ चमचमा उठी। नीरू भय से अवसन्न रह गया। लेकिन अब देर करने की जरूरत नहीं थी। उसने अपने हाथ की छोटी मोटी छड़ी संभाली। धीरे से और आगे बढ़ गया। वह व्यक्ति ज्योंही पेड़ के पास आकर घूमने को हुआ कि उस छाया ने वह चमकीली चीज तान ली और उसे उस व्यक्ति की पीठ में दे मारने के लिए उठाया ही था कि नीरू ने अपनी छड़ी का भरपूर वार पीछे से हाथ पर किया। एक आह के साथ उस छाया के हाथसे वह चमकीली कटार गिर पड़ी। मगर वह छाया साहस करके सद्यः भाग निकली।

नीरू तो उस व्यक्ति को बचाने की चिन्ता में था, पकड़ने की सूझी ही नहीं, और हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति भी यह नया काण्ड देखकर क्षण भर के लिए हक्का-बक्का रह गया फिर झटके से पिस्तौल निकाल कर उस झुरमुट की ओर दागी मगर कहीं से आह कराह नहीं आयी। वह छाया वीरान झुरमुटों में कहीं लुप्त हो गयी। उस व्यक्ति की पिस्तौल देखकर नीरू सन्नाटे में आ गया--कौन है यह ?

'कौन हो तुम ?' उस व्यक्ति ने रोब भरी वाणी में पूछा--'तुम यहाँ कैसे आ गये ?'

मैं एक राही हूँ साहब ! मैं स्टेशन जाते वक्त पार्क में बैठा था तो देखा कि एक छाया आपका पीछा कर रही है। मैं उसके पीछे-पीछे यहाँ तक आया। जब देखा कि आप पर वार करने वाला है तब झपट कर उसे यह छड़ी दे मारी।

'बड़े बहादुर हो तुम।" बड़े विश्वास और रोब के साथ उस व्यक्ति ने कहा।

'जी हाँ कुछ कुछ हूँ।'

'चलो मेरे साथ शहर की ओर।'

'जी नहीं मुझे स्टेशन जाना है।'

'स्टेशन। स्टेशन कल जाना। आज चलो मेरे साथ...तुमने मेरी जान बचाई है। कम से कम तुम्हारा एहसान चुकाने का कुछ तो मौका मिले।'

'मैंने एहसान के लिए कोई काम नहीं किया है। मुझे एहसान के बदले की इच्छा नहीं मुझे गाड़ी से जाना है बहुत जरूरी है।'

'जी नहीं जनाब आज तो आपको अपने साथ ले ही चलूँगा। प्रेम से नहीं चलगें तो कानून से ले चलूँगा।'

'कानून ! नीरू चौंका

'हाँ जी कानून ! आपकी गवाही देनी पड़ेगी।'

'गवाही ! यह एक नई मुसीबत खड़ी हुई।'

वह व्यक्ति मुसकराता रहा फिर नीरू के कंधे पर हाँथ रखकर ढकेलता हुआ बोला-'चलो चलो कोई बात नहीं।'

ये दोनों गोलघर के एक सुन्दर बँगले के पास जाकर रुक गये। रात के साढे आठ बजे थे। वह व्यक्ति नीरू का हाथ पकड़े हुए अन्दर दाखिल हुआ। नीरू ने प्रकाश में देखा उस आदमी की बड़ी-बड़ी मूँछें हैं, बड़ी-बड़ी दबीज आँखें हैं। नौकर ने झुककर कुछ मुसकराते हुए सलाम किया। उस व्यक्ति ने कहा--'मिस्टर आप तब तक यहाँ ठहरिये मैं जरा कपड़े बदल कर आता हूँ।'

'जी हाँ, जी हाँ ! आप शौक से जाइए।' वह व्यक्ति नौकर को चाय बनाने का आर्डर देकर दूसरे कमरे में चला गया। नीरू ने कमरे में निगाह फिराई।

उसकी नजर एक ग्रुप फोटो पर गयी जो उसके सामने ही टंगी हुई थी। वह उठकर फोटो के पास गया—देखा बीच में जो सज्जन पुलिस अफसर के वेश में बैठे हुए थे वे इसी व्यक्ति के अनुरूप थे केवल उसको मूँछ नहीं थी। उसने नाम पढ़े तो मालूम हुआ कि उसका नाम है सुनील त्रिपाठी सी० आई० डी० पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट...नीरू चमत्कृत हो गया। तो-तो क्या कहे...

कहिए साहब क्या देख रहे हैं ? 'कहते हुए वह व्यक्ति कमरे में दाखिल हुआ। उसकी मूँछें गायब थीं, उसका हँसता हुआ सुन्दर सुडौल चेहरा खिल गया था, अब इसे याद आया कि कहीं इसे देखा है कहाँ देखा है याद नहीं आया। वह माथापच्ची करने लगा जैसे यह सूरत कहीं देखी हो... खैर जाने दो...

अभी आता हूँ कह कर वे अन्दर चले गये। उनकी पत्नी पति के लिए खाना सजाने में व्यस्त थी। । मि० त्रिपाठी ने पत्नी की पीठ पर हाथ रखकर उसे स्नेह से गले लगा लिया। जैसे पहली बार प्रेम कर रहे हों इस कदर लिपटा लिया।

'छिः छिः छोड़िए महाराज अभी आ जायगा।'

'आने दो, मैं तुम्हें मानो नये जन्म में पा रहा हूँ आज। यों तो मेरा जीवन हमेशा खतरे में है किंतु आज तो वह समाप्त ही हो गया होता।'

पत्नी काँप उठी। भय से सन्न रह गयी। मि० त्रिपाठी ने सारी कहानी कह सुनाई तो पत्नी सुबक कर रो पड़ी और पति से लिपट गयी।

पति ने स्नेह से अलग कर कहा—चलो खाना थोड़ी देर बाद खायेंगे पहले अपने सुहाग के रक्षक के दर्शन तो कर लो।

'कहाँ हैं वे देवता ?'

'मैं पकड़ लाया हूँ बाहर बैठे हुए हैं। मैं चलता हूँ तुम आना।'

मि० त्रिपाठी आकर बैठ गये। महाराज ने चाय का पूरा सेट लाकर रख दिया।

मि० त्रिपाठी धीरे-धीरे कपों में चाय उड़ेलने लगे। एक प्याला नीरू की ओर बढ़ा दिया।

'मैं चाय नहीं पीता।'

'अरे पीजिए भी किस सदी में रहते हैं ?'

गरम-गरम चाय की घूँट मुँह में भरी ही थी कि श्रीमती त्रिपाठी ने चिक उठा कर कमरे में प्रवेश किया।

नीरू ने श्रीमती त्रिपाठी की ओर देखा तो अचकचा कर थोड़ा उठ बैठा। उसके मुँह की चाय स्वांस नली में प्रविष्ट कर गयी तु . .तु तुम मे मेरा मतलब है आ. . .आ आप-खांय. . .खांय. . .खांय।

श्रीमती त्रिपाठी भी भौंचक्का रह गयीं। मि० त्रिपाठी ने आश्चर्य से पूछा—क्यों क्यों क्या हो गया आपको ?

अपनी पत्नी की ओर देखकर बोले—'क्यों क्या बात है संध्या ! तुमको देखते ही ये महाशय इतने उद्विग्न क्यों हो उठे ?'

नीरू अब प्रकृतिस्थ हो गया था यद्यपि उसकी खाँसी जारी थी उसने कहा—'महाशय मैं उद्विग्न नहीं हुआ, मैं अकस्मात् अपने को यहाँ पाकर आश्चर्य में आ गया।'

संध्या मुसकराने का प्रयत्न करती हुई बोली—'हाँ जी, ये हैं मि० निरंजन पाँड़े जिन्हें लोग प्यार से नीरू भी कहते हैं (इस वाक्य के उच्चारण पर संध्या को लगा कि कोई चीज उसकी छाती में धँस गयी है) ये मेरे गाँव के हैं।'

'मि० त्रिपाठी ठठाकर हँस पड़े। वाह भाई खूब रही। तो इन्हीं के बारे में मलिन्द जी कोशिश कर रहे थे।'

'जी हाँ जनाब'।' संध्या मुसकरा रही थी।

'अब मुझे लगता है कि कहीं इन्हें देखा है' मि० त्रिपाठी बोले।

नीरू को अब स्पष्ट याद पड़ गया कि हाँ ये वही महाशय हैं जो मलिन्द के यहाँ उस बार (जब कि वह दूसरी बार गोरखपुर आया था) संध्या को घूर रहे थे और मेरी उपेक्षा कर रहे थे। ये वही महाशय हैं जिन्होंने डोरा डालकर उसकी प्रेयसी को हथिया लिया है।

नीरू ने कहा—'हाँ महाशय, आपकी मेरी भेंट आज से कई साल पहले मलिन्द भाई के डेरे पर हुई थी।'

'ओ माई गुडनेस।' कहकर मि० त्रिपाठी हँस पड़े।

'तो अभी आज कहाँ से आ रहे हैं ?'

'जी मैं आज ही केस से छूट कर आ रहा हूँ।'

'हाँ-हाँ आपको आपके गाँव के उस बदमाश ने झूठे ही इस कीचड़ में डाल दिया था।'

'साहब चाहे मैं जाने या अनजाने किसी भी तरह से इस सिलसिले में जेल गया तो इसे मैं अपना सौभाग्य ही मानता हूँ। देश के लिए मर मिटने से बढ़कर कौन बात हो सकती है ?'

'तो क्या आपने सचमुच वे सारी खुरफातें की थीं ? तो क्या रिपोर्ट सही थी ?' मि० त्रिपाठी चौंक कर बोले।

'जी नहीं मेरे खिलाफ जो रिपोर्ट थी वह सरासर गलत थी लेकिन मैं सोचता हूँ कि काश वे सही हो पायी होतीं ।' नीरू बड़े दर्प से बोल रहा था।

'महाशय आप जानते हैं किससे बातें कर रहे हैं ? आपकी बातों से राजद्रोह की गंध आ रही है ।'

'देश-द्रोह की नहीं न।'

मि० त्रिपाठी जैसे मर्माहत हो गये । वे हृदय के भद्र व्यक्ति थे । उन्हें देश के प्रति प्रेम था मगर सरकारी गुलाम पहले थे ।

संध्या महसूस कर रही थी कि नीरू मि० त्रिपाठी से महान् लग रहा है—नीरू देश के लिए मिट सकता है और मि० त्रिपाठी. . .उफ मत सोचो संध्या अब ये सारी बातें । नीरू कब नहीं महान् था किन्तु संध्या तू ही अति सामान्य निकली ।

संध्या ने नीरू और त्रिपाठी की बकझक और अपने आंतरिक संघर्ष को बचाने के लिए प्रस्ताव किया—चलो खाना ठंडा हो रहा है फिर बातें करना । सब लोग उठने ही वाले कि कलक्टर का फोन आया—आप जल्दी आकर मुझसे मिलिए, कुछ बड़े संगीन मामले पैदा हु: गये हैं।

धत्तेरी की ।' कहकर मि० त्रिपाठी उठे, पहले, कपड़े निकल गये ।

'देखा यह है जिन्दगी, खाना पीना सोना सब दुस्वार हो गया है इस साहबी में. . .'

कुछ देर तक मौन छाया रहा ।

संध्या के दिल का बाँध टूट पड़ा—हबस कर कह उठी—'नीरू, तुम देवता हो, तुमने मेरे सुहाग की रक्षा की । तुम जिन्दगी भर मुझ पर एहसान का बोझ डालते जाओगे किन्तु मैं अभागिनी तुम्हारे किसी काम न आ सकी सिवा तुम्हारा दिल दुखाने के ।'

'हूँ' कह कर नीरू गीला हो उठा । 'संध्या तुम प्रसन्न रहा करो । खींच-तान में जिन्दगी दूभर हो जायगी ।'

संध्या सकुचा कर छोटी हो गयी । वह रोये जा रही थी—'आज तुम न होते तो क्या हुआ होता ! आह ! इस कल्पना मात्र से मेरी छाती फटी जा रही है ।'

'मैं न होता तो दुनिया की कुछ दुर्घटनाएँ, कुछ मुसीबतें कम हो गयी होतीं । मेरे होने न होने का क्या महत्व है ? मैं न होता तो कोई और होता ? मगर इस कदर वे सुनसान में घूमते हैं यह ठीक नहीं है. . .यों तो उनके सुनसान में घूमने न घूमने से मुझे कोई सहानुभूति नहीं हैं । मैंने एक आदमी की हैसियत से उन्हें बचाया था ,यह अच्छा ही हुआ कि वे तुम्हारे पति निकल आये । उन्हें मना कर दो संध्या, इस तरह न घूमा करें यद्यपि ऐसे लोगों को मैं देश-द्रोही मानता हूँ और घृणा करता हूँ ।'

किन्तु वे तुम्हारे पति हैं और मैं तुम्हारा दुख देख सकूँ ऐसी हिम्मत मुझमें नहीं है...'

संध्या को लगा कि जैसे वह नीरू को पहली बार नजदीक से देख रही है, उसकी आँखें गीली थीं। उनसे पता नहीं क्या क्या फूट-फूट कर बह रहा था? सुबक कर बोली—'सरकारी नौकरी है भाई, उन्हें जाना ही पड़ता है। आज भी वे सादे वेश में एक क्रान्तिकारी की खोज कर रहे थे और लगता है वह आक्रामक कोई क्रान्तिकारी ही था।'

'रहा होगा कोई'...

'नीरू इन दिनों अक्सर तुम्हारी चर्चा हमारे यहाँ हुआ करती थी। महेश सी० आई० डी० इन्सपेक्टर हो गया था। उसने तुम्हारे खिलाफ बड़ी सनसनीखेज सूचनाएँ दी थीं। उसी की रिपोर्ट के आधार पर तुम्हारी गिरफ्तारी हुई थी। लेकिन मलिन्द भइया को इसका पता चल गया। उन्होंने मि० त्रिपाठी से सारी बातें बतायीं। महेश तुम्हारा पुराना शत्रु है यह जब मि० त्रिपाठी को मालूम हुआ तो उन्होंने तहकीकात की और रिपार्ट झूठी होने पर महेश को डिसमिस करा दिया।'

'समझा...' नीरू के मुँह से निकल पड़ा।

'क्या समझा' संध्या चौंक पड़ी?

'कुछ नही'

'कुछ नहीं क्यों! तुम्हारी आँखें देखते-देखते तन क्यों गयीं? मेरी कसम बताओ।'

नीरू ने संध्या की ओर अर्थपूर्ण निगाह से देखा...फिर वही कसम...क्या मतलब इस कसम का? हाँ कुछ मतलब तो है...

'हाँ मुझे लगता है कि वह आक्रामक महेश था।'

'महेश!' संध्या चौंक पड़ी।

'हाँ महेश! उसकी हलकी चीख, उसकी चाल और उसकी हलकी झलक से मुझे ऐसा एहसास हो रहा था कि वह व्यक्ति महेश जैसा ही कोई व्यक्ति था। उसके डिसमिसल की बात सुनकर मेरा विश्वास पक्का हो गया।'

'हो सकता है राक्षस अपने बाप का ही बेटा है न!
बचपन से ही यह हमारे पीछे पड़ा हुआ है। अच्छा तो बच्चू को मजा न चखाया तो मेरा भी नाम संध्या नहीं।' संध्या की कातर आँखों में भीषण प्रतिहिंसा जाग उठी।...मि० त्रिपाठी का कोई ठीक नहीं तुम चलो खाना खालो...'

'मैं खाना खा चुका हूँ अपने एक दोस्त के यहाँ...'

'झूठे कहीं के?'

'सच मानो संध्या।'

लगा जैसे एक क्षण के लिए बचपन के सरल दिन लौट आये।

'अच्छा तो आराम करो उस कमरे में।'

'बात करने से अब भय लगता है?''

संध्या सिहर उठी—'मुझे तुम्हारे आराम का ख्याल है।'

'सच!' नीरू ने मुस्करा कर पूछा।

संध्या को लगा कि नीरू ने उसे व्यंग्य की सूई चुभो दी है।

सबेरे जब नीरू को चाय पर बुलाया गया तो पता चला कि वह उठकर चला गया है।

।
।
।

रामधारी की माँ मर चुकी थी। उसकी विधवा पत्नी गुलाबी धीरे-धीरे घूंघट उलटने लगी, फिर घर से बाहर होने लगी, फिर खेत-खलिहान निकलने लगी। कुछ दिन तक उसकी मरी हुई बहन का पति रहा, उसने खेत-खलिहान सँभाला। लेकिन उसका अपना भी तो घर द्वार था, चला गया और पता नहीं क्या गाँठ पड़ गयी दोनों के बीच में, उसने बाद में झाँका नहीं।

गुलाबी बड़ी कोमल, सुन्दरी, गोरी औरत थी। जब वह ससुराल आई तो लोग उसकी एक झलक पाने के लिए उसके घर के पास से छिप कर गुजरते थे। वही आज घर से बाहर तक एक हो रही थी। इन तमाम क्रियाओं के बीच वह संयम की मूर्ति की भाँति दामन बटोरे हुए चलती थी, पूजा-पाठ करती, बड़ों के सामने घूंघट निकाल लेती, किसी की ओर देखे बिना उससे काम की बातें करती। हरवाहों-चरवाहों से भी संकोच से बोलती। वह वैधव्य की श्वेत प्रतिमा जैसी पूज्य और दिव्य लगती।

टीसुन अपनी गुलाबी चाची के आँगन में अलहदी की तरह पड़ा-पड़ा चाची चाची किया करता। आखिर जब टीसुन के संयम का बाँध टूट गया तो उसने एक दिन गुलाबी चाची का हाथ पकड़ लिया। गुलाबी चाची पहले से ही टीसुन का आशय समझती थी, जम कर एक लात मारा और गाली देकर कहा—निकल जा नरक के कुत्ते, तुझे चाची और माँ का भी ख्याल नहीं है।

टीसुन मर्माहत-सा लौट आया। उसके मन में प्रतिहिंसा की आग सुलगने लगी। 'बड़ा दर्प है इस राँड़ को, देखूँगा।'

समय गुजरता गया। गुलाबी का जीवन कष्टमय होता गया। न समय से खेत जुत-बो पाते, न खेतों की रखवाली हो पाती। और यदि बची-खुची फसल खलिहान में पहुँच भी जाती तो समय से दँवरी-ओसौनी नहीं हो पाती। और इस प्रकार गुलाबी तकलीफों से घिरने लगी। तिसपर टीसुन गुलाबी के खेत उखाड़ लेता और लोगों से भिन्न-भिन्न तरह की कानाफूसी करने लगा।

गुलाबी के सामने दो रास्ते थे—या तो वह संयमशीला होकर वैधव्य की गरिमा संभालते हुए देवी देवताओं का पूजा-पाठ करे या फिर व्यावहारिक होकर खेती-बारी सँभाले।

मुखिया ने श्यामधारी को कुछ रुपये कर्ज दिये थे विवाह के अवसर पर। वह गुलाबी से रुपये का कई बार तकाजा करवा चुके थे । गुलाबी ने बार-बार कहा—'अभी मेरे पास रुपये कहाँ से आये ? आयेंगे तो दे दूँगी ।'

मुखिया ने अच्छा मौका देखा, कोर्ट में नालिश करके डिग्री करा ली। रुपया अदा न करने पर खेत पर कब्जा करके रुपये की वसूली की व्यवस्था की गयी थी ।

तीन बीघे खेत में से एक बीघा खेत निकल जायगा, सुनकर गुलाबी दर्द से तड़प उठी । वह किससे रुपये उधार ले, किसी को भी ठीक से नहीं जानती थी । और जानती भी थी तो इस सीमा तक नहीं कि उससे सौ रुपये उधार ले सके । फिर मुखिया से कौन वैर-विरोध मोल ले, क्योंकि सब जानते थे कि मुखिया की निगाह रुपये पर नहीं, गुलाबी के खेतों पर है ।

कुछ लोगों ने टीसुन को समझाया कि गुलाबी विधवा है, यह सारी जायदाद तो तुम्हारी है। मुखिया, गुलाबी का नहीं; तुम्हारा खेत ले रहे हैं ।

मगर टीसुन के पास भी रुपये कहाँ से आते और दूसरे वह मुखिया का पिठ्ठ था, मुखिया उसे चार लात मारते तो भी वह स्पष्ट कुछ नहीं बोलता ।

गुलाबी लाज-हया छोड़ कर गाँव भर में घूम कर सब से फरियाद कर आयी । किसी ने भी बात नहीं सुनी । सौ रुपये देना उनके बूते की बात भी नहीं थी ।

गुलाबी ने भी दृढ़ निश्चय कर लिया कि खेत नहीं जाने दूंगी । उसने अपने बचे खुचे हुए सारे गहने बेंच दिये, चैत में गल्ला पताई का अधिकांश भाग बेंच दिया, मुखिया को उसका रुपया चुका कर राहत की साँस ली ।

मगर अब खाये क्या ? अपने बहनोई को कई बार खत लिखवाया, मगर, उसने कोई जबाब नहीं दिया। गुलाबी ने सोचा, चलो बहनोई से मुलाकात भी हो जायगी और काशी का नहान भी हो जायगा।

वह पन्द्रह मील पैदल चलकर दोहरी स्टेशन पहुँची। वहाँ पाँड़ेपुरवा गाँव के पंडित केदार पाँड़े रहते थे जो अपनी तेज चाल के कारण टमटम पाँड़े कहलाते थे । वे पद में गुलाबी के देवर लगते थे। उन्होंने कहा—'भौजी, अरे अब जो होना था सो हो गया। यह प्राण बड़ा पतित है निकलता ही नहीं। अरे, अब अपने तन की सँभाल करो, खेत-बारी देखो, बहुत लाज शरम करने से पाँड़ेपुरवा गाँव तुम्हें खा जायगा।

'हाँ बाबू ! ठीक कहते हो । ये प्राण पापी निकलते नहीं, तो अब दुनियादार बनना ही पड़ेगा ।'

टमटम पाँड़े के आग्रह पर गुलाबी भाभी वहाँ कई दिनों तक रह गयीं। स्टेशन छोटा सा शहर था, बड़ी चहल-पहल थी । स्त्रियों-पुरुषों के जोख जोड़े

मुसकराते हुए निकल जाते। गुलाबी भाभी के हृदय का कोई सोया घाव जैसे टीस मारने लगा।

गाना, बजाना, शृंगार ..जैसे एक नयी दुनिया आँखों के सामने खुल रही हो। गुलाबी जीवन के सूनेपन से ऊब गयी थी, उसे यह चहल-पहल बहुत अच्छी लगी। इस अभावग्रस्त दुनिया में टमटम पाँड़े का स्नेहमय व्यवहार, बढ़िया खान-पान गुलाबी के हृदय में एक नयी स्फूर्ति अंकुरित करने लगा।

बैसाख की चाँदनी अपने पूरे उल्लास से फूली हुई थी। टमटम पाँड़े के डेरे के सामने गुलमुहर के फूले-फूले पेड़ दहक रहे थे, टमटम पाँड़े किसी यजमान की शादी करा कर लौटे थे। बहुत-सा माल हाथ लगा था, पर टमटम पर मस्ती छाई हुई थी। रात के दस बजे के लगभग टमटम पाँड़े लौटे थे, उन्होंने अपने हाथ से बादाम पीसा, उसमें कुछ और वस्तुएँ मिलाईं और गुलाबजल में बढ़िया शर्बत तैयार किया। सेन्ट से भीनी हुई मिठाई, सेन्ट से भीना हुआ शर्बत, सेन्ट से भीना हुआ समस्त वातावरण...

सबेरे गुलाबी उठी तो उसका रोम-रोम परिताप से जल रहा था। वह उठकर स्टेशन की ओर जाने लगी तो टमटम पाँड़े ने कहा कि भौजी एक जरूरी काम है, रुक जाओ तो कल मैं भी बनारस चलूँगा।

गुलाबी नहीं मानी। स्टेशन की ओर चलती गयी और धीरे-धीरे सुबकने लगी। टमटम पाँड़े गुलाबी के पीछे-पीछे स्टेशन पर गये, टिकट ले दिया और बनारस का नक्शा और गुलाबी के बहनोई के रहने का पता-ठिकाना बताकर लौट आये।

गुलाबी ने किसी कदर बहनोई का निवास स्थान पा लिया। काशी में मन को शान्ति-लाभ मिलता है, किन्तु यहाँ तो गुलाबी और भी बेचैन हो उठी।

टमटम पाँड़े ने गुलाबी भाभी का मानो घूँघट उघाड़ दिया था, जब घूँघट उघड़ गया तो फिर...

बहनोई ने अपनी साली को बड़े ढंग से सहेजा। सब हालचाल पूछा। भावुकता में आँसू बहाये। सब तरह से आश्वस्त करने की कोशिश की। गुलाबी करीब दो महीने तक वहीं रह गयी। उसने बार-बार यही अनुभव किया कि टमटम पाँड़े और बहनोई में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। उसे सभी पुरुषों के चेहरे एक से दीखे। एहसान...एहसान एक फरेब है। एहसान के पीछे सभी पुरुषों की भयानक जलती हुई आँखें घूर रही हैं।

गुलाबी की दुनियादारी भी जाग पड़ी थी। इसलिए उसने भी अब अपने को बहाव में छोड़ दिया।

—मिथ्या है दम-घोंट संयम, यह संकोच प्रवंचना है...

दो महीने बहनोई के यहाँ रहते हुए हो गये थे। गुलाबी फूल कर लाल हो गयी थी, शरीर गदरा गया था, किन्तु एक तो खेत की जुताई-बुआई का समय

आ गया था, दूसरे बहनोई ने संकेत भी किया कि अधिक दिन तक लगातार रहने से लोग तरह-तरह की शंकाएँ करने लगेंगे। गुलाबी घर लौट आयी।

गाँव में शोर हो गया—गुलाबी कहीं निकल गयी। कोई कहता—मैंने उसे जोगिनी के रूप में देखा है। कोई कहता—वह मुझे स्टेशन पर मिली थी। कोई कहता—वह अपने मायके चली गयी। कोई कहता—वह अपने बहनोई के यहाँ बनारस भाग गयी; किन्तु इन सारी बातों में एक ही व्यंग्य गूँजता रहा कि बड़ी आई थी सती बनने वाली, वेश्या की तरह घूम-घूम कर अब अस्मत बेंच रही है। इस प्रचार में टीसुन का विशेष हाथ था।

गुलाबी आयी तो गाँव भर में हल्ला मच गया कि आयी...आयी...आयी। अब लोगों ने तरह-तरह के अनुमान लगा लिए कि गुलाबी ऐसी सुन्दरी स्त्री भी आवारा हो गयी है तो सुलभ हो सकती है। आवारा तबीयत वालों की वासना चटकने लगी।

लोग बहाने बना-बना कर गुलाबी से बात करने के लिए घिरने लगे या रास्ते में छेड़खानी करने लगे। गुलाबी ने अनुभव किया कि गाँव के अधिकांश छोकरे और जवान उसके पीछे कुत्तों की तरह चक्कर काट रहे हैं।

गुलाबी ने अपने बचे-खुचे अनाज-पताई से खेत बोला लि. अब घर में खाने को कुछ न रहा तो धीरे-धीरे उधार माँगने लगी। [illegible]ोई आदमी एकाध रुपया गुलाबी को उधार दे देता, वह अपने को गुलाबी के भोग का अधिकारी समझने लगता और बहाने बना बना कर गुलाबी का चक्कर काटता। गुलाबी को कभी-कभी दो दो दिन तक उपवास करने पड़ते। उसकी देह गिरती गयी, लोगों की भूखी निगाहें उसे और खाये जा रही थीं। उपकार का एक दाना देकर अनेक बहेलिए उसे जाल में फँसाने को तैयार थे। गुलाबी के सामने सतीत्व का तो अब कोई महत्व नहीं था, किन्तु वह गाँव वालों की घातक दुहरी प्रवृत्ति से परेशान हो गयी थी। एक ओर ये गाँव वाले उसकी शिकायत करते हैं, दूसरी ओर उसका हाड़ निचोड़ने के लिए मांस-भक्षी पशु की तरह चक्कर काटते हैं।

गुलाबी अपनी परेशानियों से तंग आ गयी थी। ऊपर से लोगों के व्यंग्य और उपेक्षा, तिस पर लोगों की घूरतीं आँखें। क्या करे वह! न जीते बनता है, न मरते। गाँव वाले उसका रहा सहा रस निचोड़ना चाहते हैं।

किसी बात पर टीसुन और गुलाबी में कहा सुनी हो गयी। जब भीख माँगने वाले टीसुन ने भी गुलाबी को उठा कर पटक दिया और लात, मुक्कों से मारने लगा तो गुलाबी के जीवन में क्या रहा! पास-पड़ोस के लोग जुट आये। तमाशा देखने लगे, बहुत हुआ तो 'हाँ-हाँ क्यों मारते हो' कह दिया। गुलाबी आज अपने को एकदम असहाय अनुभव कर रही थी, कोई नहीं है उसका अपना। सारा गाँव उसके पति को छीन कर अब

उसके जीवन की मुसीबतों का तमाशबीन बन गया है। वह घिघिया रही थी। टीसुन उसका झोंटा पकड़ कर खींच रहा था।

उधर कहीं से बैजू आ रहा था। गुलाबी की दशा देखकर उसका हृदय गुस्से से खौल गया। उसने तड़प कर कहा—'सबके सब नपुंसक हो गये हो क्या कि यह टिसुनवा साला एक औरत को बुरी तरह पीट रहा है।'

टीसुन से कहा—'छोड़ दो।' टीसुन ने अपनी चिलचिली आवाज को सप्तम सुर पर चढ़ा कर कहा—'जा जा चमाइन रख तो आना पंचाइत करने।'

बैजू से नहीं सहा गया। उसने लपक कर टीसुन का गला पकड़ा और उठा कर फेंकते हुए कहा—'साला जा तराई में भीख माँग। बड़ा मरद बना है तो मरदों से लड़।'

फिर लोगों ने दोनों को अलग कर झगड़ा दरहम-बरहम किया।

'जा भौजी जा अपने घर जा, इस हरामखोर से काहे लगती हो?'

गुलाबी बैजू के प्रति वक्र थी, यह जानकर कि इन्हीं सबों ने मेरे पति को मारा है। किन्तु बैजू की सहानुभूति ने उसके हृदय के कीने को बहा दिया। बैजू के यहाँ गुलाबी का आना-जाना शुरू हो गया। बैजू ने समझाया कि शामधारी भइया से हमारी कोई दुश्मनी थोड़े ही थी। यह तो मार शुरू हुई, उस मार ने पट्टीदारी की मार का रूप ले लिया। फिर उस अंधाधुंध की लड़ाई में कौन देखता है कि किसकी लाठी किस पर गिर रही है।

गुलाबी-बैजू के सम्बन्धों को लेकर अनेक प्रकार के अनुमान किये जाने लगे। चारों ओर बात फैल गयी कि गुलाबी बैजू के घर जा बैठी है।

बैजू ने किसी की कोई परवाह नहीं की। उसने गुलाबी से कहा—'भौजी अब तुम किस परेशानी में हो, मेरे घर आकर रहो।' गुलाबी कोई स्पष्ट जवाब न देकर भी धीरे-धीरे बैजू के घर में जम गयी।

गुलाबी को बैजू के यहाँ खाने-पीने का कुछ विशेष सुख तो नहीं मिला, लेकिन उसे एक सुखद आश्रय का अनुभव हुआ। वहाँ वह अपने को ढील देकर आराम कर सकती थी। गुलाबी और बैजू के खेत मिलकर इतने हो गये कि दोनों का खर्च आसानी से निकल जाने लगा।

गुलाबी का पेट बढ़ गया तो उसने एक दिन झिझकते-झिझकते बैजू से कहा—'अब क्या होगा?'

बैजू ने अटल स्वर में जवाब दिया 'होगा क्या? मैं देख लूँगा, पेट गिरवाने की जरूरत नहीं।'

गुलाबी को ऐसा मालूम पड़ा कि बैजू कुछ और है। ऊपर से वह क्या-क्या दीखता है—चोर है, डाकू है, लुटेरा है, लेकिन उसके भीतर की ज्योति

का अनुभव शायद ही कोई कर सका हो।' बैजू के प्रति उसका रोम-रोम श्रद्धा से भर गया।

गुलाबी को लड़का पैदा हुआ। सारा गाँव माथा पीट कर रह गया। बैजू घूम कर सबको पैलगी कर आया—देखो तो दाढ़ीजार का? कितना बेहया है? जले पर नमक छिड़कता है। इस दहिजरे ने पाप की हद कर दी है। बैजू ने दो महीने बाद पट्टीदारों को भोज के लिए निमंत्रण दिया। किसी ने भी स्पष्ट 'हाँ नहीं' नहीं कहा।

टीसुन की छाती पर साँप लोट रहा था। उसकी जायदाद का हकदार आ गया है। इसलिए वह कुंकरौंछी लगे हुए गदहे की तरह पूरे गांव में दौड़ लगा रहा था। वह फरियाद कर रहा था—'पंचो, बैजू के यहाँ खाने के पहले विचार कर लो, यह घोर अधर्म है. गाँव डूब रहा है।'

मुखिया ने सभी पट्टीदारों की एक मीटिंग बुलाई। सबके इकट्ठा होने पर सवाल पेश किया गया कि इतने बड़े अधर्म का प्रतिकार क्या है? बैजू ने अधर्म की हद कर दी। इसके यहाँ खाने-पीने का सिलसिला तोड़ ही देना चाहिए। मुखिया रोष से गरज रहे थे। सभी लोग 'हाँ-हाँ' कर रहे थे। बैजू वहाँ बड़ी लापरवाही से गुमसुम बैठा हुआ था। अन्त में पंचों ने फैसला किया कि इस कुकृत्य में बैजू के यहाँ खाने-पीने कोई नहीं जायेगा! बैजू फिर प्रायश्चित करे। टीसुन ने कहा—'यह पापी है, अन्यायी है, हाँ कोई नहीं जायेगा खाने के लिए।'

उस दिन नोरू भी घर आया हुआ था। अपने घर की ओर से वही पंचायत में गया था। अन्त में उसने कहा—'मैं जाऊँगा बैजू के यहाँ खाने के लिए। आप लोगों का यह कहना झूठ है कि बैजू अन्यायी है। जब बैजू ने मेरा घर फूँका, मेरे खेत काटे, गाँव के कितने ही लोगों के खलिहान फूँक दिये, तब तो वह न्यायी करार दिया गया। आज अन्यायी कैसे हो गया? वह आज भी न्यायी है और आज वह सचमुच न्यायी है। मैं उसके यहाँ खाऊँगा।'

एक क्षण के लिए सभा में सन्नाटा फैल गया।

नोरू बोला—'मैं जानता हूँ, बैजू ने एक ऐसा काम किया है जो आप लोगों के दिलों को धक्का मार रहा है; किन्तु मैं तो सोचता हूँ कि उसने दर दर ठोकरें खाती हुई एक असहाय अबला को सहारा दिया है। असहाय अबला दुनिया भर की उपेक्षा की शिकार होती हैं, उसे सहारा देकर बैजू ने जो मरदई की है उसके लिए वह बधाई का पात्र है। मैं जानता हूँ कि असहाय अबलाओं को छिपे-छिपाए अपनी वासना के होंठों से चूस कर फेंक देने वाले, अपने कुकर्मों का पर्दाफाश करने वाले भ्रूणों की हत्याएँ करने वाले हमारे भीतर भरे पड़े हैं, लेकिन साहस के साथ, दुनिया की झूठी बदनामी की परवाह किए बिना एक नारी का हाथ पकड़ना और उसकी संतान को अपनी संतान के रूप में

स्वीकार करना बहुत बड़े पुरुषार्थ का कार्य है। बैजू ने आज एक पवित्र कार्य किया है । मैं उसे बधाई देता हूँ ।'

मुखिया क्रोध के मारे जलभुन रहे थे । उनकी प्रभुता आज हाथ से छूटती मालूम हो रही थी । कुछ लोग स्पष्टतः नीरू के प्रभावशाली तर्क के कायल हो रहे थे । मुखिया सोच रहे थे कि मेरी धाक तो हाथ से सरक ही रही है, दूसरी ओर बैजू स्पष्टतः नाराज़ हो जायगा । उन्होंने संयत होकर एक दूसरा ही सवाल छेड़ दिया । 'नीरू बेटा, इतने तैश में नहीं आते । यह एक गंभीर मसला है । तुम्हारे कहने से तो ऐसा ज्ञात होता है कि गाँव का हर आदमी गुलाबी के पीछे पड़ा हुआ है । हर एक ने उसके साथ खिलवाड़ किया है और इस हालत में बैजू ने उसे अपना कर बड़े धर्म का कार्य किया है । अरे, यह तो गाँव वालों के सामने एक बड़ा खराब नमूना पेश किया गया है कि किसी की बहन, बेटी को रख लो । विधवा जीवन बड़ा पवित्र माना गया है, विधवाओं को तो किसी की ओर आँख नहीं उठानी चाहिए । उसे अपने घर में हाथ-पाँव समेट कर जिन्दगी काट देनी चाहिए ।'

'हाँ, जिससे लोग उसकी जगह-जायदाद कुर्क करालें, उसकी फसल उखाड़ लें, उसके बैल चुरा लें, उसके पेड़ काट लें, और फिर उसे असहाय बना कर दो-दो पैसे की लालच देकर उसकी अस्मत की खरीद करें ।' नीरू ने तीव्र स्वर में कहा ।

मुखिया इस व्यंग्य से तिलमिला गये । आज उनके हाथ से बाजी जा रही थी : नीरू आज उनका कर्जदार नहीं था, जर-जवार का सम्मानित व्यक्ति था । वह आज मुखिया की कुटिल अनीति को अपनी नीति से दबा रहा था ।

मुखिया बोले—'पता नहीं तुम गाँव वालों पर बराबर वासना का लांछन क्यों लगा रहे हो ? क्या गाँव भर लुच्चा और बदमाश है ? क्या तुम किसी का नाम बता सकते हो जो इस तरह गुलाबी के पीछे पड़ा हुआ था ।'

बहुत से लोग एक साथ चिल्ला उठे—'हाँ भाई, यह तो बहुत बड़ा लांछन है । बताओ कौन है वह ।'

'मैं बताती हूँ,' कहती हुई गुलाबी वहाँ आ धमकी । सभी लोग स्तब्ध से रह गये । कितनों की निगाहें झुक गयीं ।

वह हिम्मत से कहती गयी—'अब जब मैं इतनी दूर निकल आयी हूँ या आप लोगों ने निकलने पर मजबूर कर दिया है तो सारा लेखा-जोखा देने में क्या हर्ज ? मैं जानती हूँ एक-एक का नाम, जिन्होंनें मुझे जबानी सहानुभूति देकर खरीदना चाहा । नरक के कीड़े वे लोग हैं जो दूसरों की साफ-पाक देह पर चढ़ कर बिलबिलाया करते हैं । मैं जानती हूँ उन लोगों को जो

केवल मेरे साथ छिप कर खेलवाड़ करना चाहते थे, हिम्मत पूर्वक मेरा हाथ पकड़ना नहीं। मैं तुम लोगों के इशारे पर लट्टू की तरह नाचते रहने के बजाय एक मरद करके बैठ गयी हूँ तो तुम लोगों की छाती पर साँप क्यों लोटता है?...बड़ा धरम-धरम चिल्ला रहे हैं आप लोग। चाची की बाँह पकड़ कर खींचना कहाँ का धरम है, टीसुन से पूछिए और...'

'अरे चुप रह हरजाई! झूठी बात कहते हुए शरम नहीं आती।' टीसुन चिचिया कर बोला।

बैजू तन कर खड़ा हो गया। 'भिखमंगे, तेरा खून पी जाऊँगा अगर खराब जबान मुँह से निकाली तो। मेरी औरत के बारे में कुछ कहोगे तो यहीं ढेर कर दूँगा।'

टीसुन भी तैश में चिचिया उठा। बैजू उसकी ओर लपका। धर-पकड़ शुरू हुई। लोग बाद में अपने-अपने घरों को उदास लौट गये--जैसे मुर्दा फूँक कर आ रहे हों। केवल नीरू और उसके दो एक साथी हँसते मुसकराते लौट रहे थे।

६८

नीरू संध्या के घर से तड़के से ही निकल गया। जो दर्द उसके हृदय में टीस रहा था, उसे वह संध्या के घर कैसे सँभाल पाता? परिस्थितियाँ भी कैसी बेदर्द हैं कि अब कोई सम्बन्ध न रहने पर भी उसे ला-लाकर संध्या के यहाँ पटक देती हैं। वह सीधे छावनी पर लौट गया। बयालीस का आन्दोलन धीरे-धीरे ठंडा हो गया। दमन की ज्वालाएँ भी प्रायः शान्त हो गयी थीं; किन्तु नीरू की देश-भक्ति अब दूने उत्साह से जाग पड़ी थी। अकारण जेल-यात्रा ने उसे मानो बरबस जगा दिया था। यह देश-भक्ति प्रेम की असफलता की प्रतिक्रिया से और भी उद्दीप्त हो रही थी। जमीदारी के कार्य में उसे दुर्गन्ध मालूम पड़ने लगी। प्रेम की निराशा का दर्द पीकर उसकी संवेदनाएँ तीव्र हो उठी थीं—उसे महसूस होने लगा कि वह जाने-अनजाने किसानों-मजदूरों का खून पीता है। उसे अनुभव हुआ कि उसके अनजाने ही गालियों के संस्कार ने उसे घेर लिया था।

'मैं क्या हो गया हे भगवान!' वह व्यथा से कराह उठा। 'जी में आता है कि ये सारे व्यवधान तोड़ कर निकल जाऊँ कहीं। इस जिन्दगी में कोई भी तो काम मेरा मनचाहा हो। कोई भी तो, कोई भी तो...मगर नहीं होने का। लगता है यह समूची जिन्दगी निमित्त मात्र बनकर एक दिन टूट जायगी। जिन्दगी में कहीं भी एक क्षण के लिए विराम या तृप्ति नहीं दिखाई पड़ी। हाँ, केशव मेरी तृप्ति का एक रूप है। वह होनहार है, साहित्य में यश प्राप्त कर रहा है। लोग कहेंगे, यह नीरू का भाई है, घर का नाम रौशन होगा, यही मेरी तृप्ति है...यही मेरी तृप्ति है। इसके अलावा जीवन में और कुछ नहीं मिलने को।'

उसे चारों ओर अंधकार दिखाई पड़ रहा था, उसका सरल हृदय आज अधिकार के रंग से रँग गया था। वह चाहता था कि वह असामियों के जिस गाँव से निकल जाये, वहाँ तहलका मच जाये, लोग झुक-झुक कर उसे सलाम करें। हाथ जोड़ कर बातें करें। अगर वह किसी किसान को दो पैसे की छूट दे दे तो वह घूम-घूम कर उसका यश गाये।

उसने अनुभव किया कि वह भी दरबार के सिपाहियों को आपस में लड़ाने में, कौड़िया-मिलान खेलाने में, बात-बात में किसी की फजीहत कर आत्मगौरव अनुभव करने में, सुख पाने लगा था।

आज ये सारे जड़ बंधन उसके सामने साकार हो रहे थे। वह उनके बन्धनों में पड़ा-पड़ा उनसे एकाएक छूटने को तड़पने लगा। चाहता था कि देश-सेवा के नाम पर कहीं निकल जाये। घर पर इतनी खेत-बारी है कि लोग कमा-खा लेंगे। मगर केशव की पढ़ाई उसके लिए सबसे बड़े बन्धन के समान थी। मगर...मगर...केशव की पढ़ाई न होने पर भी वह स्वतंत्र हो पाता ? ओह वह कैसा पागल है कि नव विवाहिता पत्नी की ओर उसका ध्यान अब तक नहीं गया।

हाँ, पत्नी चाहे जैसी भी हो, उसकी ही तो है। उसने विवाह का नाटक क्यों रच लिया ? क्यों नहीं साफ-साफ इनकार कर दिया ? उसे याद आया कि उसने अपने मन से कुछ नहीं किया। उस समय तो वह शून्य हो गया था, सारी चीजें अपने आप हो गयीं।

नीरू की पत्नी घर आ गयी। गाँव की बहू-बेटियों ने मुँह बिचकाया—वर के अनुरूप दुलहन नहीं है। नीरू को जल्द ही मालूम हो गया कि वह बहू नहीं बल्कि बहू के रूप में काली कलूटी गोल-मटोल-सी भैंस घर आकर बैठ गयी है।

नीरू की माँ ने भी नाक-भौं सिकोड़ कर वैकुण्ठ पाँड़े को चार बातें सुनाईं, चार बातें बहू के घर वालों को। 'हीरे से लड़के के गले में भैंस बाँध दी। खराब कर दी मेरे लड़के की जिनगी।'

नीरू के जीवन पर एक धक्का और लगा। उसकी इच्छा हुई—घर छोड़ कर कहीं भाग जाय। किन्तु कहाँ जायगा ? घर तो उसके पीछे-पीछे लगा रहेगा। दिन-रात उसके दिमाग के तारों पर जैसे कोई चीज कसी आती थी।

पत्नी का सम्पर्क उसके लिए असह्य पीड़ा-सा लगने लगा; किन्तु इस बात का तो उसे बोध था ही कि पत्नी है। आखिर इसका निवाह तो करना ही है। और उसका दोष भी क्या है ?

एक दिन पत्नी ने बेहयाई से नीरू की टेंट से रुपये निकालने शुरू किये।

नीरू ने टोका—यह क्या ?

पत्नी उपालंभ के स्वर में बोली—'आप तो अपनी और अपने लोगों की कुछ खबर ही नहीं रखते। ये सारे पैसे आप पराये लोगों पर उड़ा देते हैं।'

'तुम्हारा मतलब ? क्या मैं लोगों के बीच पैसे बाँटता फिरता हूँ ?' नीरू ने रुक्ष स्वर में पूछा।

'नहीं मेरा मतलब है कि भाई-भतीजे लोग स्वार्थ के साथी होते हैं। जब तक आप के पास पैसे हैं, तब तक वे आपके हैं। पढ़ लिख लेने के बाद तो वे आप को पूछेंगे भी नहीं।'

'तो तुम्हारा मतलब केशव से है। यह बात तुम्हारे मन में आयी कैसे ! तुम्हारी जबान कट कर गिर नहीं गयी ?'

'जबान क्यों कट कर गिर जाय ? क्या हमें अपना भला-बुरा सोचने का कोई अधिकार नहीं ? मैं आपकी विवाहिता पत्नी हूँ । कोई भगा कर लायी गयी अनेरिया नहीं ।'

'चुप रह बेशर्म । अगर मेरे परिवार को तोड़ने वाला एक शब्द भी निकाला तो सर फोड़ दूंगा ।' फिर एक जोर का चाँटा लगा कर नीरू बाहर निकल गया ।

पत्नी बिलख बिलख कर रोने लगी । माँ दौड़ी हुई गयी । नीरू सिर थाम कर बाहर बैठ गया । पत्नी की रुलाई सुनकर सारा पास-पड़ोस जाग गया । नीरू सिर थाम कर कसमसा रहा था, अच्छी मुसीबत खड़ी हो गयी । सारे लोग पूछने लगे—'क्या हुआ, क्या हुआ ?'

नीरू क्या जवाब दे और कोई क्या जवाब दे ? माँ वहू को मना रही थी । पूछ रही थी, क्या हुआ ? नीरू को भला-बुरा सुना रही थी । 'अभी नयी बहू है कुछ भला-बुरा भी हो जाय, तो मारने की क्या जरूरत ?'

पत्नी का रोना चुप नहीं हो रहा था । पड़ोस वालों की जिज्ञासा बढ़ती जा रही थी । नीरू का क्रोध अपनी सीमा लाँघ रहा था । वह फिर अन्दर को लपका हुआ गया । कहा 'हरामजादी से कह दो कि चुप रहे, नहीं तो खून पी जाऊँगा । साली भैंस की बच्ची—आते ही आते घर फोड़ने लगी । '

माँ ने बाँह पकड़ ली—'देख, अब फिर कुछ बहू को किया तो तुम्हें थप्पड़ जड़ूँगी ।'

'छोड़ दे माँ, यह हरामजादी भैंस की नानी रो-रो कर सारे गाँव में तहलका मचा रही है । इसको कूट कर रख दूँ ।'

पास पड़ोस की कुछ औरतें पूछ-ताछ करने के लिए सरक आईं । माँ ने यह कह कर दरवाजे से ही उन्हें लौटा दिया कि कुछ नहीं बिच्छू ने काट लिया है बहू को । ठीक हो जायगी ।

माँ समझा-बुझा कर बहू को शान्त किया । लेकिन भीतर-भीतर वहू का व्यवहार वह समझ गयी थी और वह व्यवहार उसे सालने लगा ।

नीरू को रात भर नींद नहीं आई । क्या करे क्या न करे । वह सोचने लगा—यह भी एक मुसीबत खड़ी होनी थी । यह बहू नहीं, घर तोड़ने वाली राक्षसी घर में आई है । न रूप, न गुण, न शील, कैसे निबाह होगा इसके साथ । निबाह करना ही होगा, हिन्दू ब्राह्मण परिवार की बहू जो ठहरी !

फिर उसे अपने क्रोध पर पछतावा हुआ—'वह इतना आपे से बाहर क्यों हो गया ! औरत पर हाथ उठाना सबसे बड़ी नामर्दगी है । यह पशुता उसमें कैसे भर गयी ?'

फिर उसे क्रोध आया 'आखिर दुनिया भर की बातें मैं ही क्यों सोचता हूँ ? इस दुनिया ने मेरे सारे सपनों को काट-काट कर बोटी-बोटी बाँट ली, मेरे लिए कुछ नहीं छोड़ा। मैं ही सबका इतना ख्याल क्यों करता हूँ ? कुछ नहीं हाथ लगा ? हाँ जिस पैसे के लिए मेरा सब कुछ बरबाद हुआ, उसे भी लेने में संकोच करता हूँ।' नीरू अपनी बेवकूफी पर झल्ला उठा। सोचा—कल ही छावनी पर लौट जाऊँ, कमाऊँ, कमाऊँ, केवल मैं रहूँ और पैसा.. पैसा...

. नीरू छावनी पर फिर लौट आया। वह चिड़चिड़ा हो रहा था। उसकी चेतना अस्तव्यस्त हो कर उसकी नसों पर आघात कर रही थी।

लगान देने के लिए किसान पकड़ लाया गया। किसान गिड़गिड़ाया, 'मालिक अभी पैसे नहीं हैं; कुछ दिन की मुहल्लत दी जाय।'

'लगाओ साले को चार लात।' नीरू ने तड़प कर कहा।

दूसरा किसान गिड़गिड़ाया—'मालिक लगान तो लाया हूँ लेकिन कुछ कम है; कुछ छूट दी जाय।'

'तेरे बाप ने जमा कर रखा है पैसा, साले पाई पाई चुकाओ, नही तो खाल खिचवा लूँगा।'

एक सिपाही एक किसान को पकड़ लाया—'मालिक यह बेईमान खेत में ईख तोड़ रहा था।'

'भूख लगी थी बबुआ। खाने के लिए एक ईंख तोड़ ली मालिक, इस पर इस सिपाही बाबू ने बहुत पीटा और यहाँ भी पकड़ लाये।'

नीरू ने सिपाही से कहा—'दो लात और मारो और छोड़ दो हरामी को।'

एक सिपाही ने सामान लाने में दो पैसे की चोरी कर ली। नीरू को मालूम हो गया। उसे दो थप्पड़ जड़ दिये—'शरम नहीं आती ब्राह्मण होकर दो पैसे की चोरी करने में!'

बाबू गजेन्द्र सिंह का फरमान आया कि तीन हजार रुपये कल तक चाहिए, इन्तजाम करके भेजो।

नीरू झल्लाया—'तीन हजार रुपये कल तक कहाँ से दूँ। क्या डाका डालूँ ? चोरी करूँ! पता नहीं क्या समझ रखा है मुझे ?' फिर सिपाहियों को आदेश दिया—'पकड़ लाओ किसानों को जिनके यहाँ लगान बाकी हो।'

दो दिनों तक दरबार के सामने ऐसा करुण दृश्य रहा कि देखने वाले नीरू के इस नये रूप से भयभीत हो गये।

नीरू रास्ते में जा रहा था। उसके साथ उसके तीन-चार प्रिय सिपाही थे। रास्ते में एक किसान मिला। उसने पैलगी नहीं की।

'कौन है रे यह ?'

'सरकार यह छपिया गांव का हरेठी पासी है। यह कलकत्ता से क्रान्ति पढ़ कर आया है, अपने गाँव के किसानों को बहकाता है। बड़ा हरामी है।'

'पकड़ कर लगाओ इसे दस लात, इसकी सारी क्रान्ति इसके मुँह में चली जाय।'

क्रान्तिकारी नेता 'हरेठी' पीटा गया। नीरू आत्म-गर्व का अनुभव करता हुआ आगे बढ़ गया।

गजेन्द्र बाबू के पास नीरू के सम्बन्ध में तरह-तरह की शिकायतें ईर्ष्यालु प्रतिस्पर्धियों द्वारा पहुँचती रहीं। नीरू, गजेन्द्र बाबू से बहुत कम मिलता-जुलता। कुछ लोगों का काम केवल गजेन्द्र बाबू का रुख देख कर उनका काम करना ही था और ऐसे लोग एकाध साल में गजेन्द्र बाबू के लात और गारी के साथ अलग कर दिये जाते थे और कुत्ते की तरह पुचकारने पर दुम हिलाने लगते थे।

गजेन्द्र बाबू तमाम शिकायतें सुनने और अपने प्रति नीरू की उदासीनता देखने के बावजूद यह अनुभव करते थे कि नीरू जैसा काम का पक्का, होशियार और ईमानदार आदमी नहीं मिलने का। वे यह भी जानते थे कि नीरू एक बार कुछ कहने पर सब कुछ छोड़-छाड़ कर चला जायगा।

इधर जब से उन्होंने नीरू के नये व्यवहारों के सम्बन्ध में सुना, बहुत खुश हुए। हाँ! अब जमींदारी की माया ने उस पर रंग डाला है।

गजेन्द्र बाबू झक्की आदमी थे। वे अपनी सनक को ही अपनी महानता और मौलिकता समझते थे।

वे ताला खोल रहे थे, नहीं खुल रहा था। सारी चाभियों की आजमाइश कर के थक गये

एक बाभन सिपाही ने आगे बढ़ कर कहा—'बबुआ लाइए हम खोलें।

बाबू साहब ने घूर कर देखा—मानो कह रहे हों—अहमक, जो काम मैं नहीं कर सका वह तेरे जैसा कीड़ा-मकोड़ा कर सकता है?' बाबू साहब ने चाभी सिपाही की ओर बढ़ा दी। सिपाही ने किसी तरह ताला खोला—'बबुआ खुल गया।'

'अच्छा अब ताला फिर बन्द करो।' बबुआ ने आग्नेय नेत्रों से देख कर कहा। उनका पत्थर के समान खुरखुरा चेहरा और भी डरावना हो गया।

सिपाही ने ताला बन्द करने का बहुत प्रयास किया, किन्तु कुंजी के दबाव से ताले का कोई पुरजा टूट गया था। नहीं बन्द हुआ।

बाबू साहब ने उस जवान बाभन सिपाही को पटक कर लात से मारना शुरू कर दिया। साला बम्भन मुझसे अधिक अक्लमन्द बनता है!

देखने वाले लोग छुड़ाने के बदले बाबू साहब के पक्ष से बोलने लगे—'और क्या ? अब दुनिया में बबुआ से बढ़ कर अकलमन्द कौन हो सकता है ?'

बाबू साहब हाँफते हुए पूजा करने चले गये। चार घंटा पूजा के बाद जब निकले तो सबको बुलाया, प्रस्ताव रखा—'मेरा विचार है अगले महीने एक मेला लगाया जाय, जिसमें एक दंगल हो, रास मंडली हो और एक कवि-सम्मेलन हो। नीरू तुम अपने भाई केशव को लिख दो कि वह अपने दोस्तों के साथ उक्त अवसर पर आ जाय।'

'मैं लिख तो दूँगा मगर वह आयेगा कि नहीं, नहीं कह सकता। बड़ा स्वाभिमानी है।' नीरू ने अन्यमनस्क भाव से कहा।

'अरे स्वाभिमानी है तो कौन यहाँ आने से उसका अभिमान हरण हो जायगा। कवियों का हम उचित स्वागत करेंगे। हाँ कुछ को गोरखपुर से बुलवा लेंगे।'

'अच्छी बात है।' बात बढ़ने के भय से नीरू ने छोटा सा जवाब दिया।

'और हाँ, इस समारोह में कम से कम दस-बारह हजार रुपये का खर्च है। एक महीने का समय है इन्तजाम कर लो।'

'मुश्किल है !' नीरू ने कहा।

'क्यों, तुम किस मर्ज की दवा हो ?'

'अच्छी बात है, देखा जायगा।' नीरू ने विवाद से बचने के लिए कहा।

मेला दशहरे के आसपास पड़ा। केशव घर आया हुआ था। भाई के कहने पर छावनी पर एक सप्ताह पहले पहुँच गया। मेले की तैयारी हो रही थी। मेले, दंगल, रास, कवि-सम्मेलन के लिए बड़े-बड़े इश्तहार टाँगे गये थे।

नीरू बहुत व्यस्त होकर किसानों से लगान और कर्जा वसूल कर रहा था। कोई रियायत नहीं। मेला अगर फेल हो गया तो कितनी बड़ी बदनामी होगी गजेन्द्र बाबू की ! इसलिए किसानों पर सख्ती बरती जा रही थी। मारपीट, गाली, धूप में मुर्गा बनाना आदि सारी क्रियाएँ हो रही थीं। किसानों में तहलका मच गया था। हिदायत थी कि जो कोई भागेगा, उसका घर उजाड़ कर फेंक दिया जायगा, उसके खेत की फसल कटवा ली जायगी। किसान हाय-हाय कर रहे थे।

केशव ये सारे दृश्य देख रहा था। उसने भी बचपन में गरीबी देखी थी; किन्तु गरीबों की इस कथा से अपरिचित था। नीरू बहुत व्यस्त था। चीख रहा था, चिल्ला रहा था, गालियां बक रहा था, मार रहा था।

केशव भरी-भरी आँखों से यह सब देख रहा था। उसका हृदय मन-मन भारी पत्थरों से दबा जा रहा था—यह सब क्या है ! वह किस लोक में पहुँच गया है ?

शाम को अपने भइया नीरू के साथ टहलने निकला तो उसका चित्त भारी था। उसे सर-दर्द था। उसकी नस-नस टूट रही थी।

नीरू का चित्त प्रसन्न था। उसने आज सारे पैसे इकट्ठे कर लिए थे। एक हजार के आस-पास उसको फर्दतियावन के रूप में अपनी आय प्राप्त हुई थी। वह आज खुश था।

'क्यों केशव, तुम उदास क्यों हो, तबीयत तो ठीक है न ?'

'हाँ भइया, ठीक है।'

'तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई ठीक चल रही है न। अब डेढ़-दो साल और रहे तुम्हें एम० ए० पास करने में। जी लगा कर पढ़ो।

'अब मुझे नहीं पढ़ना है।'

'क्या ?' चौंक कर नीरू ने पूछा।...'अरे तुम्हारी आँखों में आँसू ! क्या हुआ केशव।'

'हाँ भइया, मैं ठीक कह रहा हूँ मुझे नहीं पढ़ना है। आज हृदय का कोना-कोना चीत्कार कर रहा है। मेरी छाती फट रही है। लगता है मेरी शिक्षा-दीक्षा की श्वेत प्रतिमाओं के नीचे कोई कराह रहा है, कोई तड़प रहा है।'

'हाँ अब तुम अच्छी कविता करते हो। तुम्हारी कविताएँ मैंने पत्रिकाओं में पढ़ी हैं। बहुत उच्चकोटि की हैं। कुछ तो मेरी समझ के बाहर हैं।' नीरू मुसकरा कर बोला।

'भइया, यह मैं कविता नहीं कर रहा हूँ अपने रोते हुए हृदय की सच्ची भावनाएँ व्यक्त कर रहा हूँ, अब मैं आगे नहीं पढ़ पाऊँगा।'

'आखिर क्यों ? तुम्हारी पढ़ाई के लिए मैंने अपना बलिदान दिया और तुम आखिरी मंजिल पर जाकर हताश होकर बैठ जा रहे हो।'

'भइया आपने मेरे लिए और परिवार के लिए जो बलिदान किया है, उसे भी क्या कहना पड़ेगा ? लेकिन मुझे आज ज्ञात हुआ है कि मेरी पढ़ाई के जो पैसे आते हैं, वे किसानों के रक्त में लथपथ होते हैं।' ...आज का दृश्य देख कर मेरा कलेजा फट रहा है...एक भाई की पढ़ाई के लिए कितने घर उजाड़े जाते हैं।...'

'चुप रहो केशव, बकबक मत करो।'

'मैं जानता हूँ भइया कि मैं अपनी सीमा से बाहर होकर बात कर रहा हूँ। लेकिन यदि ये बातें न करता तो मेरा हृदय फट जाता। क्षमा करें आप।'

बहुत देर तक दोनों चुप रहे। चलते रहे...चलते रहे। शाम का अंधकार गहरा रहा था। एक कच्ची सड़क पर दोनों धीरे-धीरे बोझिल पगों से चले जा रहे थे।

बहुत देर बाद नीरू टूटती हुई आवाज में बोला—केसू, तुमने मेरी आँखों के आगे से अंधकार हटा दिया। मैं हमेशा ऐसा नहीं था केसू ! पहले

यदि मैं भूल से किसी किसान को एक चपत मार देता था तो रात भर रोता था; किन्तु इधर पता नहीं एकाध साल से मुझे क्या हो गया क्या हो गया, कि मै अपने को भूल गया। सब कुछ भूल गया। इन्सानियत भूल गया, रह गया राक्षस के रूप में।...पता नहीं मुझे क्या हो गया है इन दिनों! तुम सच मानो केसू, इन किसानों की दशा देख कर मुझे अपने दिन याद हो आये हैं। मुंशी जी द्वारा इन्हें मार खाता हुआ देख कर दो-दो दिन तक मैं तड़पता रहा हूँ। इनके भूखे परिवारों की याचना भरी आँखें मेरे कलेजे में पैठ गयी हैं। मैंने कितनों के बकाया लगान छोड़ दिये हैं... कितनों को इस जुल्मी जमींदार से बचाया है, किन्तु नहीं मालूम, मुझे इन दिनों क्या हुआ जा रहा है? मुझे लगता है, जमींदारी दरबारों की अत्याचारी छाया मुझे अनजाने ही कस कर चूसती जा रही है। कई बार सोचा, इसे छोड़-छाड़ कर कहीं निकल जाऊँ, जहाँ आदमी की तरह रह सकूं। परन्तु आदमी की तरह रहने लायक जगह कहाँ छूटी है केसू?...फिर भी मैं नहीं चाहता कि इन गरीब किसानों पर अत्याचार करूँ—किन्तु एकाध साल से जैसे किसी ने मेरी संवेदनाएँ निचोड़ ली हों। मैं अंधा हो गया दुनिया के प्रति एक क्रोध के भाव से, एक प्रतिक्रिया के भाव से...।'

केशव को अब लगा, जैसे उसने अनजाने ही अपने महान भाई के प्रति कुछ ऐसी कड़ी बातें कह दी हों, जो उसे नहीं कहनी चाहिए। वह क्या जानता, समझता है अपने भाई को? उसने दुनिया कहां देखी है? भाई के जीवन की सारी घटनाएँ बिजली की तरह कौंध कर उसके मस्तिष्क को छू गयीं। केशव मनोविज्ञान पढ़ रहा था। वह जानता था कि जिसके जीवन में इतनी निराशाएँ, इतनी असफलताएँ आई हों, उसका दुनिया के प्रति अनास्थाशील हो उठना स्वाभाविक है। भइया को कोई भी तो मनचाही वस्तु नहीं मिली। तब क्यों उसने ऐसी चुभती बात कह दी। भावुकता से आदर्श की बात कह देना तो बड़ा आसान होता है, मगर जो दुनिया में करता है वह जानता है कि यथार्थ के कितने रूप हैं....?

केशव ने भर्राये हुए स्वर से कहा—'भइया, क्षमा करें। मैंने अनजाने ही आपका जी दुखा दिया। आपकी महानता के पर्वत के समक्ष मैं एक बौने के समान हूँ क्या देख सकता हूँ?' केशव भइया के चरणों पर झुक पड़ा।

नीरू ने केशव को उठा कर छाती से लगा लिया—'नहीं केसू, तू ठीक कह रहा है, मै नशे में आ गया था। नशा चाहे जिस कारण हो, आखिर नशा ही कहा जायगा, वह श्रेयस्कर कभी नहीं होगा। मुझे तुझ पर नाज है केसू, तूने मेरी आँखों के आगे से परदा हटा दिया...'

केशव के गाल पर आँसू की बूंदें टपक पड़ीं। चौंक कर भाई की आँखों की ओर देखा—'रो रहे हैं आप भइया!'

'हाँ केसू, रो रहा हूँ, तुमने आँखों के आगे से परदा हटा दिया तो इस अन्धकार में किसानों के अनेक तड़पते चेहरे, आँसू से भीगी हुई खोह सी शून्य आँखें धूप में तपती हुई रक्त से चिपचिपी पीठें, क्षमा याचना करते जुड़े हुए हाथ, खाली झोपड़ियाँ, बिलखते हुए बच्चे, अहकती हुई नारियाँ नजर आ रही हैं। मेरे कानों में दर्दीले स्वर टकरा रहे हैं।...विश्वास मान केसू अब तेरी पढ़ाई के रुपयों में किसानों के रक्त की गंध नहीं आयेगी।'

नीरू की आँखें बरस रही थीं। केसू भीग रहा था...।

'मेरा कहा मान केसू, तू कल यहाँ से चला जा। मैं नहीं चाहता कि जमींदारी की काली छाया तुम्हारे ऊपर एक क्षण को भी पड़े। हाँ, यह कवि-सम्मेलन ढोंग है। मैं जानता हूँ, इस बर्बर जमींदार को। यह मेले के दूकानदारों को, पहलवानों को, नाचने वालों को किसानों के रक्त से दुहा हुआ पैसा विदाई में और पुरस्कार में देगा और चलते समय कवियों को रेल का भाड़ा भी न मिलेगा। तू कल चला जा।'

'चला जाऊँगा भइया...चला जाऊँगा...आप मुझे क्षमा करें...'

'चुप रह रे।'

चुगलखोरों ने बाबू गजेन्द्र सिंह से चुगली की कि सरकार नीरू पाँड़े ने पैसा कमा कमा कर घर भर लिया है। यह छावनी तो उनके लिए सोने का अंडा देने वाली मुर्गी हो रही है। ऐसे नीरू होशियार आदमी हैं। सरकारी रकम पर भी हाथ लगा कर उसे इस दाँव-पेच से कागज पर दिखा देते होंगे कि पता नहीं चलता होगा।

इन चुगलखोरों में मुखिया प्रधान थे; जिनके पंख टूट रहे थे; जो अपनी सारी दुर्भावनाओं और षड्यंत्रों के बावजूद नीरू-परिवार से त्रस्त हो रहे थे। उनके काफी खेत कर्ज खानेवालों ने छुड़ा लिए थे। बेटा महेश बहेतू बना फिर रहा था, कहीं ठिकाना न पाकर घर आकर जम गया था और अवारे के वेश में गाँव के द्वार-द्वार, बाग-बाग, हाट-बाजार घूमता था। उन्हें अपने निकम्मे बेटे की बड़ी चिन्ता थी। घर में महेश की पत्नी कलपती रहती। वह धैर्य की देवी थी। सुन्दरी इतनी कि गाँव की बहू-बेटियों की सुन्दरता का उपमान बन गयी थी। शील और विनय में वह बेजोड़ थी। अपने निकम्मे और बहेतू पति पर आँसू बहाया करती। घुलते-घुलते वह क्षीण हो गयी थी। आवारा महेश की हरकतों को सुधारने के लिए जब वह कोई अनुनय-विनय करती, तो महेश गुस्से में आकर घसर-घसर उसे लात से पीट देता। वह देवी अपनी सारी अहक और व्यथा को हृदय के ही भीतर पी जाती।

मुखिया घर का भविष्य सोच-सोच कर गलते जा रहे थे। इसीलिए उन्होंने बाबू गजेन्द्र सिंह से नीरू की शिकायत करके छावनी पर से उखाड़ देना चाहा और संकेत से महेश को वहाँ थोपना चाहा। बाबू गजेन्द्र सिंह नीरू की ईमानदारी और होशियारी से परिचित थे, मगर इन रोज-रोज की शिकायतों से तंग आकर और नीरू की भौतिक उन्नति से अकारण ईर्ष्या खाकर उसे एक नीरस और पैसे की दृष्टि से अनुर्वर छावनी पर भेज दिया।

बाबू गजेन्द्र सिंह प्रयोगवादी आदमी थे। वे नये नये खेल-तमाशे और भोजन-व्यंजन के जैसे शौकीन थे, वैसे ही नये आदमियों के भी शौकीन थे। प्रयोग के लिए आदमियों को चुना करते थे। मुखिया से पूछा—'कहो कुबेर पाँड़े, तुम्हारा एक लड़का है न! क्या नाम—'

'हजूर, महेश नाम है। सरकार को बहुत याद रहता है।'

'तो क्या कर रहा है वह आजकल ?'

'हजूर, आजकल तो घर पर ही है । खेती बारी करा रहा है । खेती-बारी के काम में उसका बड़ा मन लगता है'

'तो उसे हमारे यहाँ भेज दो न । उसे हम हरिपुर छावनी पर भेज देंगे ।'

अंधे को क्या चाहिए, दो आँखें । मुखिया गद्‌गद हो गये 'हजूर वह आप का ही लड़का है । आप जहाँ चाहें उसे रखें, हमें क्या ?'

नीरू को हटा कर महेश को हरिपुर की छावनी पर रखा गया है, यह बात नीरू को बहुत बुरी लगी। यद्यपि अब गाँव के पास ही वह शिवपुर छावनी पर आ गया था । बहुत दिनों से उसे गाँव के पास आने की तमन्ना थी, यद्यपि वह जानता था कि यह छावनी ऊसर है । ऊसर होने पर भी उसे यहाँ आने की इच्छा थी; क्योंकि वह अपने पिता के आलसी स्वभाव से ऊब गया था । पिता सुमेश पाँड़े पहले तो गरीब थे। अतः उनकी सैलानी मनोवृत्ति पर एक बन्धन था; किन्तु अब जब पैसे घर में आने लगे थे, तो उनकी वृत्तियाँ स्वच्छंद होती गयीं। खेत जोताने-बोवाने, कटाने-दँवाने तथा गृहस्थी के अन्य कार्यों के लिए उन्हें मजूरे तो कभी नहीं मिले, अब भी नहीं मिलते थे, इतना पैसा होने पर भी । अगर मजूरे मिलते भी थे तो या तो उनके पास ये रहकर काम नहीं कराते थे, या उनसे गला फाड़-फाड़ कर चिचियाते रहते । अतः मजूरे उनसे परेशान भी थे और कुछ रुतबा भी नहीं मानते थे । बहुत से मजूरे इनका अगवड़ खा खाकर बैठ जाते और सालों उसके एवज में काम नहीं कर पाते । अगर मजूरे काम पर आते भी तो बाजार के दिन उन्हें मना कर देते । इस प्रकार खेती-बारी उजड़ती जा रही थी। सुमेश पाँड़े कुछ कहने पर गला फाड़-फाड़ कर पूरे गाँव को कँपा देते । पति-पत्नी में अकसर कहा सुनी होती । जब कभी नीरू घर पहुँचता और काम का जवाब तलब करता तो सुमेश पाँड़े झल्ला कर खड़े हो जाते—'मार डालो घर भर मिल कर। सारा दोप मेरा ही है । मेरा खाना-पीना बुरा लगता हो तो कहीं निकल जाऊँ गेरुआ बस्तर लगा कर ।'—और इस प्रकार चिल्लाते हुए गाँव का दो चक्कर काट आते ।

नीरू को उनकी इस चिल्लाहट से सख्त नफरत थी। पिता हैं; नहीं तो उसकी इच्छा होती कि या तो खुद घर छोड़ दे या इन्हें घर से निकाल दे। गाँव भर में अनेक दुश्मन भरे पड़े हैं या कम से कम उसका विकास देख कर ईर्ष्या करने वाले लोग हैं । उन लोगों को ये महाशय चिल्ला-चिल्ला कर घर की गुप्त बातें भी बता देते हैं। ये लोग हँसते हैं, मुसकराते हैं, सुरती देने के

बहाने इन्हें बुलाकर पूछते हैं—'क्या है सुमेश भाई।' और सुमेश भाई घर का सारा राज ओसाने लगते हैं।

ऐसे तो काम की बातों में काट-कपट कर सुमेश पाँड़े कंजूसी दिखाते थे और कंजूसी करते-करते काम बिगाड़ देते थे, किन्तु बेकार की बातों में वे इतना खर्च करते कि नीरू की कमाई आँख ही नहीं लगती। रुपया ले जायेंगे बीज खरीदने के लिए और किसी मजूरे को कर्ज दे आयेंगे और घर आकर कह देंगे कि रुपया कहीं गिर गया। इस प्रकार की बातों को लेकर रोज कच्चाइन होती रहती।

नीरू घर की इस अवस्था से बड़ा चिन्तित था। अतः वह घर के पास की छावनी पर आने के लिए चिन्तित अवश्य था; किन्तु उसे हटा कर बाबू साहब ने महेश को वहाँ रखा है, यह बात उसे अखर गयी।

खैर, किसी तरह उसने इस नयी जगह के साथ समझौता कर लिया। बैजू वाला मामला जोर पकड़ रहा था। बैजू के यहाँ खाने-पीने का मामला तो एक बहाना मात्र था; किन्तु उसके कारण गाँव में फिर एक तनाव पैदा हो गया। मुखिया नहीं चाहते थे कि वह बैजू को अपना शत्रु बनायें। किन्तु ऐसी परिस्थिति पैदा हो गयी कि तनाव आ ही गया।

टीसुन मुखिया के यहाँ तो पहले से ही उठता बैठता था। अब उनकी छाया की भाँति उनके साथ-साथ डोलने लगा। बेनी काका अपनी ढेकुल सी देह लिए चिट्टिर-पिट्टिर, चिट्टिर-पिट्टिर करते हुए आते और आते ही देश-विदेश की कपोल कल्पित बातें उड़ाते हुए बैजू वाले प्रसंग पर आ जाते। रग्घू बाबा चित्त-थू, चित्त-थू की पिचकारी मारते हुए कभी मुखिया के यहाँ बैठते, कभी नीरू के यहाँ। यहाँ भी हाँ कहते, वहाँ भी। धीमड़ पाँड़े भोजन-वीर थे, मुखिया के नहीं करने से उन्हें भोजन नहीं मिला। उन्हें धरम-करम से वास्ता कम था। अतः एक तरह से उदासीन से थे। घनश्याम तिवारी का परिवार गाँव के इन सब मामलों में हमेशा से चुप था, सो चुप रहा। मलिन्द का राजनीतिक और समाजिक रोष वकालत के चोंगे में ढँक गया था। एक तो वह गाँव बहुत कम आता था, दूसरे वह ऊँचे तबके में 'मूव' करने वाला आत्म-सम्मान-सजग वकील हो गया था। उसके दिल में इस समय क्या उमड़ रहा है, इसका पता चलाना मुश्किल था। बैकुंठ पाँड़े नीरू के सगे हो कर भी उसके कम, मुखिया के अधिक थे क्योंकि कुछ तो वे चमगादड़ी वृत्ति के थे, (जिसका पलड़ा गाँव में अधिक देखो उसका हो रहो।) दूसरे, नीरू के विकास से वे मन ही मन जलते थे, क्योंकि पहले वे गाँव के दो एक धनीमानी व्यक्तियों में गिने जाते थे। पपीहा पाँड़े का बेटा पं० छेदी पाँड़े जर-जवार का मशहूर उपरोहित था, अतः वह कैसे इस पाप का भागीदार बनता। वह चोटी फटकारता,

पोथी-पत्रा लिए गाँव-गाँव घूमता, ग्रह उतारता, वैद्यक की दवाइयाँ बाँटता, सोखैती करता ? घर छोड़ने के पहले और घर आने के बाद अपनी औरत, बच्ची को नियमित रूप से किसी न किसी अधार्मिक बात पर पीटता। सो ऐसा धार्मिक व्यक्ति बैजू का पक्ष कैसे लेता ?

नीरू शुरू से ही अपने सिद्धान्त का पुजारी होने से किसी का मुखापेक्षी नहीं था। किन्तु अब वह गाँव के समीप बाबू साहब की छावनी पर तहसील दार हो गया था। पाँड़ेपुरवा के अधिकांश खेत बाबू साहब की जमींदारी के के अंतर्गत आते थे, अतः गाँव के लोग डरते थे कि कहीं रुपया-पैसा न होने पर नीरू कड़ाई न कर बैठे। दूसरे, नीरू के साथ सिपाहियों की जन-शक्ति भी थी। तीसरे, लोग विवाह-शादी के अवसरों पर नीरू से इमदाद माँगने भी जाया करते थे। नीरू ने अपने गाँव वालों को हमेशा छूट दी, उन्हें जमींदारी की ओर से हमेशा मदद की; लेकिन गाँव के वास्थी, उपकृत हो होकर भी नीरू के खिलाफ मुखिया से ही मिले रहते थे। नीरू, बैजू की पीठ ठोंक रहा था। नीरू की शह पाकर बैजू मतवाला हो गया था। नीरू के साथ थे गनपति नेता। मुखिया ने ही गनपति का घर फुँकवाया था दारोगा से। गनपति इस बात को जानता था, अतः वह मुखिया से खार खाये बैठा था यद्यपि वह इस गृह-दाह को देशभक्ति की निशानी के रूप में बड़े गर्व से स्वीकारता था। गनपति नीरू का सहयोगी था। कांग्रेस तो जाति-पाँति, गरीब-अमीर का भेद मिटाती है, वह विधवा-विवाह का समर्थन करती है। 'नीरू भाई ठीक ही तो कह रहा है कि बैजू ने एक बहकती हुई विधवा का उद्धार कर पवित्र काम किया है। उसकी तो पीठ ठोंकनी ही चाहिए।' गनपति को किसी गँवई पार्टी से मतलब नहीं है। वह तो वही कर रहा है, जो गांधी जी कहते हैं।

रमेश मास्टर पर नीरू की कृपा-दृष्टि शुरू से ही रही। उसके लिए नीरू ने झगड़े किये, मारपीट की। नीरू की माँ ने इस मातृहीन बालक के लिए माता का सा स्नेह दिया। अतः रमेश नीरू की इज्जत करता था। वह मन ही मन मुखिया और गाँव के गुण्डा-समर्थकों से नाराज था, मगर क्या करता ? मातृहीन, पितृहीन अकेला बालक, अब प्राइमरी का एक हारा हुआ मुदर्रिस, एक गरीबी पत्नी का पति, एक टिटिहरी सी दो साल की लड़की का बाप, गाँव की हालत देख कर भयभीत रहता था। उसे मुखिया से, बैकुंठ चाचा से बहुत से काम लेने रहते थे। अतः वह उनके प्रति दिल में अपार घृणा लेकर भी उनसे विरोध नहीं ले पाता। नीरू अब तक गाँव से बहुत दूर एक छावनी पर रहा। उसके अभाव में उसका और कोई सहायक नहीं था, अतः मास्टर रमेश एक दुखी तटस्थ व्यक्ति था। नीरू ने रमेश की पीठ ठोंकी तो वह बहुत खुश हुआ, लेकिन उसने हाथ

जोड़कर नीरू से कह दिया—'भइया, मुझे प्रकाशित रूप से किसी पक्ष में मत रखिये । मुखिया साले को तो आप जानते हैं । वह मुझे उजाड़ देगा, घर फुंकवा देगा, खेत उखड़वा लेगा और बहुत सी कुटिल चालें चल कर हमें परेशान करेगा।'

हरिजन नेता लोगों को नीरू ने बुलाया । नेताओं ने कहा, 'नीरू बाबा, आप की बात ठीक है। मगर हम ठहरे असामी आदमी ।'

'यही तुम्हारा कांग्रेसी सिद्धान्त है ! इसी बल पर स्वराज्य लोगे ?' नीरू बोला ।

'आपकी सब बात ठीक है, नीरू बाबा ! लेकिन हम लोगों को माफी दी जाय।'

हाँ, नीरू अपने सिद्धान्त पर अडिग था; चाहे कोई साथ आये, या न आये। वह सत्य का साथी है। उसे सबसे अधिक बल मिला बीस साल के एक नवजवान से। वह बेनी काका का पद में भतीजा था। बेनी का पूरा खानदान गाँव में रावण खानदान की तरह मशहूर था; किन्तु वह बीस वर्षीय जवान इस खानदान के सारे कलंक को चीर कर एक शुभ ज्योति की तरह उग रहा था। यद्यपि गरीबी की वजह से सात के बाद उसकी शिक्षा नहीं बढ़ सकी; किन्तु उसका सहज ज्ञान इतना जाग्रत था कि वह सारे विरोधों के बावजूद सत्य का पक्ष लेता था, इसलिए वह नीरू को बड़ा प्यारा था। उस स्वस्थ-सुन्दर नवजवान का नाम था रामदयाल। उसने यहाँ भी नीरू का समर्थन किया।

सो इसी बात को लेकर दोनों दलों में मनमुटाव कायम हो गया। बैजू, नीरू की बड़ाई करता घूमता,—गाँव में एक ही मर्द है और सब तो नपुंसक हैं।'

बैजू ने नीरू से कहा—'भाई नीरू, जो कुछ मैंने आपके परिवार के साथ किया, उसके लिए मैं बहुत दुखी हूँ। इस नीच मुखिया के बहकावे में आकर मैंने आपका घर फूंका, खेत काटे, खलिहान में आग का अंगारा रखा था...'

'बैजू, मैं सब जानता हूँ। मुझसे कोई बात छिपी नहीं है।'

'नहीं नीरू भाई, मुझे कह लेने दीजिए, जिससे चित्त हलका हो जाय... मैं सुमेश काका को अपने बाप से भी अधिक मानता था, लेकिन इन्होंने औरों के सामने मेरे घर में भूत-चुड़ैल की बात कह कर मेरा गुस्सा बढ़ा दिया। फिर भी मैंने कुछ नहीं किया, लेकिन जब मैं पहली बार खलिहान में पकड़ा गया तो मुखिया ने इनसे जमानत देने की बात कही तो ये जमानत देने के बदले गाली बकने लगे। इस बात का मुझे अधिक मलाल हुआ और...'

'रुको बैजू, यह बात झूठ है, मुझसे किसी ने जमानत के लिए नहीं कहा। तुम जब बागीचे में दरोगाजी के साथ थे तो मैं अपने खलिहान में दँवरी हाँक

रहा था। मेरे पास जमानत-समानत की बात करने कोई आया ही नहीं।' पास बैठे हुए सुमेश पाँड़े ने बैजू का प्रतिवाद करते हुए कहा।

'तो यह भी उसकी चाल है, उस बदमाश को हम देखेंगे।' कहकर बैजू ने दाँत पीसे।

'मैं जानता हूँ नीरू भाई।' बैजू कहता गया कि 'टीसुन साला तो एक गोटी है, मुखिया उसके जरिये मुसम्मात की सारी जायदाद हड़पना चाहता है। टीसुन की शादी तो होने को नहीं, वह रोगिहा साला कभी भी मर सकता है, पटवारी से लिखा-पढ़ा कर मुखिया सब हड़प लेगा।'

'हो सकता है।' नीरू बोला।

× × ×

गाँव में बड़ी सरगर्मी आ गयी। बैजू तो अपने पक्ष का उस्ताद था ही; दूसरे पक्ष से रग्घू बाबा का नाती धिरेन्दर उस्ताद हुआ; जिसको उकसाने वाले थे मुखिया। धिरेन्दर ने बैजू की धारी में आग लगा दी। बड़ा शोर हाहकार मचा। सारा गाँव उमड़ पड़ा बुझाने के लिए। सब लोगों ने बहुत सी भली-बुरी बातें कहीं फूँकने वाले को लक्ष्य करके, किन्तु बैजू एकदम चुप रहा। अपने स्वभाव के अनुसार वह हँसता रहा। ऐसे मौकों पर उसकी गहन हँसी बड़ी भयानक होती।

पन्द्रह दिन भी नहीं बीतने पाये कि धिरेन्दर के घर में सेंध पड़ गयी। धिरेन्दर के अन्धे बाबा कन्नू पाँड़े ने ज्योतिषी बन कर जो कुछ कमा कर रखा था, सब चला गया। सबेरे गाँव भर देखने के लिए उमड़ पड़ा। धिरेन्दर के घर में रोना-पीटना पड़ा हुआ था। कन्नू पाँड़े चिल्ला रहे थे—'साले बैजुआ ने यह सेंध डाली है। उसे मैं शाप देता हूँ। वह दस दिन के भीतर मर जायगा। जब से उसने नयी औरत रख ली है, तब से उसमें बड़ा जोर आ गया है।' रग्घू बाबा धोती का एक छोर एड़ी में फँसा कर और दूसरा घुटने के ऊपर सरका कर चक्कर काट रहे थे—'आ, जे बा से हम देखब, तुलसी के सारे के। आ जे बा से हम उनके नाकिन चना नाहीं चबववलीं त हमार नाँव रग्घू नाहीं। आ जे बा से हम देखब चित्तथू चित्तथू...

धीमड़ पाँड़े के साथ धिरेन्दर नीरू का खेत उखाड़ रहा था। नीरू रामदयाल के साथ छावनी पर जा रहा था। खेत की ओर मुड़ गया। देखा, कुछ खेत मे से आवाज आ रही है। दोनों भागे। नीरू और रामदयाल ने खदेड़ लिया। धिरेन्दर भाग निकला; मगर धीमड़ पाँड़े पकड़े गये। धीमड़ गिड़गिड़ाने लगे। पाँव पर गिरने लगे 'अरे दादा यही धिरेनरा यहाँ ले आया है अब नहीं मैं ऐसा कर्म करूँगा।' धीमड़ को पकड़ कर दोनों ले आये। तमाशा लग गया। धीमड़ पाँड़े गुम-सुम खड़े थे। बेचारे की थुल-थुल देह काँप रही थी।

रामदयाल बड़ी निर्भीकता से सवाल कर रहा था- 'ठीक ठीक बोलिए धीमड़ बोला, आप निरंजन बाबा के खेत में क्यों गये? इन्होंने आपका क्या बिगाड़ा है? ऐसे भले आदमी के खेत में चोरी करते हुए आपलोगों को शरम नहीं आती?'

'अरे दादा, अब क्या बताऊँ, ऊहे रघुआ का नाती धिरेनरा ले गया और मुसीबत में डाल दिया। अपने त ससुरा भग गया हमके आफत में डाल गया।

'नहीं' धीमड़ बाबा, आप बताइए कि आप को उकसाने वाला कौन है? मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि आपको और धिरेन्दर को और सबको उकसाने वाला कोई एक घुटा हुआ उस्ताद है। 'आप बता दीजिए तो आप छोड़ दिए जायँगे नहीं तो चालान होगा आपका।' रामदयाल बड़ा हुआ था।

चालान के नाम से धीमड़ पाँड़े थर-थर काँपने लगा। उसने कहा-'नहीं' बच्चा और कोई नहीं उकसाता है तुम्हारी ही पट्टीदारी के बड़े बड़े लोग यह उकसाने फुसकाने का काम करते हैं।

'कौन हैं वे बड़े बड़े लोग?' रामदयाल निर्भयता से सवाल पर अड़ा हुआ था।

'बच्चा क्या बताऊँ कहने को तो जी नहीं होता; क्योंकि जल में रहना और मगर से वैर करना ठीक नहीं है। मगर जब आज मौका आही गया है, तब कहता हूँ। मैं ठहरा गरीब आदमी और गाँव के ऐसे ही बहुत से लोग गरीब हैं। मुखिया ने हम सबको कर्ज दिया है थोड़ा थोड़ा, खेत फँसा रखे हैं; इसलिए हम उनसे डरते रहते हैं। वे ही हम सबको बुला कर ये सब काम करवाते हैं। हम लोग डर के मारे उनकी बात की हामी भरते हैं और उनके इशारों पर काम करते हैं।'

'बस-बस धीमड़ बाबा, अब आप आजाद हैं। असली चोर का पता मिल गया। पता तो पहले से ही था, मगर आज गवाही भी मिल गयी। और देखिए धीमड़ बाबा, अब देश आज़ाद होने वाला है। सभी लोग अपने मालिक हैं। किसी से डरने की कोई बात नहीं। आप को कोई डर हो तो हम लोगों से कहिए, हम लोग अब जवानों का एक संगठन कायम करने वाले हैं। गाँव के दकियानूस और शरीफ बदमाशों का हम सामना करेंगे। आप जाइए।'

गाँव के लोग हक्का-बक्का रह गये। हाँ, चोर मुखिया है यह बात तो पहले से ही मालूम थी लेकिन किसी को कहने की हिम्मत नहीं होती थी...।

सुमेश पाँड़े गला फाड़ कर चिचिया रहे थे। नीरू एक दम मौन था। उसने ऊब कर पिता को डाँटा--'क्या चिचिया रहे हैं जी वाहियात तरीके से?'

सुमेश पाँड़े इस पर और भी जोर से चिचियाने लगे।

७०

गाँव में सरगर्मी बढ़ती ही गयी। कभी इसकी चोरी, कभी उसकी चोरी। कभी उसका गृहदाह, कभी उसका। ऐसा महसूस हो रहा था कि गाँव में कुछ खून होकर रहेगा। 'उफ यह छिनाल गुलाबी इस सारे झगड़े की मूल है।' कुछ लोग ऐसा भी कहने लगे थे।

खलिहान में डाँठ गँजे थे। लोग रोज हाय दैया मना रहे थे कि अब न किसी का खलिहान फूँक दिया जाय! लोगों ने अपने-अपने खलिहान में आठ-आठ दस-दस भरे घड़े रख छोड़े थे। रात-रात भर जागते थे। कौन जाने कौन कब चू पड़े खलिहान में।

मुखिया का खलिहान पूरब ओर था। पश्चिम ओर बैकुंठ पाँड़े का खलिहान था। इन दोनों बड़े खलिहानों के बीच गाँव के कुछ अन्य छोटे-छोटे खलिहान थे।

मुखिया का खलिहान देख कर गाँव के कितने लोग रो पड़ते थे। धीमड़ के खलिहान में थोड़ा सा डांठ था केवल मुट्ठी भर। वह मुखिया के खलिहान को देखता हुआ इधर से उधर गुजर जाता। इस डाँठ में उसके भी खून-पसीने का हिस्सा शामिल है—यह सोचता हुआ वह उदास हो जाता। कितना धूर्त है यह बेईमान, सौ रुपये कर्ज का पाँच सौ बना लिया और मेरे खेत हड़प लिए।

इसी प्रकार गाँव के कुछ और लोग भी मुखिया के खलिहान को देखते तो अपने खलिहान की रिक्तता पर रो पड़ते।

चैत की तिजहर हो रही थी। फिर गाँव से दँवरी आने लगी थी। बैजू ने गुलाबी के डाँठ गुलाबी के ही खलिहान में इकट्ठा किये थे, इसलिए कि टीसुन खलिहान खाली पाकर कहीं कब्जा न जमा ले।

टीसुन की दँवरी नध गयी थी। उसके पास अपने बैल तो थे नहीं, एक बूढ़ा बैल मुखिया ने मेहरबानी कर के दे दिया था। और दो ढपले बैल और कहीं से मिल गये थे। टीसुन जब दँवरी के लिए जौ के बोझे पैर पर फेंकने लगा तो गुलाबी ने उसे टोका कि यह बोझ तो मेरा है इसे क्यों फेंक रहे हो?

'तेरे बाप का है! ले आई है अपने वहाँ से?' टीसुन किचकिचा उठा।

'देखो जबान सँभाल कर बोलो, और यह बोझा मेरा है, इसे नहीं फेंक सकते।' इतना कहकर गुलाबी बोझा छीनने लगी।

टीसुन ने पता नहीं, कब से अपना गुस्सा संचित किया था। उसने जोर से गुलाबी को पीछे ढकेल दिया और दो-चार लात ऊपर से जमा दिया।

गुलाबी हाहाकार कर उठी। बैजू अपने खलिहान से दौड़ा। नीरू अपने खलिहान में खड़ा था। उसे खून उतर आया। उसने ललकारा 'बैजू मार डाल इस साले करताली को आज, फिर देखा जायगा।'

बैजू दौड़ कर आया और टीसुन से भिड़ गया। और खलिहानों से भी लोग सजग हो गये। मुखिया अपने खलिहान से मुलुर-मुलुर ताकने लगे।

बैजू ने टीसुन को गेंद की तरह उठा लिया और नचा कर अनाज के पैर पर छप्प से पटक दिया। टीसुन अनाज के पैर में धँस गया। दँवरी के लिए आये हुए बैल चिहुँक कर घर की ओर भाग चले।

ऊपर से बैजू ने टीसुन को लाठी के हूरे से दबाया—'बोल साला, कह तो तेरा सारा भीख माँगना छोड़ा दूँ।'

टीसुन उसी पैर में धँसा हुआ चीख रहा था, 'अरे दौड़ो रे भाइयो, तुम लोग आते क्यों नहीं हो?'

अपने-अपने खलिहानों में दोनों दलों के लोग सजग तो हो गये थे, मगर कोई आगे नहीं बढ़ रहा था।

गनपति नेता घर से भागते हुए आये—'अरे हाँ-हाँ, हिंसा नहीं, हिंसा नहीं, भाइयो, छोड़ो-छोड़ो गान्हीं जी कहते हैं हिंसा पाप है छोड़ो-छोड़ो...'

उसने बैजू को पकड़ कर अलग किया और टीसुन देर तक हत-दर्प साँड़ की तरह गुर्राता रहा।

७६

नीरू ने बाद में अफसोस किया कि क्यों उसने बैजू को ललकारा। अगर कहीं खून हो गया होता तो। उसे तो बचाना चाहिए था झगड़ को।

मगर वह क्या करे, उसका गुस्सा दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा था। दिन भर वह छावनी पर लगान देने वाले गँवार किसानों से जूझता, उन्हें समझाता और शाम-सुबह सुमेश पाँड़े की कपछई उसे पीसे डालती। भीतर उसकी सहूरदार सुरूपा पत्नी के रँग ढँग तो उसे मारे ही डालते थे।

नीरू के इस नजदीक की छावनी पर आ जाने से सुमेश की गतिविधियों को रुकावट मालूम पड़ी। इसीलिए वे छिप-छिप कर अपने कार्य करने लगे। इसलिए उनमें अब गृह-चोरी और झूठ की आदत बढ़ने लगी। कभी किसी ने आकर कहा—'नीरू भाई, सुमेश काका तो खलिहान से पैर में का अनाज काट कर बनिया के यहाँ लिए जा रहे थे।' कभी हलवाहे ने आकर कहा कि 'सुमेश बाबा तो खेत में बोये जाने वाले बीये में से बचा कर बनिया के यहाँ दौड़े जा रहे थे, भला क्या खेत उगेगा और क्या संस-बरक्कत होगी?' नीरू दाँत पीसने लगता। हाय, यह तो नीचता की हद हो गयी। अपनी ही औलाद के साथ धोखाधड़ी। सुमेश पाँड़े का मन अब भी बारात, मेला, हुटिया, गाने बजाने से नहीं हटा था। अतः मौका पाकर निकल जाते थे। नीरू के पूछने पर पहले तो वे बहाने बनाते; किन्तु जब यह रोज का स्वीकृत सत्य बन गया, तब सुमेश पांड़े भी खुलकर मैदान में आ गये। वे बात-बात में गला फाड़ते। नीरू अगर कोई राज की बात पर सलाह-मशविरा करता, या उन्हें कोई बात समझाता तो वे झल्ला कर उठ खड़े होते और घिघियाते हुए आस पास राज की बात छींट आते। वे कहते कि खलिहान में या मवेशियों के पास सोने जा रहा हूँ और रात भर यहाँ वहाँ घूमते रहते या कहीं रामायण या चौताल गाने निकल जाते। या कहीं चमारों आदि के साथ बैठ कर लटके सुनाया करते। नीरू कभी-कभी निगरानी के तौर पर पहुँचता तो उन्हें गायब पाता।

नीरू सुमेश पाँड़े की इन रोज-रोज की बढ़ती हुई हरकतों से तंग आ गया। गाँव ऐसा नीच, और ये महाशय इस किस्म के। कैसे निबाह होगा इस गाँव में? यदि ये पिता न होते तो।

गुस्से में इतना कह जाता लेकिन इसके बाद कुछ कहने में मर्यादा की लगाम

थी। लेकिन वह पिता और पत्नी की कपछई से रोज़ बरोज़ क्रोधी होता जा रहा था। ऐसे जमींदारों के यहाँ काम करना ही क्रोध उकसाने के कारण रूप में क्या कम था? लेकिन घर की इस परेशानी ने उसको हद दर्जे का चिड़चिड़ा बना दिया। वह सोचता कि कहीं दूर निकल जाये घर से। अच्छा था वह अब तक दूर था कि इस कच्चाइन से तो बचा था। किन्तु गुस्सा ठंडा होने पर सोचता, परिवार छोड़ कर कहाँ जा सकता है? भला या बुरा यही तो उसका परिवार है और इसी के लिए तो वह बचपन से अपने को कुरबान कर रहा है। घर की इन सारी कुरूपताओं के बीच केशव एक चमकते हुए नक्षत्र की तरह उदित होता और नीरू का हृदय रौशन हो उठता। उसकी कुरबानी का फल भी बहुत मूल्यवान है। केवल इसी एक फल की इच्छा के लिए वह अपनी सारी बरबादियों को सार्थक समझ सकता है।

फिर भी पिता, पत्नी, गाँव, ज़मींदारी का वातावरण सबने मिलकर उसे गुस्सैल बना दिया। सभी जगह तनाव, सभी जगह दबाव, सभी जगह संघर्ष क्या करे वह? इच्छा होती इस सारे वातावरण को छिन्न-भिन्न कर दे। अकारण दूसरों को परेशान करने वालों और झूठे बड़प्पन का दंभ हाँकने वाले गुंडों को चूर-चूर कर दे।

अतः उसने बैजू को ललकार दिया तो उसका क्या कसूर? यह टीसुन मुखिया के बल पर इतना राक्षस हो गया है कि उचित अनुचित नहीं देखता। सबके सामने एक औरत को गिरा कर मारने लगा। पुरुष का इतना बड़ा अत्याचार कि वह सार्वजनिक रूप से एक अनाथ अबला का पीड़न करे। हाँ वह नहीं देख सकता ऐसे अमानवीय दृश्य, वह नहीं बरदाश्त कर सकता... जो होगा सो देखा जायगा। बाबू के सिपाही सब कह रहे हैं कि इशारा कर दीजिये हम लोग गाँव के सारे बदमाशों को तोड़-ताड़ कर रख दें। मगर यह बात और भी गैर मुनासिब है। गुंडों के द्वारा गुंडों का दमन हुआ तो उसमें अपनी क्या जीत? मगर गाँव के ये लोग तो शराफत से, समझाने से मानते ही नहीं। गाँव को सुधारने के लिए कुछ नवयुवकों ने बार-बार सुधार-टोलियाँ बनाने की कोशिश की। मगर वे कहाँ सफल हुईं? सफल कैसे हों? गाँव के मिडिल पास लड़के आगे पढ़ नहीं पाते, बाहर के प्रकाश से उनका हृदय प्रकाशित नहीं हो पाता। वे मिडिल पास करके जोश--खरोश के साथ मीटिंग करते हैं, कच्ची बुद्धि वाले ये नवजवान केवल दो दिन सुधार-सुधार चिल्लाते हैं लेकिन किसका? समस्याएँ क्या हैं? समाधान क्या है? यह समझना तो दूर ही रह जाता है।

बाप-दादों के आतंक में पले हुए, बाप-भाई की रोटी पर पलते हुए ये छोकरे बाप-भाइयों के खिलाफ सोच भी नहीं सकते हैं। ये ही बाप-भाई तो गाँव की

समस्या हैं। इन्हें ही सुधारना है। और गाँव के उत्साही नव जवान इन्हीं को सुधार-संस्था का अध्यक्ष बनाते हैं---माँस की गठरी, गिद्ध रखवार। मुखिया अध्यक्ष बनते हैं! बैकुंठ पाँड़े उपाध्यक्ष बनते हैं। ये अध्यक्ष-उपाध्यक्ष गाँव के उत्साही छोकरों को भला-बुरा कहते हैं---'बड़े-बड़े बहे जाँय, गदहा पूछे कितना पानी। बड़े-बड़े समाज-सुधारक सुधार करते-करते मर गये, अब चले हैं हमारे गाँव के फितुही लबारी लोग सुधार करने।' फिर भी वे संस्था के अध्यक्ष-उपाध्यक्ष होते हैं। संस्था को राय देते हैं और गाँव के लोगों का दल बना कर समस्याएँ उत्पन्न करते हैं।

और ये उत्साही लड़के शिक्षा-दीक्षा के अभाव में अपने बाप-दादों की टूकानी बन जाते हैं और फिर खेती-बारी में मशगूल होकर खुद भी वही करने लगते हैं। गाँव जो-जो नाच नाचाता है, नाचने लगते हैं। रामदयाल जोर-शोर से उठ रहा है, वह निर्भीक है, समझदार है, अल्प-शिक्षित होने पर भी विवेकवान है। वह चाहे तो कुछ कर सकता है। मगर लोग उसका कितना साथ देंगे, कहना मुश्किल है। लोगों को दोषों की खाज खजलाने का जो मजा मिल गया है, उसे छोड़ना नहीं चाहते।

मुखिया के दरवाजे पर दरबारी लोग बैठे थे। चिट्टिर--पिट्टिर, चिट्टिर-पिट्टिर बेनी काका आये और बैठ गये। 'चित्त-थू, चित्त-थू की एक पिचकारी मार कर रघु बाबा ने पूछा--'आ जे बा से का हालचाल है बेनी ?'[१]

'अरे हाल चाल क्या है। मुंशी दीनानाथ आज ही शहर से आये हैं कह रहे हैं हिटलर जिन्दा है।

'क्या ?' सभी एक साथ चौंक उठे।

'अरे हाँ-हाँ, इसमें कोई झूठ बात थोड़े न है। मुंशी दीनानाथ छापा दिखा रहे थे।'

'चित्त थू, आ जे बा से तू गपोड़िया, तुहार मुंशी दीनानाथ गपोड़िया...'[२]

'अरे जा जा तुम्हें कुछ देश-दुनिया की खबर भी मालूम है। पाँड़े-पुरवा गाँव में जिन्दगी कट गयी, हिटलर और सुभाष बाबू के बारे में क्या मालूम ?

'आ जे बा से, हम कन्नू भाई के साथे काशी परयाग घूमल हईं। हँ-हँ, काशी परयाग, जहवाँ विसविद्दालय है, जहाँ देस विदेस क लड़िका-लड़की पढ़े आवेलें।'[३]

मुखिया ने बीच में टोक दिया--'क्यों रघू बाबा, लड़की--लड़के साथ पढ़ते हैं '?

'जे बा से अवर का ?'[४]

'छिः छि ! राम-राम ! अधर्म की हद हो गई। कलयुग जो न करावे।' मुँह बिचका कर पपीहा पाँड़े के उपरोहित बेटे छेदी ने कहा। फिर लम्बी, मोटी चोटी को एक झटका देकर इस कदर नाक सिकोड़ ली मानो मुँह में मक्खी पैठ गयी हो।

१. बेनी क्या हाल चाल है ?

२. आ जो है सो तुम गपोड़िये और तुम्हारे मुंशी दीनानाथ गपोड़िया

३. मैं कन्नू भाई के साथ काशी प्रयाग घूम चुका हूँ जहाँ विश्वविद्यालय है जहाँ देश-विदेश के लड़के-लड़की पढ़ने आते हैं।

४. और क्या ?

'आ जे बा से एमें अधरम क कौन बाति बा ए पपीहा क बेटा। दू अच्छर संसकीरित पढ़ि लिहलऽ त लगलऽ धरम अधरम देखें। आ रे तू नाहीं जानत बाट कि बिसबिद्दालय मालवी जी बनववले हवें। मालवी जी भला अधरम करिहें?'[१]

'मालवी जी अधर्म नहीं करेंगे, लेकिन वहाँ पढ़ने वाले लड़कों और लड़कियों को क्या मालवी जी पकड़ रखेंगे? मेरे विचार से लड़कियों को पढ़ाना, उन्हें इतनी आजादी देना अधर्म है। भला बताइए तो, जिस नारी जाति के बारे में भक्त शिरोमणि गोस्वामी महाराज तुलसीदास ने लिखा है कि 'अवगुन आठ सदा उर रहईं' और इसलिए जो ताड़ना की पात्रा हैं—

ढोल गँवार सूद्र पशु नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी ॥

उसी नारी जाति को लोग आज आजादी दे रहे हैं। वे मरदों के साथ साथ सभा-समाजों में डोलती फिरती हैं। हमारे वेद-शास्त्र में लिखा है कि नारी तो पुरुष के पैरों की जूती है, इसका काम घर में रह कर रसोई बनाना है, न कि बेहयाई से मरदों के साथ घूमना फिरना और बात बात में चढ़ा ऊपरी करना। अहा हा, देखिए जिस देश में सीता सावित्री जैसी पतिव्रता देवियाँ थीं, उसी देश में आज नारियाँ पर-पुरुषों के साथ बातें करती हैं। हँसती हैं, घूमती हैं। गोरखपुर में ये सब बातें देखता था तो मेरी आखें शरम से झुक जाती थीं।...

'अरे पपीहा के बेटा! तुमने तो इसे किसी जजमान का घर समझ लिया है। अपनी यह लंतरानी बन्द करो।' बेनी काका ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें मटका कर कहा।

'बेनी भाई, छेदी बात तो ठीक कह रहा है। सचमुच आजकल अधर्म जोर पर है। मरदों के पैर की जूती औरतें आज मरदों के सिरों पर नाच रही हैं। आज यह फरमाइश है, कल वह फरमाइश है, परसों वह फरमाइश है। चप्पल पहनती हैं, गोरखपुर से चमेली का तेल और लक्स साबुन मँगाती हैं। मेरी पतोहू ने एक दिन चप्पल माँगी तो मुझे बड़ा गुस्सा आ गया। मैंने डाँट दिया कि तुझे भी गाँव की शहरवालियों के रंग चढ़ रहे हैं। ये साबुन, तेल, चप्पल सब घनश्याम तिवारी के ही घर तक रहने दो, नहीं तो अधर्म प्रलय कर देगा। बेनी भाई, औरतें तो मारने-पीटने से ठीक रहती हैं। उन्हें जो मरद दबा कर ठीक नहीं कर सका, वह मरद नहीं; नपुंसक है। आजकल शहरों में जो लड़कियाँ और औरतें पर-पुरुषों के साथ बातें करती हैं, हँसती-बोलती हैं,

१. ऐ पपीहा के बेटे इसमें कौन अधर्म की बात है। दो अक्षर संस्कृत पढ़ ली तो लगे धर्म-अधर्म देखने। अरे तुम नहीं जानते हो कि मालवीय जी ने विश्व विद्यालय बनवाया है। मालवी जी भला अधर्म करेंगे?

उनके साथ आजादी से घूमती हैं क्या वे बदचलन नहीं होती हैं? छेदी ठीक कह रहा है।' मुखिया ने मानों बहुत बड़े मर्म की बात कह कर सन्तोष की सांस ली।

बेनी काका ने कहा—'हाँ ठीक तो कह रहा है लेकिन...

रघू बाबा बीच में ही बात काट कर झक्की स्वर में बोल पड़े—'ठीक नाहीं ठेंगा कहत बा, तू बुरबक आ ई पपीहा क बेटा बुरबक। दुनिया कुछ देखले न सुनले। अइलऽह् बहस करे। औरत घर क लच्छिमी हई। औरत क इज्जत कइल से घर में लच्छिमी आवेली। जेबा से देखऽत, पपीहा क बेटा रोज अपने मेहरारू के गदहा बानि हींके लें, इनके कुछु जूरत बा? निकम्मा अदमी कहीं क। पाँड़ेपुरवा गाँव क हर मरद अपने मेहरारू के मारे ला। आ जे बा से हम कहि देत हईं, पाँड़ेपुरवा गाँव एही से दलिद्दर होत जात बा।'[1]

सब लोग हँसने लगे, परन्तु छेदी की चोटी फरफराने लगी। संस्कृत का पंडित भला बहस का ऐसा मौका कैसे छोड़ दे? ललकार कर बोला—रघू बाबा आप मेरा अपमान कर रहे हैं। आप वेद-शास्त्र की बात नहीं जानते। वेद-शास्त्रों में साफ-साफ लिखा है कि पति चाहे कोढ़ी हो, कुरूप हो, चाहे कैसा भी हो, नारी का धर्म है कि उसकी सेवा करे। उसका चरणामृत ले। आजकल की औरतें तो मरदों से लड़ाई करती हैं, बाहर ताकती-झाँकती हैं; फिर उन्हें मारा-पीटा न जाय, तो क्या किया जाय? नारी को शासन में न रखने वाला मरद नहीं नामर्द है।'

'वाह पट्ठे।' लोगों ने छेदी को ललकारा। मगर रघू बाबा चोट करते हुए बोले—'जे बा से हई देख हो हे छेदिया क। जजिमानी करे भरि क दू अच्छर संसकीरीति पढ़ि लिहलसि त लगत वेद-सास्तर बखाने। कहिया पूत जनमलें, कहिया झाँकरि भइल। अरे समुरा! देखते काहे नाहीं कि अंगरेज सब अपने-अपने मेमन के लेके रहे लें उनक खातिर-बात करे लें त ऊ दुनिया क

---

१. ठीक नहीं ठेंगा कह रहा है। तुम बेवकूफ और पपीहा का बेटा बेवकूफ। दुनिया देखी न सुनी आये हो बहस करने! औरतें घर की लक्ष्मी हैं। औरत की इज्जत करने से घर में लक्ष्मी आती हैं। देखो तो, पपीहा का बेटा रोज अपनी स्त्री को गदहे की तरह पीटता है कुछ जुर रहा है इसे? निकम्मा आदमी कहीं का? पाँड़े पुरवा का हर मर्द अपनी औरत को पीटता है। मैं कह दे रहा हूँ कि यह गाँव इसीलिए दरिद्र होता जा रहा है।

बादसाह बनल बाटें, आ हिन्दुस्तानी लोग मेहरारू के मारे लें, एही वजह से गुलामी भोगत वा आ जे बा स...'[1]

'हरिजन नेता फेंकू आ रहे हैं, टीसुन ने टीपा। नेता जी को हाथ में तिरंगा झंडा लिए हुए देख कर मुखिया का खून खौल उठा। हरिजन नेता फेंकू कहीं नाचने गये थे किसी मेले में। फिर वहाँ से किसी हरिजन सभा में लेक्चर देने चले गये थे। बड़ा जोशीला लेक्चर दे कर आ रहे हैं :—

'हरिजन भाइयो, अब फिर गान्हीं जी, नेहरू जी जाग उठे हैं, अब सुराज मिलने ही वाला है। जाग जाओ आप लोग भी। जमीदारों का जुलुम अब मत बरदास्त करो। गान्हीं जी कहते हैं कि सुराज मिलने पर हरिजनों का राज होगा, वे कहते हैं कि सब हरिजन भाइयों एक होकर जमींदारों के जुलुम का मुकाबिला करो। बोलो गान्हीं जी की जै। नेहरू जी की जै। भारत माता की जै'

फेंकू नेता को देखते ही मुखिया ने व्यंग्य से पूछा—'कहाँ रहे नेता जी अब तक ?'

'मालिक, जरा चला गया था नाचने मेले में।'

'तो नाचिये-गाइए, और मेरे खेत सूखें। आपका लड़का चला गया परदेस और आप नाचते-गाते और सुराज लेते फिरते हैं। इधर मेरे हलवाहों के बिना मेरे खेत सूख रहे हैं। आज मेरी जमीन खाली कर दीजिए।'

'अरे मालिक इतना नाराज क्यों होते हैं, कोई इन्तजाम करता हूँ।'

'हट मालिक के बच्चे सामने से, नहीं तो सारी नेतागिरी आज भुलवा दूँगा। साले चमार-सियार सभी चले हैं सुराज लेने ! नेता बनेंगे सभी लोग। सभी कुत्ते गंगा नहायेंगे तो पता नहीं पत्तल कौन चाटेगा ? इनके गान्हीं जी कहते हैं कि ये लोग राजा होंगे। आज शाम तक जगह खाली नहीं कर दी तो झोपड़ी में आग लगवा दूँगा।'

फेंकू को मुखिया का यह व्यवहार बहुत बुरा लगा; परन्तु करे तो क्या करे ? झोपड़ी उजड़ जायेगी तो रहेगा कहाँ ? जी मसोस कर बोला—'अरे मालिक, इतना नराज होने की कौन सी बात है ? मै तो अभी जिन्दा हूँ। मैं खुद ही काम करूँगा आपका।'

---

१. जो है जो यह देखो इस छेदिया का। जजमानी करने भर को दो अक्षर संस्कृत पढ़ ली तो लगा वेद-शास्त्र बखानने। किस दिन पूत जनमे किस दिन झाँकरि हुई। अरे ए ससुर, देखता क्यों नहीं है कि अंग्रेज लोग अपनी-अपनी मेमों को ले कर घूमते हैं उनकी खातिरबात करते हैं तो वे दुनिया के बादशाह बने हुए हैं और हिन्दुस्तानी लोग औरतों को मारते हैं तो गुलामी भोग रहे हैं।

मुखिया ने झल्ला कर कहा—'नहीं नहीं, तू जा यह लुगरी के समान झंडी लेकर गाँव-गाँव नाच। सुराज लेगा तो जाकर ले। अँगरेज बहादुर तुम सब को भून कर रख देगा एक दिन कमबख्तो!'

फेंकू हत दर्प मुखिया के सामने खड़ा था।

बेनी काका ने कहा—'लेकिन मुंशी दीनानाथ कह रहे थे कि गान्ही जी सुराज लेकर रहेंगें। अंगरेज लोग अब जापान से हार रहे हैं। जापान वाले हिन्दुस्तान को अंगरेजो से छीन कर हिन्दुस्तान को दे देंगे। जापान वाले सुभाषचन्द्रबोस के दोस्त हैं।'

'अरे दोस्त होने से भी क्या होता है? अंगरेज बहादुर जापान-सापान को ठहरने थोड़े न देंगे। बड़े-बड़े हरबा हथियार हैं अँगरेज बहादुर के पास, सबको भूनक कर रख देगें। ये साले चमार-सियार सुराज लेने चले हैं। देखो न इस फेंकुआ का कि सुराज मिला भी नहीं; और बाबू साहब का दिमाग आसमान पर चढ़ गया। भाग साला यहाँ से, निकल जा मेरी जमीन में से, यहाँ खड़ा-खड़ा क्या देखता है?'

मुखिया बोले जा रहे थे:..

भारत माता की जै...

गान्हीं बाबा की जै...

जवाहरलाल नेहरू की जै...

सभी लोग चौंक उठे। नेता गनपति कूद-कूद कर नारा लगा रहा था और गाँव की ओर दौड़ा आ रहा था।

'देखो गनपतिया फिर पगला गया है।' मुखिया ने व्यग्य से कहा। मगर सभी लोग गाँव की ओर भागते हुए और उछल-उछल कर तथा झंडा उछाल-उछाल कर अकेले नारे लगाते हुए गनपति नेता को उत्सुकता से देख रहे थे।

गनपति ने दूर से देखा कि मुखिया के द्वार पर कुछ लोग जमा हैं तो इधर को ही मुड़ गया और दूर से ही चिल्ला कर बोला—

'बोलो भइयो, भारत माता की जै-जै

भाइयो, गान्ही जीं ने सुराज ले लिया।

'क्या?' सभी लोग चौक कर खड़े हो गये।

'ताकते क्या हो फेंकू नेता, चिल्लाओ भारत माता की जै—जै—'

फेकूं दौड़कर गनपति के पास पहुँच गया और चिल्लाया जै...जै...जै...

मुखिया ने आविश्वास से कहा—'क्यों गनपति, कुछ भाँग-वाँग पी ली है क्या? यह सब क्या बक रहे हो?'

'हाँ हाँ आज जरा अधिक पी गया होगा तनि देखिलऽ!' बेनी काका ने सिर मटका कर कहा।

'आ जे बासे भांग तू पियले होइबऽ ए बेनी। हम त पहिले कहत रहलीं कि गान्हीं जी अवतारी पुरुष हवें, ऊ सुराज जरूर लीहें।' कह कर रग्घू बावा खड़े हो गये और सबको डाँट कर कहा—'लोगन ताकत का हव बेकूफे के तरह। ए टीसुन उठ, बेइमान जै बोलु—'[1]

—'बोल भाई हल्लुमाण स्वामी की जै' रग्घू बावा चिल्लाये।

'आरे हल्लुमाण स्वामी की जै नाहीं ए रग्घू बावा, आज भारत माता की जै बोलनी चाहिए' टीसुन ने काट दिया।

'जे बा से तनि हेकर देख टिसुनवा क! अरे ए गड़गबद्द, हल्लुमाण स्वामी के परताप से गान्हीं जी में एतना बल आइल रहल हवे। अच्छा हाँ बोल भारत क जै...—'[2]

सुराज मिलने की बात चारों ओर फैल गयी। गाँव के लोग दौड़-दौड़ कर मुखिया के घर की ओर आने लगे।

गनपति नेता लेक्चर देने लगा—'भाइयो, अभी मैं हुरदेख राय के यहाँ कथा बाँचने गया था, वहाँ छापा में देखा कि भारत को सुराज मिल गया। पन्द्रह अगस्त को अँगरेज सरकार गान्हीं जी के हाथ में हिन्दुस्तान को सौंप कर चली जायगी। बोलो भारत माता की जै...गान्हीं जी की जै..जवाहर लाल की जै..'

जयजयकार से पूरा वातावरण काँप उठा।

फेंकू ने मुखिया को घृणा की निगाह से देखा और मुखिया ने फेंकू को देखा।

मुखिया जुलुस के आगे खड़े हो गये। बोले—'भाइयो, आज बड़ी खुशी का दिन है, सुराज मिल गया। अहा हा क्या सुन्दर दिन है आज भाइयो, जिस दिन का इन्तजार हम लोग इतने वर्षों से कर रहे थे वह आज आ ही गया। अँगरेज सरकार ने जो जुल्म हमारे ऊपर किये हैं उनका हम गिन-गिन कर बदला लेंगे। हाँ, चलो हम लोग गाँव में घूम-घूम कर आज फेरी लगावें।'

मुखिया नेतृत्व करके आगे बढ़ने ही वाले थे कि नीरू छावनी पर से आ गया। आते ही उसने मुखिया को गिरगिट की तरह रंग बदलते देखा तो गुस्सा और घृणा से उसका जी भिन्ना गया। लेकिन आज उसके पास बदला लेने का अच्छा शस्त्र हाथ में आ गया है इससे वह मन ही मन मुखिया पर हँस पड़ा। मुखिया आगे बढ़ने को ही थे कि नीरू ने कहा—'मुखिया काका, एक बड़ी ही दुःखद खबर सुनने में आयी है।' इतना कहकर

---

१. ए बेनी! भाँग तुमने पी होगी। मैं तो पहले ही कह रहा था कि गांधी जी अवतारी पुरुष हैं स्वराज्य जरूर लेंगे।

२. जरा इस टिसुन का देखो। अरे ऐ मूर्ख, हनुमान स्वामी के ही प्रताप से गाँधी जी में इतना बल आ गया था।

वह मौन हो गया। मुखिया ने चौंक कर पूछा—'क्या ?' सभी लोग इस खबर को सुनने के लिए चौकन्ने हो गये। कुछ ने अनुभव किया कि नीरू भी अजीब है जो रंग में भंग कर रहा है।

नीरू ने बड़ी लापरवाही से कहा—'कुछ खास नहीं, यही कि महेश को पुलिस गिरफ्तार कर ले गयी है।'

'क्यों ?' मुखिया ने चीख कर पूछा।

'मुझे ठीक पता नहीं है, मगर हरिपुर से दो-तीन सिपाही आये हैं—उनमें से कोई कह रहा था कि कुछ आशनाई का मामला है। कोई कह रहा था कि हिसाब में कुछ गोलमाल हुआ था। एक कह रहा था कि इसने सी० आई० डी० कप्तान को एक बार छिप कर मारने की कोशिश की थी। उसी दिन से सी० आई० डी० इसके पीछे पड़ी थी। यही सब बातें हैं और तो कोई खास बात नहीं।'

मुखिया ने नीरू की ओर देखा। उसके चेहरे पर सहानुभूति के स्थान पर निर्ममता और व्यंग्य तैर रहा था। मुखिया जुलूस से हट कर चारपाई पर धम्म से जा गिरे। जुलूस में कानाफूसी होने लगी—'आशनाई...हिसाब में चोरी...!

'मगर घबराने की कोई बात नहीं मुखिया चाचा, महेश जल्दी छूट जायेगा। गजेन्द्र बाबू उसे बहुत मानते हैं।' नीरू इतना कह कर किंचित् मुसकरा उठा।

मुखिया को नीरू आज बिच्छू की डंक की तरह धंस रहा था।

नीरू ने मुखिया के स्थान पर जुलूस के आगे खड़ा हो कर कहा—भाइयो, आज इतनी खुशी का दिन हमारे सामने लहरा रहा है और आप लोग खामोश हैं। नारे लगाइए—

भारत माता की जय...

गाँधी जी की जय...

जवाहरलाल नेहरू की जय...

नीरू के पीछे-पीछे जुलूस गाँव की गलियों में घूमने लगा और गली-गली में जय-जयकार की आवाज गूँजने लगी।

७३

••••

बरसात शुरू हो गयी। सात-आठ दिनों से लगातार पानी बरस रहा था। हर साल की तरह इस वर्ष भी रबी की फसल में जो कुछ हुआ था, वह चुकने लगा था। अतएव बारिश के इस भीगे गहन वातावरण में एक प्रकार की मनहूसियत अभी से छाने लगी थी। किन्तु आजादी मिलने के समाचार से लोग इतने खुश थे कि यह परम्परागत मनहूसियत जम कर गहन नहीं हो पा रही थी। लोग खेत बो कर निश्चिन्त हो चुके थे। रोज-रोज राष्ट्रीय गाने होते थे। शाम को गाँव की फेरी लगती थी। जगह-जगह चर्चाएँ होती थीं कि सुराज मिल गया है। अब तो यह कछार भी धन-धान्य और सारी सुविधाओं से भर उठेगा।

हरिजन नेता फेंकू चमरौटी में शोर मचा रहे थे कि अब क्या भाइयो, अब तो गान्हीं जी हरिजन भाइयों के हाथ में ही हिन्दुस्तान की बागडोर थमा देंगे। अब हम लोग मजूरी नहीं करेंगे, जमींदारों का रोब नहीं सहेंगे, अब हमारे बच्चे भी इन बाभनों के लड़कों की तरह पढ़-लिख कर बड़े-बड़े ओहदे पायेंगे। हम लोगों को गान्हीं जी खेत देंगे, मकान बनवायेंगे...।

सुराज की इस चहल-पहल में सारा गाँव डूबा था। याद आ रही है आज गेंदा को। लेकिन कई साल पहले जो वह गाँव छोड़ कर गयी सो फिर लौटी नहीं। उसके सम्बन्ध में कई-कई किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं—कोई कहता है कि वह ससुराल छोड़ कर काशी जा कर संन्यासिनी बन गयी है और अपने पापों के प्रायश्चित के लिए कठोर तप कर रही है। वह दशाश्वमेध घाट पर दिखाई पड़ी थी। कोई कहता है नहीं, वह अपनी ससुराल में ही है, किन्तु सबसे अलग होकर एक झोपड़ी में रहती है, क्योंकि उसने अपने देवर को उसकी दुःशीलता के कारण डाँट-फटकार दिया था। देवर ने उसका सारा हक हड़प कर उसे घर से अलग कर दिया। वह रो-रो कर शंकर जी की पूजा करके अपने सूने दिन गुजार रही है। बैजू के यहाँ नहीं आती। कहती है, कौन है वहाँ मेरा जो जाऊँ? हाँ इधर उसे मिरगी का दौरा काफी होने लगा है।

कुछ लोग कहते हैं कि अरे भाई, वह तो मिथिला की एक नाटक मंडली में भरती हो गयी है। सीता बनती है। हाँ हाँ, पटना में वह दिखाई पड़ी थी। ऐसा कहने वाले को लोग डाँटते भी हैं कि तुम झूठ बोलते हो। गेंदा अब

बड़ी ही धरम करम वाली स्त्री हो गयी थी। नाटक मंडली में भरती नहीं हो सकती।

बेनी काका इन दिनों बहुत उदास थे। आजादी मिल रही है, किन्तु उनका लड़का छबीले अब तक नहीं लौटा। आज से कई साल पहले अकाल से घबरा कर जो वह भागा तो फिर नहीं लौटा, न उसका कोई समाचार ही मिला। बेनी काका ने बहुत कोशिश की कि उसके बारे में कुछ मालूम हो सके, किन्तु कहीं पता सुराग नहीं लगा।

पानी बरस रहा था। लड़के बागीचे में पके आम बीन रहे थे। एक पीली क्षीण काया बगीचे में आकर धम्म से बैठ गयी। छोटे-छोटे लड़के सहम कर दूर हट गये। किन्तु छेदी ने उस छाया के समीप आकर पूछा––'कहिए महाशय जी, आप कौन हैं?'

'पहचाना नहीं छेदी भाई तुमने मुझे।'

'अरे तो तुम छबीले हो बहुत दिनों पर लौटे और सो भी इस रूप में।'

गाँव में हल्ला हुआ कि छबीले मिल गया, मिल गया। लेकिन पता नहीं, उसे क्या हो गया है?

धीरे धीरे छबीले की बातों के आधार पर उसके पिछले कुछ वर्षों की कहानी गाँव में जोड़ ली गयी––

वह घर से भागा तो बनारस में एक हलवाई की दूकान पर काम करने लगा। फिर वहाँ से कुछ चुराकर भागा तो पटना चला गया। वहाँ रिक्शा हाँकने का काम करने लगा। एक दिन रिक्शा टूट गया तो मालिक ने दंड माँगा। फिर वहाँ से चुपके से कलकत्ता भाग गया। वहाँ बहुत सिर मारा, लेकिन कोई नौकरी नहीं लगी तो वहाँ की एक नाटक मंडली में भरती हो गया। कुछ दिन काम किया किन्तु किसी बात पर मैनेजर से लड़ाई हो गयी और मंडली वालों ने इसे खूब पीटा तो वहाँ से निकल कर भागा। किसी तरह एक मठ में दाखिल हुआ। मठाधीश की कृपा प्राप्त कर ली। काफी ढंढ-कमंडल से रहने लगा। लेकिन एक दिन भगवान की सोने की मूर्ति चुराकर भाग निकला। पुलिस में रिपोर्ट की गयी। एक साल जेल में हवा खाई। वहाँ से छूट कर एक बंगाली के यहाँ भात बनाने का काम करने लगा। बस क्या था, बंगालिन ने इस पर जादू मारना शुरू किया। इसे जादू से एक बार भेंड़ा बना दिया था और पाँच-छः महीने तक यह भेंड़े के रूप में रहा। फिर जब उसे दया आई तो इसे आदमी बना दिया। बंगालिन के डर से यह वहाँ से फिर भागा, उसकी तिजोरी तोड़-ताड़ कर। मगर जादूगरनी से कौन भाग सकता है? उसने अपना जादू इसके पीछे डाल दिया है। इसीलिए छबीले अब एक-दम सनक गया है और मरने-मरने हो रहा है।

सोखा रामधन तेली छबीले के घर अभुवाए जा रहे थे--इह त त त त हिरिया जिरिया बंगालिन का जादू टोना । टोना--है--टोना है--जादू है--जादू है हाँ-हाँ जादू है रे, बंगालिन का जादू है । बड़ा कुरंग जादू है । बोल-बोल ! तू कौन है, कौन है ?

'हुँ ऊ ऊ ऊ हाँ बंगालिन--बंगालिन--जादू--' छबीले अपनी सनक में बोकरने लगा ।

लोगों ने रामधन तेली की ओर बड़े आश्चर्य से देखा--'कैसा माहिर है यह सोखा, उड़ती चिड़िया पकड़ लेता है, कहाँ पाँड़े पुरवा और कहाँ बंगाल; लेकिन कैसा टोकर पकड़ा ?

रामधन तेली ने लोगों की ओर गर्व से देखकर मानो पूछा--'देखा, कैसा बोकरवाया इस चमारकाटी बंगालिन को !

छबीले बंगालिन के यहाँ काम तो कर ही चुका था । अतः वह रामधन तेली की सोखैती पर अपनी सनक में बंगालिन का नाम सुनकर अभुवा रहा था--बंगालिन--बंगालिन ..।

वह आँखें तरेर कर अँगुली से एक खास दिशा की ओर संकेत करता हुआ चीख उठा-'अरे माई हुऊ देखो बंगालिन ..'

गाँव में चर्चा हो रही थी--बाप रे, ऐसी भयंकर होती हैं बंगालिनें । बड़ा भयंकर जादू मारा है । उसका बचना अब मुश्किल ही है...

७४

पन्द्रह अगस्त सन् १९४७ का दिन। रिमझिम बारिश हो रही थी; किन्तु हवा तेज थी। पाँड़ेपुरवा गाँव के चारों ओर बाढ़ का अपार पानी हवा के तेज झोंकों के साथ मौजें मार रहा था। पानी का शोर पूरे गाँव में बजबजा रहा था। किन्तु गाँव के लोग आज उदास नहीं थे। सारा गाँव अपने व्यक्तिगत रागद्वेष को भूल कर अपने उल्लास के साथ राष्ट्रीय-पर्व मनाने के लिए एकत्र हुआ था।

बच्चों ने राष्ट्रीय गीत गाये। हरिजन मंडली ने नगाड़ों और तासों के स्वर पर नृत्य किये। गनपति नेता ने नक्की सुर में गाया—'बिजयी विश्व तिरंगा प्यारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा,।' जय-जयकार के स्वर से बाढ का कोलाहल भी काँप रहा था।

निरंजन (नीरू) भाषण दे रहा था—'भाइयो, बहुत दिनों पर यह शुभ दिन देखने का अवसर मिला है। हम लोगों ने इस गुलामी में कितना भोगा है यह कहने की बात नहीं। गाँव के चारों ओर पानी की ये दीवारें जो आप देख रहे हैं, उसे गुलामी ने और भी बलवान किया है। इन प्राचीरों ने हमें एक छोटे से दायरे में घेर रखा है। बाहर से न कोई रोशनी आ पाती है, न कोई शक्ति। इन दीवारों ने हमें घेर कर दुनिया की सारी सुविधाओं से बंचित कर दिया है। ये हमारी फसलें लूट लेती हैं, हमारे खेतों की शक्ति छीन लेती हैं। इन्होंने इस इलाके को पाताल के समान ऊबड़-खाबड़ और नीरस बना दिया है। न सड़कें हैं, न स्कूल हैं, न अस्पताल हैं, न सुरक्षा है, न कोई उद्यम है। एक मात्र बच गयी है गरीबी, अशिक्षा और बेकारी! इसीलिए हम लोग आपस में छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए लड़ते हैं। अपने बच्चों को अपनी ही मूर्खता और उजड्डता का उत्तराधिकारी बना देते हैं। दलबंदियाँ होती हैं। घर और खेत फूँके-तापे जाते हैं। दूसरों की थोड़ी सी जमीन को निगलने के लिए हम खूनी-दाँत गड़ाए रहते हैं। कर्ज का भयंकर साया-गिद्धों की तरह हमारे ऊपर मँड़राया करता है। भाइयो, इन सबके जिम्मेदार हैं ये पानी के प्राचीर, ये पानी की दीवारें। आज हमें आजादी मिली है। अब ये पानी की दीवारें टूटेंगी, टूटेंगी, बाहर से नयी रौशनी आयेगी। खेतों में नये सपने खिलेंगे। कोई बच्चा पैसे के

अभाव में पढ़ाई छोड़ कर दर-दर नौकरी के लिये नहीं भटकेगा, नौकरी की चक्की में पिस कर अपने जीवन के प्यारे अरमानों का गला नहीं घोंटेगा। कोई व्यक्ति दवा के अभाव में तड़प-तड़प कर नहीं मरेगा।

ऊबड़-खाबड़ पगडंडियों पर अब सरक-सरक कर बीमार यात्री दम नहीं तोड़ेगा, सड़कों के चौड़े पथों से बाहर की सुविधाएँ हमारे गाँवों को दौड़ेंगी—

'पानी की ये दीवारें टूटेंगी।
नये सपने खिलेंगे
नयी रौशनी लहरायेगी।'

नीरू बैठ गया। जलूस ने बाढ़ की ओर हाथ उठा-उठा कर चिल्लाना शुरू किया—

'पानी की ये दीवारें टूटेंगी—
नये सपने खिलेंगे
नयी रौशनी लहरायेगी।'

इन नारों की प्रतिध्वनि आकाश में गूँज रही थी।

'नयी रोशनी आयेगी. . .

नीरू की निगाहें कुछ दूर पर डगमगाती एक नाव पर अटकी हुई थी। मन में कुछ बुदबुदाया—शायद संध्या है। शहर जा रही है।

उसकी आँखें नम हो गयीं। वह एकटक उसी नाव की ओर देख रहा था। और भीड़ चिल्ला रही थीं—

पानी की ये दीवारें टूटेंगी,
नये सपने खिलेगें
नयी रौशनी लहरायेगी।